भारत के प्राचीन लिच्छवी गणतंत्र
में उत्पन्न, अभूतपूर्व, अद्भुत
वीरांगना नर्तकी की मार्मिक कथा

आम्रपाली

(भाग १-२)

[ऐतिहासिक उपन्यास]

लेखक

रामचन्द्र ठाकुर, एम० ए०

अनुवादक

दाऊलाल लाड "दर्शन"

एन्ड कंपनी, पब्लिशर्स, प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउंड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई २

भारत के महान इतिहासवेत्ता

पूज्य

श्री० गौरीशंकर ओझा

को

सादर समर्पित !
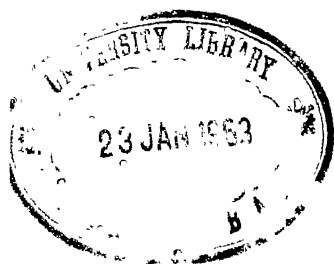
वक्तव्य

'आम्रपाली' गुजराती के सर्व श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों में से एक है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता रा. ब. गौरीशंकर हीराचंद ओझा तथा प्रसिद्ध साहित्यिक श्री० कन्हैयालाल मुंशी और श्री० मोहनसिंह सेंगर आदि ने इस उपन्यास की कथा-वस्तु और भाषा सराहा है।

गुजरातीके प्रसिद्ध साहित्यकार श्री. रामचन्द्र ठाकुर 'आम्रपाली' के रचयिता हैं; आप लेखक होकर फ़िलम-निर्देशक भी हैं। इसे पढ़ने पर पाठक जान सकेंगे कि इस उपन्यास में फ़िल्मोपयोगी प्रतिन्यास Scenerio और संवाद आदि का अज्ञात रूप से प्रादुर्भाव हुआ है, जो साहित्य में एक नई चीज है। स्वयं लेखक ने अपनी भूमिका में इस ओर सकेत किया है।

उपर्युक्त शैली के अस्तित्व से उपन्यास की भाषा शैली और प्रवाह में गूढ़ता न होकर क्रियात्मकता या स्पष्टता अधिक है, और मेरी समझ में यह शैली की एक विशिष्टता है।

भारत की अंतर-प्रांतीय भाषाओं को एक दूसरे के समीप लाने की मेरी कई दिनों से इच्छा थी, इस वार स्वयं लेखक का भी आग्रह था। इसमें मुझे एक नवीनता मालूम होती है और उत्साह मिलता है, यह जान कर कि हम

उपन्यास के मूल भाषा-प्रवाह और शैली को मैंने कम-से-कम परिवर्तित
प्रयास किया है, ताकि इस पुस्तक की रचना शैली में जो भी कुछ
हैं, उनसे हिन्दी-प्रेमी अवगत हों, और रस ले सकें।

भारत की अंतर प्रांतीय भाषाओं के साहित्य में परस्पर विनियम
यह मेरी आकांक्षा है; एक देश की अंतर-प्रांतीय भाषाओं में समन
स्वाभाविक भी है।

इस बार मैंने अपनी इसी भावना को कार्य रूप में परिणित कि
सत्साहस है या दुस्साहस, इसका निर्णय स्वयं पाठक करेंगे।

भूमिका

सन् १९३२ मे सवाक् चित्रपट काफ़ी ख्याति पा चुके थे; उन दिनों कॉलेज में पढ़ते पढते आर्थिक कठिनाई उपस्थित होने से मैंने चित्रपट के लिए कहानी लिखने का निश्चय किया।

कॉलेज मे, पाली भाषा मेरा खास विषय था। गुजराती-साहित्य में पाली भाषा के अवतरण या अंश प्रकाशित करने के लिए आचार्य धर्मानन्द कोसाम्बी के सिवा अन्य किसीने विशेष प्रयास नहीं किया। इसलिए मैंने उस वक्त साथ साथ यह भी निश्चय कर लिया कि मै पाली-साहित्य को गुजराती पाठकों के सम्मुख यथाशक्ति विस्तृत, और विशुद्ध रूप मे प्रस्तुत करूँगा। इसी विचार को लेकर मैंने एक साथ तीन नाटकों की तैयारी करना प्रारम्भ किया; जिनके नाम 'आम्रपाली', 'अशोक' और 'अरहत बुद्ध' थे। उपर्युक्त परिस्थिति को लेकर सबसे पहले मेरा ध्यान 'आम्रपाली' की ओर गया और उसे चित्रपट के अनुकूल 'पटकथा' के रूप में तैयार किया।

किन्तु, नतीजा कुछ दूसरा ही निकला; चित्रपट के निर्माताओं ने पच्चीस सौ वर्ष पहले के भारतीय इतिहास को छूने से साफ़ इन्कार कर दिया। तब ही एक मित्र ने राय दी कि यदि मुझे सच्ची साहित्य-सेवा करनी हो तो इस पटकथा का उपन्यास में रूपान्तर करूँ। तब ही मैंने उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया, और दो दो, चार चार महीनों के अंतर से अध्याय लिखते रहने के बाद ठीक पाँच वर्ष के बाद इसे समाप्त कर सका हूँ। यथेष्ट प्रयासों के बाद भी, मै, पटकथा में लिखे गए चलचित्र के अनुकूल कई प्रसंगों को इच्छा होते हुए भी दूर नहीं कर सका हूँ।

था। वे निपुण धनुर्धारी, वन्य कुत्तों को लेकर आखेट के लिए जाते औ
चतुर्दशी और पूर्णिमा को मांस-भक्षण करते थे। उनके ऐक्य और उ
की तो गौतम बुद्ध ने प्रशंसा की* है। प्रत्येक लिच्छवि जन्मजात स्वात
होता था। कई बार उसकी स्वतंन्त्र-प्रकृति, स्वेच्छा और क्रूरता में
जाती थी। उनके शत्रु, उन्हें हमेशा 'क्रूर' कहकर ही पुकारते थे। स
वे सदा स्वतन्त्र थे; और जब तक रहे, स्वतंत्र होकर ही रहे!

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता विन्सेन्ट स्मिथ के मतानुसार वे लोग मूलत
के निवासी थे। श्री. विद्याभूषण उन्हें ईरानी मानते हैं; हॉडसन सा
'शक' समझते हैं और बुद्ध के प्रमुख शिष्य मोग्गलयान उन्हें ए
'वशिष्ट वंशज' कहकर सम्बोधित करते हैं। कुछ भी हो, वे थे शुद्ध
ही। उन्हें सुन्दर पोशाक पहिनने, तीव्र वेग से रथ दौड़ाने, युद्ध क
विलास भोगने का शौक था। रणक्षेत्र में वे अजित माने जाते थे, भ
वे सीखे ही न थे! उन्हें जीतने के लिए मागधियों को डेढ़ सौ वर्ष
करना पड़ा और अन्त में अजातशत्रु, कूटनीतिज्ञ सुनीत वर्षकार ब्राह्मण
यता से उन्हें अपने पक्ष में, मिलाने में कार्यकारी हुआ। मगधराज अ
लिच्छवियों का भानजा था, ऐसा एक स्थान पर उल्लेख आता है।

प्रस्तुत उपन्यास एक प्रकार से उन लिच्छवियों की ही कहानी है
उनकी शूरता, निर्भयता, आवेश, और अहंभाव को इस उपन्यास के
चित्रित करने का प्रयत्न किया है। ऐसा कहा जाता है कि उन्हें वेदों
न थी। दूसरे शब्दों में वहाँ ब्राह्मणों का जरा भी महत्व न था। उन
तन्त्र-प्रिय स्वभाव का लाभ अनेक धर्मप्रवर्तक लेते थे; या लेने का प्रय
थे। वे लोग सर्वमान्य यक्षों और देवी देवताओं को पूजते थे। मरने
मनुष्य के शव को जंगल में, किसी निश्चित स्थान पर पशुपक्षियों के उ
लिए रख देते थे। उन लोगों का मुख्य धर्म या कर्त्तव्य, युद्ध-प्रिय होने के
स्वदेश और स्वदेशीय के लिए अपना बलिदान कर देना ही था।
ईर्ष्यालु पड़ोसी उन्हें अधर्मी समझते थे। वशाली के संथागार में

---

* दीघनिकायो

गणतंत्र की परिषद् राजनैतिक और सामाजिक शासन की रूपरेखा तैयार करती थी। यदि किसी समस्या का काफ़ी वादविवाद के बाद भी निराकरण न होता, तो उनके प्राचीनतम और पूज्य ग्रन्थ प्रवेणी-पुस्तक (पवेणीपोथ्यकम्) को आधार मानकर सभी उसमें दी गई आज्ञा का अनुसरण करते थे। इतना ही नहीं, वे लोग 'प्रवेणीपुस्तक' के द्वारा निश्चित नियम के विरुद्ध एक शब्द भी निकालना महापाप समझते थे। उस परिषद में प्रत्येक सभासद निःसंकोच होकर आलोचना कर सकता था। किन्तु, एक बार बहुमत से जो निर्णय परिषद द्वारा स्वीकार किया जाता, उसके बाद प्रत्येक लिच्छवि को प्राण देकर भी उसे शिरोधार्य करना होता था। एक स्वर से बोलने, और एक विचार से व्यवहृत करनेवाले लिच्छवियों का अनुशासन और ऐक्य सभी राज्यों को चकित कर देता था।

लिच्छवियों की अति विलासप्रियता, यही उनका सबसे बड़ा दुर्गुण था। युद्ध में वे जितने क्रूर थे, उतने ही विलासी शारीरिक सुखभोग मे थे। संध्या के बाद वैशाली के बाहर, महाउद्यान में, विलासी लिच्छवि, नर्तकियों और गणिकाओं को लेकर घूमते थे। एक स्त्री के लिए मरना मारना उनके लिए खेल था। दूसरे देशों या प्रान्तों के सामाजिक नियमों को वे बिलकुल नहीं मानते थे। उनका स्वतंत्र स्वभाव राजनैतिक हित के सिवा किसी भी बंधन मे बँधना नही चाहता था। जिस तरह एक बार में वे शत्रु का सिर काटते, उतनी ही शीघ्रता से कोई भी बंधन तोड़ना आसान था, और उसी तरह प्रेम करना भी। सचमुच वे दुर्दम्य और दुर्जय थे!

और इन्हीं लिच्छवियों ने, संसार को, अहिंसा का महान् क्रांतिकारी पुरुष प्रदान किया है; जगत के एक महान् धर्मप्रवर्तक श्री महावीर स्वामी वैशाली[१] के थे। गुप्तवंश का मगध सम्राट चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी पाटलिपुत्र पर सम्मिलित शासन करते थे[२]। ये दोनों प्राचीन भारतवर्ष के अद्वितीय युगल हैं। यही कुमारदेवी एक लिच्छवि कन्या थी। लिच्छवियों ने ही अपनी एक

---

१ कुन्डनग्राम—वैशाली के एक ग्राम में जन्म। २—क. मा. मुन्शी कृत ध्रुवस्वामिनी देवी।

राजकुमारी चेलना, मगधराज बिंबिसार श्रेणिक को महारानी पद वे
की थी; और इन्ही लिच्छवियों ने प्रख्यात नर्तकी आम्रपाली को
दिया ।

आम्रपाली के विषय में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। थेरीग
टीकाकार उसके एक पुनर्जन्म का विवेचन करके कहता है कि ए
कारण, वैशाली नगरीके बाहर, एक बड़े उद्यान के आम्रवृक्ष के नीचे
प्रकट हुई। उस उद्यान के माली ने उसे पाला पोसा। आम्रवृक्ष के न
जाने के कारण उसका नाम आम्रपाली रखा गया। बड़ी होने पर
सुन्दरी अनेक लिच्छवि राजकुमारों में स्पर्धा और परस्पर कटुत
करने का कारण बनी। निदान उसके लिए नर्तकी बनने का अंतिम नि
गया। दुल्व के कथनानुसार जो युवती प्रचंड द्वन्द का कारण बनती, उसे
गण विवाह के योग्य न समझते थे, उसे लोकरंजन के लिए अ
रहना होता था, इसलिए आम्रपाली को भी नर्तकी बनना पड़ा
वर्षों के बाद अपने पुत्र विमल थेर के उपदेश से पाली को ज्ञान प्रा
उसने संसार-त्याग किया और गौतम बुद्ध की शरण में, भिक्षुसंघ
उच्चकोटि की थेरी बनी।

महा परिनिब्बान सुत्त[२] में उल्लेख किया गया है कि आम्रपाली ने
बुद्ध को उनके संघ के साथ अपने यहाँ भोजन के लिए निमंत्रित कि
बुद्ध ने भी अन्य निमंत्रणों को छोड़कर पहले इस नर्तकी का ही निमंत्र
कार किया। उसके बाद आम्रपाली ने एक विहार (मठ) बं
भिक्षुसंघ को भेंट किया। पालीत्रिपिटक मे इन दो प्रसंगों का उससे अ
उल्लेख किया गया है। आम्रपाली का दूसरा उल्लेख अवदानकल्प
कल्यावदान में है, किन्तु यह पुस्तक पाली भाषा में नहीं है।

मूल बौद्ध धर्म का साहित्य 'पाली त्रिपिटक' में ही समास
'पाली त्रिपिटक' बौद्ध धर्म के वे आधारभूत २९ ग्रन्थ हैं, जिन्हे तीन
विभाजित किया गया है।

१—सुत्तपिटकम्। २—दीघनिकायो, महावंश।

प्रत्येक विभाग को पिटक१ कहते हैं। तीनों भागों के नाम विनयपिटकम्, सुत्तपिटकम् और अभिधम्मपिटकम्२ हैं। प्रस्तुत उपन्यास में वर्णित सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक घटनाएँ इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर लिखी गई हैं—विशेषकर सुत्तपिटकम् के आधार पर। पात्रों को भी पाली-साहित्य के अनुरूप ही चित्रित करने का प्रयास किया है। उदाहरण के तौर पर, प्रख्यात् विद्वान प्रो० जेकोबी अपने 'जैनसूत्रों' की प्रस्तावना में, सुत्तपिटकम् के 'मज्झिमनिकाय' ग्रन्थों और अन्य पाली ग्रंथों में उल्लिखित 'निगण्ठोनाटपुत्तो' (निर्ग्रंथो ज्ञानपुत्रो) को महावीर स्वामी सिद्ध करने का प्रयास किया है, और वर्तमान जैनों के पूर्वजों का उस समय के निर्गथों के रूप में ही उल्लेख किया है, 'जैन' रूप में नही।

इस तरह ऊपर लिखे अनुसार इस ग्रंथ में ऐतिहासिक घटनाएँ बहुत कम हैं। अम्रपाली, विमल, बिंबिसार, पाटिक पुत्र ऐतिहासिक पात्र हैं। पाली साहित्य में न होते हुए भी, जिन घटनाओं की उपन्यास की रूपरेखा में नितान्त आवश्यकता थी; ऐसी अनेक घटनाएँ दूसरे आधारों से ली गई हैं! बहुत से पात्र मेरी कल्पना के हैं लेकिन उनके आचार-विचारों का चित्रण आधारभूत ग्रन्थों में प्राप्य, उस समय के समाज और राजनीति के अनुरूप ही है।

मै यह नही जानता कि ऐतिहासिक उपन्यास मुख्यतः इतिहास होता है, या ऐतिहासिक नींव पर खड़ी की गई कल्पना की इमारत; किन्तु इस पुस्तक के लिखने का मेरा उद्देश्य इतिहास-दिग्दर्शन की अपेक्षा छठी-सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व के समाज और मनुष्यों का दिग्दर्शन करना विशेष है। मैंने मुख्य आधार पाली भाषा के ग्रन्थों का ही लिया है, लेकिन साथ ही साथ

१—संग्रह, २—समर्थ टीकाकार बुद्धिघोष अपनी 'अट्ठसालिनी' में इन तीनों पिटाकों का क्रमशः 'अणादेसना', 'वोहार देसना' और 'परमत्थ देसना' के रूप में उल्लेख करते हैं; जिनके विषय, भिक्षुओं को आज्ञा का उपदेश, संसारियोंको व्यवहारका उपदेश और संसारत्यागियोंको परमार्थ, निर्वाण और तत्त्वज्ञान का उपदेश है।

दूसरे ग्रन्थों की भी सहायता ली है, जिनकी सूची अन्यत्र दी गई है। तक हो सका है, पात्रों के नाम पाली भाषा में ही रखे हैं।

जैसा कि मैंने कहा है, उपन्यास लिखने का यह मेरा पहला प्रयास मेरा मुख्य उद्देश्य विचारधारा और मननीय प्रसंगों को ऐतिहासिक द्वारा प्रस्तुत करना ही रहा है।

यदि मेरा यह प्रयास प्रोत्साहन के योग्य होगा तो, भूमिका के प्रार उल्लिखित कथाओं और मूल पाली ग्रंथों को पाठकों और साहित्य रसि सम्मुख प्रस्तुत करने मे अपनी सामर्थ्यानुसार कुछ भी उठा न रखूँगा; उसे अपना सौभाग्य समझूँगा।

श्री. कन्हैयालाल मुंशीने पांडुलिपि पढ़कर इस पुस्तक की जो प्रदर्शित की है, इसके लिए में उनका अत्यन्त आभारी हूँ। तरह मैं बम्बई के 'प्रिन्स ऑफ़ वेलस' म्यूजियम के विद्वान क्यूरेक्टर श्री० छोडलाल शास्त्री का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे कई अप्राप्य आध ग्रन्थ पाने में मदद दी है।

गुजरात और गुजराती का मैं जन्मत: ऋणी हूँ, जिसको लेकर आम्र के प्रारंभ करने का मूल हेतु भी अंत में कार्यकारी हुआ है। लक्ष्मी प्रोड के साहित्य-प्रिय अधिष्ठाता श्री० चिमनलाल त्रिवेदी के संपूर्ण उत्साह गुजरात के कलाप्रिय दिग्दर्शक, नन्दलाल जसवन्तलाल के प्रयत्नों के परि स्वरूप आज 'आम्रपाली' चित्रपट (फ़िल्म) के रूप में हिन्दुस्तान के प्रस्तुत हुई है; मैं इन दोनों महानुभावों का आभारी हूँ।

(तृतीयावृत्ति से)

आधार-भूत ग्रन्थों की सूची

पाली

१. तिपिटकानि	(तिपिटक
२. अट्ठसालिनी	(बुद्धघोष
३. धम्मपद अट्ठकथा	
४. महावंस	(सिंगाली

संस्कृत

१. अवदान कल्पलता	(क्षमेन्द्रकृत
२. दिव्यावदान	
३. अवदानशतक	

गुजराती

१. २५०० वर्ष पूर्वेनुं हिन्दुस्तान	
२. सेणिय बिंबिसार	(जैन कार्यालय, सुशीलकृत)

हिन्दी

१. अम्बपाली	रामरतन भटनागर 'हज़रत
२. अजात शत्रु	श्री० जयशंकर 'प्रसाद'
३. बौद्धकालीन भारत	श्री० जनार्दन भट्ट, बी. ए.
४. प्राचीन-भारत	हरिमंगल मिश्र, एम. ए.
५. भारत के प्राचीन राजवंश	विश्वेश्वरनाथ रेऊ
६. प्राचीन भारत	गंगाप्रसाद मेहता, एम. ए.
७. मगध का प्राचीन इतिहास	रामशरण उपाध्याय

अंग्रेज़ी

१. बुद्धिस्ट इंडिया	टी. डब्ल्यू. रिसडेविड्ज
२. बुद्धिज़्म	,,
३. बुद्धिस्ट सूत्राज	,,
४. सॉम्स ऑफ़ सिस्टर्स	श्रीमती रिसडेविड्ज़
५. जातकाज़	रॉबर्ट चामर्स
६. पाली लिटरेचर ऑफ़ बर्मा	एम. एच. बोड
७. ए हिस्टरी ऑफ़ सिविलिज़ेशन इन एन्श्यन्ट इंडिया	आर. सी. दत्त
८. अर्ली हिस्टरी ऑफ़ इंडिया	ए. विन्सेन्ट स्मिथ
९. एंश्यन्ट इंडिया	विलियम रॉबर्टसन्
१०. जैन सूत्राज	हरमन जॅकोबी
११. ए मॅन्युल ऑफ़ इण्डियन बुद्धिज़्म	एच. कर्न
१२. एन्श्यिण्ट इण्डिया	एस. के. आयंगर
१३. विमेन इन बुद्धिस्ट लिटरेचर	डॉ० विमलचरण लॉ
१४. ज्यॉग्राफ़ी ऑफ़ अर्ली बुद्धिज्म	,,
१५. सम क्षत्रिय ट्राइब्ज़ ऑफ़ एंश्यन्ट इण्डिया	,,
१६. राजगृह इन एन्श्यण्ट लिटरेचर	,,
१७. बुद्धिज़्म प्रिमिटिव एण्ड प्रेज़न्ट इन मगध एण्ड सिलोन	आर. कॉप्लिस्टन
१८. बुद्ध, एन्ड ए गॉस्पेल ऑफ़ बुद्ध	ए. के. कुमार स्वामी
१९. लिटररी हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत बुद्धिज़्म	के. नरीमान
२०. बुद्ध	ओल्डनबर्ग
२१. पाली एण्ड संस्कृत	आर. ओ. फ्रैंक

आम्रपाली

(१)

'चिरंजीव, तू किसलिए जीता है ?'

'अपनी पत्नी को विधवा नही देखना चाहता इसलिए।'

'तुझे जीने का कुछ अधिकार नही है !'

'क्यों ?'

'तू युवक है पर तुझमें युवक के प्राण नही !'

'सचमुच ?'

'हाँ, तू वीर है पर व्यर्थ है, तू....तू मनुष्य होकर भी पत्थर है....पाषाण है !'

'वाह ! वाह !! इस सुन्दर प्रशंसा के लिए धन्यवाद ! पर कृपया यह समझाओगे सुधीर, कि मनुष्य होते हुए भी, तुम्हारी दृष्टि में, पत्थर और मुझ में कुछ भी अन्तर क्यों नही है ?'—सिर ज़रा नीचे झुकाकर, विनोदी चिरंजीव ने, क्रोधित सुधीर को, और अधिक चिढ़ाने के ढंग से पूछा।

सुधीर का रक्त खौल उठा, उसकी इच्छा हुई कि नीचे झुके हुए उस चिरंजीव का सिर ही तोड़ दे, फिर भले ही अपने परम मित्र को मार डालने के अपराध में 'प्रवेणी-पुस्तक' जो दंड दे उसे स्वीकार करना हो, और मरने के बाद जो

नरक मिले उसे भी भोगने के लिए तैयार होना पड़े—पर उसे यह क्रोध दबाना पड़ा क्योंकि इसके सिवा दूसरा मार्ग ही न था, बोला—

'चिरंजीव, तू पत्थर भी नहीं, मिट्टी का ढेला है ढेला, समझा। तुझपर जरा भी विश्वास नहीं किया जा सकता। तू मेरा मित्र नहीं, तू मे....'

'सुधीर !....' चिरंजीव सिर उठाकर बीच में ही बोल उठा—'तू कहे उसे मैं मारने को प्रस्तुत हूँ, मैं स्वयं मरने को तैयार हूँ, पर तू एक लड़की को देखने के लिए परगाँव में एक पराये घर में घुस जाय और मैं तेरी प्रतीक्षा में बाहर चक्कर काटूँ, यह मुझसे नहीं होता....हो ही नहीं सकता !'

'चिरंजीव !' अचानक सुधीर, चिरंजीव के पास झपट आया और विरोध दिखाकर बोला—'उसे लड़की मत कह, आम्रपाली लड़की नहीं युवती है, युवती; समझा ?'

'हाँ, हाँ, भाई युवती है, सुन्दर युवती है, अद्भुत है, अप्सरा है, किन्नरी है बस ! गाँव से निकलकर यहाँ वैशाली नगर आने में दोपहर तक उसके लिए जो भी तू बड़बड़ाया वह सब कुछ यह युवती ही है, पर इसके लिए संथागार में जाना छोड़कर तुझे पहरा देने के लिए खड़ा रहूँ ? मैं इतना अधम नहीं हूँ ! यदि आम्रपाली से तुझे प्रेम ही करना हो तो कर, उसके घर में ही आत्महत्या करनी हो तो वह भी कर, मुझे कोई एतराज नहीं; पर मैं लिच्छवी हूँ, क्षत्रिय हूँ ! आम्रपाली के लिए तेरी प्रेम-तपस्या में, मैं कदापि नहीं पड़ सकता। मुझे संथागार में उपस्थित होना ही चाहिए। कठिनाई से तीन महीने में एक दो बार सम्मिलित होनेवाले लिच्छवी राजाओं की शौर्य-प्रेरक सभा छोड़कर यहाँ तेरा द्वारपाल बनूँ ? कभी नहीं।'

प्रेमी मनुष्य जितना विचित्र है, स्वयं प्रेम उतना विचित्र नहीं होता; चिढ़ा हुआ सुधीर सहसा द्रवित होकर उसे समझाने लगा—'चिरंजीव, प्रिय मित्र ! ऐसा न कह; मुझे अधिक समय न लगेगा ! तू भगवान बुद्ध का सौ बार नाम लेगा इतने में तो मैं आ ही पहुँचता हूँ।'

'मैंने अभी शाक्यपुत्र गौतम का धर्म स्वीकृत नहीं किया है !' गंभीर

मुँह बनाकर चिरंजीव ने कह सुनाया !

सुधीर समझा नहीं बोला—'मेरा तो मन ठिकाने नही और तुझे विनोद सूझा है; चिरंजीव ! महल में आते ही मै तीर फेकूं तो समझ लेना कि कार्य सफल हुआ है; यहीं, तेरे पैर के आगे ही तीर आयेगा । तू तो जानता ही है कि धनुर्विद्या में तू मुझे नही पहुँच सकता ! कह चिरंजीव हाॅ, कह केवल हाँ ! नही तो मेरा सारा श्रम मिट्टी में मिल जायगा!....फिर शीघ्र ही हम समय पर संथागार पहुँच जाएँगे ।....'

'पर...'

'बस' उसका मुँह बन्द करते हुए सुधीर बोला—'आम्रपाली को तूने देखा नही इसलिए आनाकानी करता है, पर यदि तू एक बार उसे देख ले...'

'—तब ? तूने उसे कब देखा ? पाॅच वर्ष पहिले ही न ? उस समय तेरी अवस्था युवतियो के सौंदर्य निहारने की नही थी; मैं तेरे साथ ही था, मैंने आम्रपाली को नहीं देखा और तूने भी नही । मूर्ख, तुझ जैसे कितने ही नवयुवक पाली को देखे बिना ही उससे प्रम करते हैं, यह तू जानता है ? तू कोई नई बात नही कर रहा है !'

'चिरंजीव, तू विवाहित है, मेरी दशा तू नही समझेगा !'

'ठीक है; ब्याहे हुए व्यक्ति जवान थोड़े ही होते हैं; किन्तु इतना तो मै दीपक के समान देखता और समझता हूँ कि तू मूर्ख है !'

सुधीर मुँह फाड़कर चिरंजीव की ओर देखने लगा । एक क्षण कोई नही बोला । सहसा चिरंजीव के मुख पर कृत्रिम क्रोध और विनोद के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए, वह फड़क उठा—'मूर्ख, क्या कोई प्रेम करनेवाला नवयुवक इस तरह बातों मे समय गॅवाता है ? लिच्छवि का पुत्र, नन्दीग्राम का युवक, चिरंजीव का मित्र होकर ! अरे, आगे बढ़, दौड़ ! झपट !! नहीं तो वैशाली नगर का ही कोई दूसरा युवक भाग्यशाली होकर—'

चिरंजीव वाक्य पूरा करे उसके पहिले तो सुधीर वैशाली के महाराजा महानाम के वैभवशाली प्रासाद में अदृश्य हो गया ! मुख पर हलकी मुस्कान लाकर चिरंजीव अपने उत्तरीय से ललाट पर के स्वेदबिन्दु पोंछने लगा ।

सुधीर और चिरजीव, दोनों युवक थे; यौवन का ओज उनके अंग अंग पर विकसित था; लिच्छवियों का शुद्ध रक्त उनकी नस में हिलोरें लेता था ! वैशाली मे थोड़ी ही दूर स्थित एक ग्राम से वे अभी ही वैशाली में आये थे।

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व के भारतमें-जंबूद्वीपमें, लिच्छवीका नाम लेते हुए प्रत्येक क्षत्रिय युवक, एक प्रकार के विचित्र गौरव का अनुभव करता था।

उन महाप्रतापी लिच्छवियों का वर्णन अर्थात् स्वतन्त्र प्रजा की कथा—स्वतन्त्रता की कहानी है; बल्कि उससे भी अधिक एकता की कथा है। कहा जाता था कि हिमालय को तोड़ना सरल है किन्तु लिच्छवियों की पंक्ति-विच्छिन्न करना अशक्य है। लोग मानते थे कि लिच्छविगण अजेय हैं। भगवान बुद्ध ने भी एक प्रसंग में कहा था कि 'जहाँ तक लिच्छवियों में साम्य और एकता है वहाँ तक उनको कोई जीत नहीं सकेगा।'

ऐसे शूर थे वे लिच्छविगण—रणवीर और अजेय; निर्भय तथा स्वातंत्र्य प्रेमी !

लिच्छवियों का राज्य ही विभिन्न प्रकार का था। वे कहलाते तो क्षत्रिय ही थे; उन्होंने अपने सम्बन्ध भी अन्य क्षत्रिय वंशों से जोड़े थे—परंतु रीतिरिवाजों में तो वे अपने पूर्वजों का ही अनुकरण करते थे; उनपर किसी सम्राट का शासन न था, गुलामी को वे पहिचानते तक न थे। युद्ध में उत्सर्ग होनेमे ही प्रत्येक लिच्छवि अपने जीवन को सार्थकता समझता था; वे जहाँ जाते जीतते थे, जहाँ हारते वहाँ उत्सर्ग होते थे। मगध, कौशल, शाक्य, काशी—इन सब राज्यों की तेजस्विता लिच्छवियों के आगे मन्द पड़ गई थी। लिच्छवियों के तीर और लिच्छवि का प्रेम, अचूक गिने जाते थे।

लिच्छवि-प्रदेश की छोटी छोटी जागीरों के अधिपति 'राजा' कहलाते थे। ऐसे सब राजा, उपराजा और महाराजा, वर्ष में किन्ही निश्चित दिनों को, और विशेष आवश्यकता होने पर कभी भी, राजधानी वैशाली में सम्मिलित होते थे। नगर के मुख्य सभा-मण्डप-संथागार में सब बैठते थे। यहाँ वे उन सभी सामाजिक, राजनैतिक और दूसरे विषयों पर, जो कि समस्त लिच्छवि समाज अथवा देश पर प्रभावकारी होते, वार्तालाप करते थे। प्रत्येक व्यक्ति स्वत-

न्त्रता से बोल सकता, और समय आने पर लड़ भी सकता था। यदि वाद-विवाद उग्र होने पर, कोई मार्ग न मिलता तब, लिच्छिवियों के पवित्र और अमूल्य 'प्रवेणी पुस्तक' के आधार पर अंतिम निर्णय किया जाता, और वही मार्ग निश्चित और अंतिम माना जाता था। 'प्रवेणी-पुस्तक' के आधार पर, सन्थागार में एक बार निर्णय हो जाने के पश्चात कोई उसका विरोध नहीं कर सकता था, क्योंकि ऐसा करना देशद्रोह और पाप माना जाता था। उस समय सच्चा और आदर्श प्रजावाद जीवित था। प्रायः हिमालय की गोद में स्थित, लिच्छवियों का यह प्रदेश, पूरे प्रायद्वीप में अनुपम था।

लिच्छविगण वेदों को प्रामाणिक नहीं मानते थे; ब्राह्मणों पर वे दृष्टिपात न करते थे; क्योंकि निरर्थक भोजन, धनव्यय और तदनुरूप व्यर्थ बातें उन्हें पसन्द न थी। उनमें चार वर्णों का भेदभाव न था; किसीको भी स्वतन्त्रता से रहने, बोलने, तथा जीने की सुविधा थी, और इसलिए दूसरे राष्ट्रों से पूरे सम्पर्क होते हुए, और उनके रीतिरिवाजो के अनुसार रहते हुए भी तथा स्वयं क्षत्रिय और भारतीय कहलाते हुए भी वे पूर्वजों के शौर्य और परम्परा पर ही चलते थे, और इसीलिए वे सबों से, विभिन्न हो गये थे।

सुधीर की बात सच निकली; अभी तो चिरंजीव की साँस भी धीमी नहीं हुई थी कि, आम्रपाली के उस परम प्रेमी सुधीर का तीर, चिरंजीव के पास ही के छोटे से गुलाब के पौधे में घुस गया। चिरंजीव के प्रसन्न हो कर, पीछे देखते ही दूसरे तीर भी आ गिरे; उनके पीछे धनुप, और उसके साथ ही तरकश भी आ गया! उसके बाद तत्क्षण ही सुधीर का मुकुट आया, और मुकुट का साथ छोड़ने की मनशा न हो इस तेज़ी से सुधीर का पूरा शरीर चिरंजीव के पैरों आगे आ पड़ा।

चिरंजीव विस्फारित नेत्रों से देखने लगा कि एक अत्यन्त सबल मनुष्य हाथ मलता और किटकिटाता हुआ दूर खड़ा था। चिरंजीव ने अपने पैरों में लौटते सुधीर को देखा।

अपमानित सुधीर फिर से अवश्य महल की ओर भागता किन्तु चिरंजीव अपने मित्र की वीरता को फिर से धूल में रोंदती देखना नहीं चाहता था; उसने

दूर खड़े हुए राक्षसी दास का बल निमिषमात्र में माप लिया और अधिक किये बिना, सुधीर को, उसके मुकुट और धनुषबाण सहित बाहर खींच गया। इतना ठीक था कि चिरंजीव शारीरिक बल और चतुराई में सुधीर विशिष्ट था, नहीं तो....

'नहीं तो क्या करता ?' चिरंजीव ने सुधीर को कठिनता से रथ में डाल संथागार ले जाते हुए, पूछा।

'क्या करता ?' सुधीर, क्रोध में तीर सम्हालते हुए बोला।

'हाँ, हाँ, क्या करता ? गांधार का वह पहाड़ी शरीर वाला द्वारप तुझे वक्ष से मसलकर रोटीकर डालता ! आम्रपाली का एक व विनीत प्रेमी, उसीके दास के हाथ से पिटकर मरे, यह देखने की मुझे जरा इच्छा न थी।'

'उहूँ, बाण मेरे पास ही पड़े थे, वह पास आता उसके पहिले तो मैं, उसके पूर्वजों के पास स्वर्ग में पहुँचा देता !'

'फिर वही भूल ! मान ले कि तू उसे मार ही डालता, उसके बाद आम्रपाली के पिता महानाम और लिच्छवियों के नेता 'प्रवेणी पुस्तक' ले ही बैठते ! मुझे संथागार में घसीट कर ले जाया जाता; अनेक शूरवीरों के व में, प्रेम करने जाते हुए, चोरी करने का दोष भी तेरे ही सिर मढ़ा जा लोग हँसने लगते: एक दास को मार डालने की कायरता तेरे नाम के स लगती; और लिच्छवियों का एक बलवीर युवक, एक भी युद्ध में लड़े बि एक भी स्त्री का प्रेम पाये बिना, देशहित का एक भी कार्य किये बिना, का की मौत मर जाता ! इतना ही नहीं बल्कि हमारे गाँव के लिच्छवि युवकों बुद्धिबल और शक्ति पर ही कलंक का टीका लग जाता ! ...इसलिए । मित्र समझकर ऐसे पाप से तुझे बचाना, मेरा कर्त्तव्य था।'

सुधीर बिना चाहे भी हँस ही पड़ा; बोला—'बोलने में तो, मैं तुझसे स हारूँगा ही'....

'छिः, पर मान, कि वह लड़की मिलती नहीं, वह युवती मिली है

नब तू क्या करता सुधीर ?'

'आम्रपाली थी ही कहाँ ?' कुछ निराश होकर सुधीर बोला....'वह तो अपने गाँव, नन्दीग्राम गई है।'

चिरंजीव, सुधीर की निराशा का मन्तव्य समझ गया। उसके मुख पर एक हल्की-सी स्मितरेखा खिल गई। सहसा चाबुक की झनक सुनाई दी; घोड़े उछले, रथ की गति तीव्रतर हुई और सुधीर ने चौंककर चिरंजीव की ओर देखा।

'क्यों, यह क्या करता है, चिरंजीव ?'

'नन्दीग्राम जाना है !' चिरंजीव ने कहा। 'संथागार की सभा समाप्त होने के पहिले तो मुझे यहाँ आना ही चाहिए !'

(३)

'लिच्छवियों !' वायु में कम्पन उत्पन्न करने वाला, रण-हुँकार के समान वह नाद सबों ने सुना और लिच्छवियों से उमड़ते हुए वैशाली के संथागार में शब्दों और शस्त्रों के एक क्षण के निनाद के बाद वहाँ नीरव शान्ति फैल गई। सभा में बैठे हुए प्रत्येक राजा और उपराजा की दृष्टि, सर्वश्रेष्ठ प्रतिभावान लिच्छवी गणनायक महानाम पर जा लगी। सिंह की एक दहाड़ जिस प्रकार बन के प्रत्येक प्राणी को जागृत कर देती है, वैसे ही वृद्ध महानाम का प्रचंड कंठरव प्रत्येक लिच्छवी का हृदय चेतन करने के लिए पर्याप्त था।

'लिच्छवियों !' तीक्ष्ण दृष्टि डालकर महानाम ने कहा—'वज्जिभूमि लिच्छवियों की स्वतन्त्र भूमि है; वह किसी एक लिच्छवी की नहीं, प्रत्येक लिच्छवी उसका पुत्र और रक्षक है ! जहाँ तक लिच्छवियों का सिंहनाद वैशाली में सुनाई देता है, जहाँ तक हममें साम्य और एकता है, वहाँ तक मागधी युवराज बिंबिसार जैसे सैकड़ों बिंबिसार, वैशाली की तिल भर पृथ्वी को भी नहीं छू सकते ! मागधी अपने लिप्सित आक्रमणों से हमारे शत्रु बने हैं; और मागधी युवराज बिम्बिसार भी हमारा शत्रु है !'

तत्क्षण, चारों दिशाओं से एक ही ध्वनि उठी—'बिंबिसार हमारा शत्रु है !'

'कट्टर शत्रु !' एक युवक बीच में ही चिल्ला उठा; हर एक
जिस ओर से यह आवाज़ आई थी वहाँ जा लगी—यह चिरंजीव था
आवेश में आकर वह बोल उठा क्योंकि दो वर्ष पूर्व उसका पिता
मागधी के हाथों मरा था। क्षणिक निस्तब्धता के पश्चात् आसपास
युवक एकाएक बोल उठे—'बिंबिसार हमारा कट्टर शत्रु है !'

अनुभवी वृद्धों ने युवकों को देखकर अनुमोदन किया; वृद्ध मह
गांभीर्य छोड़कर गुनगुनाये—'कट्टर शत्रु !' अन्त में सभापति महान
हुए; सामने ही, संथागार के बीचोबीच, स्वर्णजटित पाट पर, सोने
हुए सुन्दर पतले रेशमी वस्त्र में रखे हुए ताड़पत्रों पर हाथ रखकर वे
पूर्वक बोले—

'सभासदों ! पवित्र प्रवेणी पुस्तक के आदेशानुसार आज ह
करते हैं कि हमारा देश पराजित करने को उद्यत मागधियों के साथ
प्रकार का सम्बन्ध न रखें ! यह प्रतिज्ञा सब सभासदों को स्वीकार ह
कुछ कहना हो वह राजा, उपराजा या महाराजा सभा के सम्मुख
विरोध प्रस्तुत करे !'

महानाम के बोलने के बाद संथगार में फिर से पूर्ववत् शांति छा
समय पश्चात् चारों ओर दृष्टि डालकर, उन्होंने उक्त प्रतिज्ञा दूस
दोहराई; किन्तु सब शांत रहे। तीसरी बार फिर वही प्रतिज्ञा कही;
शब्द तक न निकाला ! अन्त में, सब को शांत देखकर वे बोले—'स
सभा की यह शान्ति बताती है कि यह प्रतिज्ञा सब को स्वीकृत है; मैं
गण की इच्छानुसार आज्ञा करता हूँ कि इस समय से, मगधियों के स
रखनेवाला लिच्छवी देशद्रोही समझा जाएगा !'

अंतिम शब्दों के पूरे होते ही सभागृह में एक गगनभेदी
उठा—'मागधियों से संबंध रखनेवाला लिच्छवी देशद्रोही है !'

देशद्रोह, विशेषकर लिच्छवियों में, घोर अपराध माना जाता
अपराध कि जिसका कोई निवारण ही न था ! लोग देशद्रोही

पत्थर फेंकते, उसके सब कुटुम्बी तो मानों जीते जी ही मृत हो जाते थे। छोटे-छोटे बालकों को नैतिक भय दिखाने को, या युवकों में तिरस्कार की घृणा प्रज्वलित करने के लिए देश-द्रोही के नाम का घृणात्मक उदाहरण दिया जाता था, और वह भी यहाँ तक कि या तो देश-द्रोही के आत्मीयों को आत्महत्या करनी पड़ती या स्वदेश छोड़ कर ही भाग जाना पड़ता !

....उसी क्षण से लिच्छवी संथागार द्वारा किया हुआ वह निर्णय समस्त देश के लिए अनुलंघनीय आज्ञा बन गई ! सभा विसर्जित हुई।

संथागार से बाहर निकलने के बाद प्रत्येक व्यक्ति महानाम की प्रशंसा कर रहा था। उनके प्रभाव से हर कोई प्रभावित था; वैशाली का प्रत्येक महान कार्य उनके प्रोत्साहन और सम्मति से होता था। संथागार से निकला हुआ उनका गर्जन, देश के कोने-कोने में गुंजायमान होता था। उनका मुख, सदा ही शांतिमयी मन्द मुस्कान से विकसित रहता था। वे शायद ही कभी ज़ोर से बोलते थे, किन्तु जब बोलते तब हुँकार करते थे ! उस समय किसी लिच्छवी का साहस न होता कि वह उनके सामने जाकर खड़ा रहे; सब कोई केवल सुनते ही रह जाते थे। हाँ, जब किसी कारणवश उनका हृदय अत्यन्त क्षुभित हो उठता और कोई अन्याय उनके लिए असह्य हो उठता तब ही उन्हें अपना बोल तेज़ करना पड़ता था !

आज की सभा होने का कारण असाधारण था। लिच्छिवियों का, उनके पड़ोसी मागधियों के साथ आंतरिक वैमनस्य बहुत समय से चला आ रहा था। स्वातंत्र्यप्रिय लिच्छविगण, साम्राज्यवादी मागधियों के साथ हर किसी विषय पर लड़ पड़ते थे। सत्ता, विजय और शौर्य के मद में मदमाती मागधी राजपुरुषों की आँखें, उन अजेय, दुर्विनम्र लिच्छवियों के स्वतन्त्र ऐश्वर्य पर जमी हुई थीं। किन्तु साथ ही साथ वे, लिच्छवियों को भलीभाँति पहिचानते भी थे।

मागधियों के अनेक प्रलोभनों को लिच्छवियों ने तिरस्कृत कर दिया था। सरल और शक्तिमान लिच्छवियों ने मागधियों के अगाध वैभव और सुख-साधनों को दुतकार दिया था। वे मागधियों को शत्रु न मानते हुए भी उनसे सम्बन्ध जोड़ने में हिचकिचाते थे। दोनों राज्यों में संबंध पहिले से स्थापित होते हुए भी

शनैः शनैः आपस में कलहकारक प्रसंग उपस्थित हो ही जाते थे। इसलिए जब मागधियों की सार्वभौम सत्ता की महत्वाकांक्षा लिच्छवियों की स्वतंत्रता में बाधक होने लगी, तब वे सहसा सचेत हो गये; और अब सदा के लिए निर्णय कर देने के लिए सब लिच्छवी नेता तत्परता से, वैशाली के संथागार में सम्मिलित हुए और मागधियों को शत्रु रूप मान लेने का निश्चय कर लिया !

संथागार के बाहर रथों का मेला-सा एकत्रित हो गया था। बाहर निकलते हुए सभासद अपना-अपना मन्तव्य प्रकट कर रहे थे; एक दूसरा उपराजा अपने साथ चलते हुए चिरंजीव से कहने लगा, 'महानाम के जैसा दूसरा देशभक्त पाना दुर्लभ है !' चिरंजीव ने भी समर्थन किया—'कहते हैं कि इनके नाम पर वैशाली का एक-एक युवक प्राण देने के लिए तैयार है !'....

'इनके नाम पर....?' 'इनके' पर जोर देता हुआ पास से ही किसी का गम्भीर कंठस्वर सुनाई दिया, दोनों चौंक कर उस ओर घूमे—देखा कि वैशाली का एकमात्र अप्रतिम कूटनीतिज्ञ अभयराज वहाँ खड़ा था। पंचावन वर्ष पार करके, राजनैतिक दाँव-पेच का वह अजोड़ खिलाड़ी अभयराज, ओठों की अपेक्षा आँखों से अधिक बातें करता था। उसका रहस्यमयी मुस्कान वाला मुँह, बड़े-से-बड़े धैर्यशाली को भी बेचैन कर सकता था। वाद-विवाद में वह अजेय माना जाता था !

उपराजा प्रौढ़ था, अभयराज उसे विस्मित देखकर हँस पड़ा। उपराजा बिना कुछ कहे जाने लगा, वह अभय का गूढ़ार्थ समझ गया था। तब अभय ने चिरंजीव की ओर देखा—

'चिरंजीव तू मुझे नहीं पहचानता, पर मैं, तेरे स्वर्गीय पिता को अच्छी तरह पहिचानता था !'

'जी, मेरे पिता ने आपके विषय में कई बार बातें की थीं !'

'ओः हो ! तू मुझे पहिचान भी गया ! वैशाली में तो तू पहिली ही बार आया है न ? अच्छा चल, मेरे यहाँ चल....' सहसा रुककर, अर्थभरी आवाज से, मुस्कराकर अभय फिर कहने लगा—'मैं तुझे महानाम के घर भी ले जाऊँगा !....' चिरंजीव चौंक उठा—'वहाँ क्यों ?'

'प्रत्येक युवक महानाम का भक्त है, क्या तू यह नहीं जानता ?'... चिरंजीव कुछ संकुचित हो गया; कुछ ठहर कर गंभीरता से बोला, 'महाशय, मैं तो वहाँ होकर आया हूँ। आप कहें तो मै अपने एक मित्र को आपके पास ले आऊं? उसे वैशाली देखना है, और महानाम को भी !'

'बहुत ठीक, कहाँ है वह ?'

'अभी यहाँ आ ही पहुँचेगा; उसे गणनायक महानाम से मिलने की अत्यधिक इच्छा है !'....

चिरंजीव के शब्दों में गर्भित भाव समझने में कुशाग्र अभय को कुछ भी देर न लगी। आम्रपाली के पीछे पागल होनेवालों में एक और उसी के घर आनेवाला था ! उसने मना न किया।

उनसे कुछ ही दूर, संथागार से बाहर निकलकर आगन्तुकों से बातें करते हुए महानाम आ रहे थे; एक रथ को देखकर वे चौंक पड़े, 'अरे! मेरा रथ यहाँ कहाँ से ? मैं तो जीवक के रथ में आया था !....'

इसी बीच सहसा रथ के अग्रभाग में से, जिस तरह बादल के हट जाने पर चांद चमक उठता है वैसे ही आम्रपाली का मुख बाहर निकला; और क्षण भर, हाँ क्षणभर तक आसपास खड़े हुए लोगों ने बातें बंद कर दीं; वे आम्रपाली की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगे—

इतना रूप ! इतनी मादकता !! ऐसा अस्फुट यौवन! हृदय के धकधक वेग को तीव्रतम कर देनेवाली यह नृत्यांगना !!....कवियों के काव्य में से, कथाकारों के वर्णन में से, कलापतियों के चित्रण में से उद्भूत, तेजस्विता और सौंदर्य के सत्व जैसी यह सुन्दरी, सम्मोहक सौंदर्य बिखेरती हुई रथ पर खड़ी थी। चिरंजीव, विवाहित चिरंजीव भी इस अद्‍भुत आम्रपाली को देखता ही रह गया। आम्रपाली के पास उसका भाई आनन्द भी खड़ा था—उन्नत, तेजस्वी और वीर।

'धूर्तो !....' रथ के पास पहुँचकर, आम्रपाली और आनन्द को देखकर महानाम बोले—'इतने में तुम नन्दीग्राम से आ भी गये ?....'

पर अभी तो महानाम ने अपना वाक्य भी पूरा न किया था कि एक

रथ पूरे वेग से दौड़ता हुआ पाली के रथ से टकराता हुआ आगे निकल ग
रथ के सारथी के हाथ लगाम में बुरी तरह उलझ गये थे और उन्मत्त अश्व
शक्ति से दौड़ रहे थे !

एक क्षण में पाली, पुनः अपने रथ पर चढ़ गई और 'हाँ' या 'ना'
आवाज़ निकलने के पहिले ही उसने अपना रथ उस रथ के पीछे छोड़ दिय
कुछ ही दूर जाने पर आगे दौड़नेवाले रथ का एक पहिया निकल गया; पा
ने अपने घोड़ों को तेज़ किया; घोड़े उड़े; और आगेवाले रथ के सारथी स
उछलकर नीचे के गड्ढे में गिरने से पहिले ही पाली ने घोड़ों को पकड़ लिया; कि
रथ स्थिर होते होते एक पत्थर की टक्कर से उछल पड़ा और रथ
सारथी एक बार उलटकर ज़मीन पर गिरा और बेसुध हो गया !

संथागार के सभासद रथ के पास दौड़ आये; भीड़ को चीरता हुआ चि
जीव शीघ्रता से, टूटे हुए रथ के पास आ पहुँचा, और पाली की गोद में पड़े
युवक की ओर इंगित कर के सामने खड़े हुए अभयराज से कहा,—'यही मे
मित्र है।' फिर चिरंजीव नीचे बैठ गया; दुपट्टे से हवा करते हुए बोला-
'सुधीर, सुधीर, आँखें खोल, देख तो सही भाई—!'

सुधीर ने आँखें खोलीं; चिरंजीव का प्रफुल्ल मुख देखा, पास में ही अ
आँखों के सम्मुख किसी अद्भुत सौंदर्यदेवी को देखा; देखकर वह स्तब्ध र
गया। चिरंजीव के शब्द कान पर टकराये—'यह आम्रपाली है, तुझे जीव
दान देनेवाली आम्रपाली !'

आम्रपाली का नाम सुनते ही सुधीर की आँखों के सामने अँधेरा छ
गया और पाली की ओर देखकर मुस्कराने की चेष्टा करते हुए वह पुनः पाल
की गोद में लुढ़क गया; चिरंजीव ने उसे उठा लिया।

महानाम, पाली के रथ में बैठने जा रहे थे कि अभयराज ने उन्हें रो
लिया—'गणराज, बहुत दिनों से इन्कार करते आ रहे हो, किन्तु आज त
मेरे आमन्त्रण के लिए 'हाँ' कहनी ही होगी, आज 'ना' नहीं सुनी जायगी।

'आऊँगा अभयराज, अवश्य आऊँगा !'

'कब ! कल सूर्यास्त के बाद ?'

महानाम [illegible] नहीं, मुस्कराते हुए सिर हिला कर वे रथ में बैठ गये; अभय हँस कर उन्हें देखता हुआ पीछे हटा। और उस समय आम्र-पाली ने देखा कि अभयराज उसके पिता को नहीं, स्वयं उसे देख रहा था ! जिस तरह किसी भयंकर विषधर सर्प की फुफकार उसकी ओर आ रही हो और वह उसे दूर करना चाहती हो, इस तरह उसने शरीर को एक ओर खींच कर घोड़ों को जोर से चाबुक लगाई। आनन्द चौंका, महानाम चौंके और रथ दौड़ने लगा।

अभयराज, पाली के दूर जाते हुए रथ को चुपचाप देखता ही रहा; उसकी अँगुलियाँ कटि में बँधी हुई छोटी कटार पर धीरे-धीरे थिरक रही थीं, उसकी आँखों में एक अवर्णनीय भाव चमक रहा था !

उसके पास खड़े रथ में चिरंजीव ने सुधीर को सुला दिया। पाली को देखने से उत्पन्न होनेवाली मुस्कान, सुधीर के बेसुध होने पर भी दूर नहीं हुई थी !

(३)

'तेरी पत्नी तुझे मिल जाए तो उसे ठीक ठीक पहचान सकेगा ?'

'तू भी क्या बकता है संजय ! छः महीने हम साथ रहे हैं तब क्या मैं उसे पहिचान नहीं सकता ? पर गाँव में आकर क्या तू अपनी मति ही गँवा बैठा है ? सात वर्ष में उसका चेहरा ऐसा कितना बदला होगा ?'

'तुझे विश्वास है कि वह पाली के साथ ही रहती है ?'

'हाँ, भाई हाँ, हमारे राजपुरोहित ने उसे देखा है; हमारे मंत्री महाराज ने उसे देखा है, और एक-एक मागधी व्यापारी जो यहाँ आ चुका है, वह महाराज बिंबसार से, पाली के साथ-साथ मेरी रेवा की भी प्रशंसा करता है, भूला नही है !'

'चुप भी रह ! हम वैशाली की सीमा में प्रविष्ट हो चुके हैं; यहाँ हम छद्मवेश में आए हैं यह न भूल; यदि किसी को जरा भी सन्देह हुआ कि

ये युवक मगधराज बिंबसार के मनुष्य हैं, तो अपने वक्ष भालों से विन्धे हु
समझना ! मालूम है न, लिच्छवियों का प्रेम और तीर एक समान लक्ष्यग
अचूक और मर्मभेदी होते हैं ! एक बार उनसे छू जाने पर फिर वे प्राण
साथ ही छूटेंगे ।'

'मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि लिच्छवियों की दृष्टि में हम सब शत्रु
किन्तु यदि रेवा को न देखना होता तो मैं यहाँ पैर ही काहे को रखता;
तो तू मुझे घसीट लाया ! अस्तु तू अच्छी तरह जानता है न कि रेव
मुझे बुलाया है ?'

'हाँ, हाँ, हमारे राजपुरोहित का छोटा भाई क्या झूठ कहता था ?
तू रेवा को देखते ही कहीं बोल न बैठना ! तुम दोनों की सुलह मैं करा दूँग

'संजय ! मैं मानता हूँ कि मैं गँवार हूँ, पर एक बात अभी तक
समझ में नहीं आई कि पाली को देखने के लिए तू इतना क्यों अकुला
है ! तू तो अध्वर्यु ब्राह्मण है, पाली के साथ तेरा विवाह कदापि नहीं
सकता !'

'यहाँ विवाह करना ही कौन चाहता है !'

'ऐं, तब तो तू पाप करता है, घोर पाप ! जिस कुमारी कन्या से
विवाह करना नहीं उससे प्रीत जोड़ता है ? छिः संजय, तू पागल है !'

'पाली के लिए कौन पागल नहीं है !'

'शीघ्र ही उसका विवाह कर देना चाहिए ।'

'और उसका पिता भी यही विचार करता है, किन्तु पाली ब्याह न
कर सकती !'

'संजय ! तेरी बुद्धि का लोहा सभी मगधवासी मानते हैं और मुझे भी
पर अभिमान है; राजनीतिक दाँवपेंच और कूटनीति में तू निपुण है;
शिक्षित है, और मैं ब्राह्मण होते हुए भी गँवार हूँ किन्तु किसी समय
ऐसी मूर्खतापूर्ण बात कह देता है कि मुझ जैसे भी तुझे मूर्ख नहीं, ग
कहने को लाचार होते हैं...' इतना कहकर ब्रह्मदत्त, जैसे किसी महापंडित
पराजित कर दिया हो ऐसे आनन्द से खिलखिला कर हँस पड़ा। कुछ

बाद हँसी रोककर बोला—'पाली सुन्दर है, युवती है, रूप की राशि है और इस भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक वह प्रख्यात है; फिर भी तू कहता है कि पाली विवाह नहीं कर सकती ?'

अंतिम वाक्य बोलते हुए ब्रह्मदत्त ने आवाज़ एकदम ऊंची कर दी किन्तु संजय ने उसे उतनी ही शक्ति से दबाकर कहा—'हाँ !'

"किस तरह ?' ब्रह्मदत्त ने पूछा।

'पाली एक है और उससे विवाह करने वाले अनेक हैं, लाखों हैं, इस-लिए पाली ब्याह नहीं कर सकती !'

'ओफ़ !'

'किन्तु जिसने पाली से प्रेम नहीं किया, वह युवक नहीं है !'

'ओह !'

'पाली के लिए जिसने अपना जीवन धोखे में नही डाला वह मनुष्य नहीं है !'

'हूँ !'

'जिसने पाली को नहीं देखा, उसने जगत में कुछ नहीं देखा ! पाली एक है और अनूप है !'

'देख संजय, मैं गंवार हूँ सही, इतनी बड़ी बात मुझे समझ में भी नहीं आती पर तू ऐसी बात करता है जिससे शंका होती है कि कहीं मैं तो पाली से प्रेम नहीं करने लगा !'

'तू चिन्ता न कर, प्रेम तेरे पास आने के पहिले ही अपने आप घुट-घुट कर मर जाएगा ! इसलिए तो मैं तुझे महाशिव कहता हूँ !'

'तू चाहे जो कह ! अब तो मैं पाली को देखे विना रहने वाला नहीं; ऐसी कैसी वह पाली है कि जो उसे देखे वही उसके पीछे पागल ! ऐ पाली ओ ... ओ ... ओ .... अंतिम 'ओ' ब्रह्मदत्त जोर से बोल दिया उसका मुँह खुला ही रह गया ! संजय ने घबरा कर पूछा—'क्या है?'

ब्रह्मदत्त ने वैशाली की सीमांत के कुए पर पानी भरने वाली
की ओर अंगुली-निर्देश किया.... !

कुए पर मानों यौवन की बाढ़ आई थी; कुए से पानी खींचते
ऊंचे नीचे होने पर, कितनी ही युवतियों के, बारीक वस्त्रों में से उन
अवययों की आकर्षक क्रिया दिखाई देती थी। सिर पर गागर रखते
की पीन पयोधर-प्रदेश, किसी के चपल पद, किसी के हृदय-भेदी ति
किसी के अर्धस्फुटित ओठों पर खेलती हुई मुस्कान, ब्रह्मदत्त जैसे गं
संजय जैसे चतुर को भी मुँह खुलाकर पृथ्वी से जोड़ देने
पर्याप्त थीं !

कुए के आसपास, कुछ ही दूर पर, वैशाली के कई युवक
रियों को देख रहे थे; किंतु सब से बड़ी बात तो यह थी कि दो तीन युव
किसी पनिहारी को कंकरी भी मारते थे। और यही बताने के लिए ब्र
इंगित भी किया था।...बहुत ही अनिच्छापूर्वक, संजय ने, पनिहारियो
लगाई हुई आँखें कंकरी मारने वालों की ओर घुमाई और बोला—'इ
बड़े 'ओ' करने जैसा क्या था, यह तो यहाँ का रिवाज है !'

ब्रह्मदत्त जैसे यह बात मानना न चाहता हो उस तरह आँखें
बोला—'लड़कियों को कंकर मारने का ?' 'हाँ, हाँ, हाँ ! कंकरी लगी
हारी कंकर मारने वाले की ओर देखती है, भला लगे तो ठीक,
क्रोधित होते ही स्त्रियों को कितनी देर लगती है ? किंतु इसके लिए
प्रार्थना या पुकार नहीं करती; यह स्वतंत्र मनुष्यों का देश है।'

'विचित्र हैं ये लिच्छवी भी ! अद्‌भुत हैं, भयंकर हैं ये ि
गण ! !...'

'क्या रटने लगा ?' गुनगुनते हुए ब्रह्मदत्त से संजय ने पूछा।

'अध्वर्यु, जब यहाँ की स्त्रियाँ इतनी सुन्दर हैं, और युवक इत
हैं तब उनकी पाली कैसी होगी ? ना इस पाली को देखे बिना अब मे
चीचे नहीं बैठने का !'

'अरे...' संजय एकाएक चिल्ला उठा, और ब्रह्मदत्त चौंका; संजय ने ब्रह्मदत्त को अपनी ओर खींच लिया और एक रथ क्षणभर में उनके पास से निकल गया, जैसे कोई विद्युतधारा उनके पास हो कर दौड़ गई हो। दोनों अवाक् होकर रथ की ओर देखने लगे !

फिर जब कंकरी मारने वाले वे युवक, रथ की ओर कुछ आगे बढ़कर, आपस में विनोदपूर्वक बातें करने लगे तब ही दोनों को सुध आई कि पाली उनके ही पास होकर निकल गई है। घबराहट के कारण, चक्कर आने से एकाएक कहीं गिर न जाय इस डर से ब्रह्मदत्त नीचे बैठ गया, संजय ने भी वैसा ही किया !

उन्होने पाली को देखा; अपूर्व, अद्भुत और अनुपम सौंदर्य उनके पास आकर अंतर्हित हो गया था !

दूसरे दिन सन्ध्या समय पाली अपने उद्यान में बैठी थी, सामने रखी हुई वीणा पर उसकी अगुलियाँ धीरे धीरे चल रही थी; सम्मुख ही, उसकी सखी और सहचरी रेवा उसे एकटक देखती हुई बैठी थी ! पाली की दृष्टि एकाएक रेवा पर पड़ते ही उसकी अंगुलियाँ रुक गई—'क्या है रेवा ?'

'स्त्री को इतना निठुर न होना चाहिए।'

'ऐसा मैने क्या किया है रेवा ?' कृत्रिम क्रोध से प्रेम पूर्ण शब्दों में आम्र-पाली ने पूछा।

'पूछ कि तूने क्या क्या नहीं किया ? यह तो मैं मानती हूँ कि पुरुषों मे स्त्रियों से आधी बुद्धि भी नहीं होती, किन्तु पुरुषों को इस तरह रंजित करना भी तो अपनी बुद्धि का मूल्य आप करने जैसा है ! विवाह कर ले न पाली ! दिन-रात प्रेम में दग्ध होने वाले युवकों को कुछ तो शान्ति मिले !'

'इस में तूने क्या नई बात कही ? पर ब्याहूँ किसे ?'

'बात सच है; वैशाली में तो सब स्त्रियाँ ही रहती हैं, और पुरुष हैं वे तो सब वृद्ध और कुरुप; सच है न ! तुझे हुआ क्या है ?'

'हृदय नहीं मानता, कंपित ही नहीं होता !'

'ओ हो ! पर तेरा मन तो किसी दिन भी न मानेगा !' रेवा ने कटा
किया—'इसे तो देख समझकर भी नहीं मानना है न ! जो युवती धनुषबा
ले कर लड़ने निकले, किसी युवक की ओर ध्यान ही न दे, उनकी अपेक्षा ही
करे; बुद्धि और विद्या में पुरुषों से तुलना करने निकले और उन्हें परास्त
कर डाले, ऐसी स्त्री के हृदय में कंपन का अनुभव इस जन्म में तो क्या, कित
जन्मों में भी होने से रहा !'

'तेरी इस प्रशंसा के लिए पारितोषिक हूँ ? वाचाल कहीं की तूने स्व
कम्पन का अनुभव कितना किया है, बोल तो ? ...'

'फिर मेरी बात की !....अरे, उसे देखा ? देख, देख ! ....' पाली
झट सिर घुमाकर देखा—दूर बाग के छोर पर सुन्दर पुष्पों की अंतिम क्यारी
उस ओर दो पगड़ियाँ मानों अकेली ही चली जा रही थीं। पाली ने संके
करके चुटकी बजाई, रेवा ने तुरन्त पाली के हाथ में धनुषबाण रख दिये; उस
प्रत्यंचा खींचकर बाण छोड़ दिये और दोनों पगड़ियाँ एक साथ हवा में उड़
हुई पृथ्वी पर गिर गई ! उसी समय ब्रह्मदत्त की चीख सुनाई दी; रेवा भय
भीत सी होकर खड़ी हो गई किन्तु कोई दिखाई नहीं दिया; न मनुष्य, न प
ड़ियाँ या तीर ही !

'कौन था ?' पाली ने हँसते हुए चिल्ला कर पूछा। 'कोई नहीं !' रेवा
भी उसी प्रकार उत्तर दिया, और तब धीरे से बोली—'मेरा ब्राह्मण यहाँ !

(४)

स्वर्गोपम मगध के भव्य राजप्रासाद के उत्तर में स्थित कौतुकभवन
मगधराज बिंबिसार एक बड़े स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा था। दक्षिण देशों औ
समुद्र के उस पार से आये हुए रत्नमाणिक उसके सिंहासन पर जटित थे
नृत्यागार की चारों भित्तियों, फर्श और छत पर की हुई वाराणसी, मध्यप्रदे
और तक्षशिला की शिल्प, चित्रादि कलाएँ ललितकला की पराकाष्ठा सूचि
करती थीं।

अत्यन्त महीन वस्त्र पहिनकर मगध का नरराज बिंबसार एक जरीन तकिए से टिककर बैठा था। उसकी सुन्दर स्नायुबद्ध भुजाओं और पुष्ट वक्षस्थल को स्पष्ट बतलाता हुआ उसका एकमात्र उत्तरीय, सुन्दरी यवन युवतियों के हाथों में धीमे धीमे हिलनेवाले मोरपंख और चँवरों से धीरे-धीरे उड़ रहा था ! राजा में देवत्त्व न होते हुए भी वह देव जैसा मालूम होता था।

क्षत्रिय राजाओं में, गौतम बुद्ध का सर्वप्रथम अनुयायी, और उनसे पाँच ही वर्ष छोटा, राजा बिंबसार जितना पराक्रमी और विद्वान था, उतना ही रसिक भी था। अपने लिए उसे जितना गर्व होना चाहिए उससे अधिक उसकी प्रजा को था ! उसके राज्य में प्रजा सुखी थी, धान्य और फल-फूलों से देश उमड़ा जाता था। दान करने में प्रत्येक श्रेष्ठी परस्पर स्पर्धा करते थे। बिंबसार के देदीप्यमान मुख पर प्रत्येक नागरिक न्योछावर होता था। उसकी गुणग्राहकता के कारण दूर देशों के कलाकार उसकी राजसभा में आते ही रहते थे।

आज, इस समय काश्मीर से कर्नाटक, गांधार से योनक और अलसेन्द्र से आनर्त तक की नर्तकियाँ रूपराशि बिखेरती हुई उसके सामने नृत्य कर रही थीं। प्रत्येक नर्तकी के अंगपरिचालन और भावभंगी के लिए, सदा की भाँति प्रेक्षकों को यह कहना कठिन था कि, इनमें से किस की अपेक्षा कौन अधिक सुन्दर और कुशल है !

आज वारांगना खेमी, महाराज बिंबसार का मन अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित कर रही थी। बहुत से रसिक युवक खेमी को देवशापित किन्नरी अथवा स्वर्ग से आशीष पाई हुई नर्तकी समझते थे। आँखे और लज्जा, उसके प्रमुख आकर्षण थे ! नृत्य के अंत में जब वह अपने नयन नीचे गिरा देती, और स्वयं भी महाराज के पैरो के पास गिर जाती तब हरएक नृत्य देखनेवाले का मन, उसे अपने हृदय से लगा लेने को होता था ! यहाँ तक कि वृद्ध और अरसिक महामात्य देवेन्द्र भी, नृत्यालय में निर्दोषमुखी खेमी को देखने ही आते थे। आज वे बिंबसार के एक ओर, नीचे के आसन पर बैठे थे,

और सिंहासन की दूसरी ओर, अश्विनदेव के अवतार जैसा महाराज का बाल सखा नृत्यमग्न-कुमार-भृत्य बैठा था, जिसे तक्षशिला के विद्यापीठ ने समर्थ वैद्यराज बनाकर भेजा था।

खेमी का नृत्य समाप्त हुआ; नयन नीचे गिरे, उसका सुन्दर सुकुमार शरीर नृत्य के अंत में, एक चित्ताकर्षक अभिनय के साथ महाराज के पैरों के पास गिर गया। परन्तु—

आज, महाराज बिंबसार की उमंग जाने कहाँ विलीन हो गई थी। खेमी के नमित नयन महाराज बिंबसार को देखने के लिए ऊपर उठे, तब वह विस्मय से अवाक् रह गई; उसका स्वाभिमान मानों भड़क उठा! उसकी ओर उदासीनता से देखना अर्थात् सौन्दर्य को क्रूरतापूर्वक तिरस्कृत करना था। उसे मृदु रोष हुआ—रसराज आज असन्तुष्ट क्यों रहा?

एक ओर बैठा हुआ, अकेला महामात्य इसका कारण जानता था!

राजा बिंबसार धीमे पैरों से अपने शयनगृह में प्रविष्ट हुआ। शयनगृह के नीचे एक बड़ी अट्टालिका में राजगायक मोहिनीपुत्र, वीणा पर एक सुन्दर राग अलाप रहा था। राजा, मन को संगीत की ओर ले जाने का प्रयत्न करने लगा; किन्तु उसका हृदय व्यथित था।

दस दिनों से उसकी हृदतन्त्री पर 'आम्रपाली'; 'आम्रपाली' का नाद गूँज रहा था। कोशल के प्रसेनजित, कौशाम्बी राज और काशीराज आदि राजाओं को भी उसने केवल आम्रपाली की ही चर्चा करते हुए सुना था। उसने, रसिकता से सदा दूर रहनेवाले महामात्य देवेन्द्र को भी, मुख पर [illegible] भाव लाकर, आम्रपाली की ही प्रशंसा करते देखा था; और [illegible] के पास तो सिवा [illegible]पाली के दूसरा विषय ही न था!

सात दिन हुए, लिच्छवियों के नेतृत्व में वज्जिभूमि की समस्त प्रजा मगध और मगधराज को अपना शत्रु घोषित किया था, और इसीलि[illegible] आम्रपाली के लिए होनेवाली दुविधा उसके मन को और अधिक व्याकुल [illegible] [illegible]पाली कैसी होगी?

और सिंहासन की दूसरी ओर, अश्विनदेव के अवतार जैसा महाराज का बाल-सखा नृत्यानन-कुमार-भृत्य बैठा था, जिसे तक्षशिला के विद्यापीठ ने समर्थ वैद्यराज बनाकर भेजा था।

खेमी का नृत्य समाप्त हुआ; नयन नीचे गिरे, उसका सुन्दर सुकुमार शरीर नृत्य के अंत में, एक चित्ताकर्षक अभिनय के साथ महाराज के पैरों के पास गिर गया। परन्तु—

आज, महाराज बिंबसार की उमंग जाने कहाँ विलीन हो गई थी। खेमी के नमित नयन महाराज बिंबसार को देखने के लिए ऊपर उठे, तब वह विस्मय से अवाक् रह गई; उसका स्वाभिमान मानों भड़क उठा! उसकी ओर उदासीनता से देखना अर्थात् सौन्दर्य को क्रूरतापूर्वक तिरस्कृत करना था। उसे मृदु रोष हुआ—रसराज आज असन्तुष्ट क्यों रहा?

एक ओर बैठा हुआ, अकेला महामात्य इसका कारण जानता था!

राजा बिंबसार धीमे पैरों से अपने शयनगृह में प्रविष्ट हुआ। शयनगृह के नीचे एक बड़ी अट्टालिका में राजगायक मोहिनीपुत्र, वीणा पर एक सुन्दर राग अलाप रहा था। राजा, मन को संगीत की ओर ले जाने का प्रयत्न करने लगा; किन्तु उसका हृदय व्यथित था।

इस दिनों से उसकी हृद्तन्त्री पर 'आम्रपाली'; 'आम्रपाली' का नाद गूंज रहा था। कौशल के प्रसेनजित, कौशाम्बी राज और काशीराज आदि राजाओं को भी उसने केवल आम्रपाली की ही चर्चा करते हुए सुना था। उसने, रसिकता से सदा दूर रहनेवाले महामात्य देवेन्द्र को भी, मुख पर [illegible] भाव लाकर, आम्रपाली की ही प्रशंसा करते देखा था; और [illegible] के पास तो सिवा [illegible]पाली के दूसरा विषय ही न था!

सात दिन हुए, लिच्छवियों के नेतृत्व में वज्जिभूमि की समस्त प्रजा ने मगध और मगधराज को अपना शत्रु घोषित किया था, और इसीलिए [illegible] के लिए होनेवाली दुविधा उसके मन को और अधिक व्याकुल कर [illegible] कैसी होगी?

बिंबिसार का साहसी हृदय पाली को एक बार निहारने के लिए अधीर हो उठा। उसके दोनों बालसखा, ब्रह्मदत्त और संजय ने कोई मार्ग ढूँढ़ निकालने का बीड़ा उठाया था, वे वैशाली जाकर अभी तक लौटे न थे, इसलिए बिंबिसार की अधीरता ने उग्रस्वरूप धारण कर लिया। केवल सौंदर्य के वर्णन से किसी के पीछे पागल हो जाने वाले लोग बहुत कम होते हैं; लोग उन्हें कवि कहते होंगे, किन्तु पाली के बारे में सुनकर उसके पीछे पागल होने वाले अगणित थे, और मगधराज बिंबिसार भी उनमें से एक था !

बिंबिसार के श्वासोश्वास में मानों आम्रपाली प्रविष्ट हो गई थी। उसके नाम में ही जैसे जादू था कि जो कोई उसका स्मरण करता, दिन और रात उसके बैरी हो जाते तथा आम्रपाली और उसका आकर्षण इतना प्रबल हो जाता कि बड़ा महारथी भी उसमें अपना अस्तित्व मिला देने में गौरव मानता था।

आम्रपाली का विचार करते हुए बिंबिसार ने शय्या में अभी तो सिर भी न रखा था कि मुख्य द्वार से संजय और ब्रह्मदत्त आ पहुँचे और प्रणाम करके पास ही बैठ गये। बिंबिसार इन दोनों को देख, उछल कर खड़ा हो गया; उसका हृदय पाली का समाचार सुनने के लिए अधिक तेज़ी से धड़कने लगा। तब उन दोनों ने एक दूसरे को रोक कर, टोंक कर और लड़झगड़ कर वैशाली की बातें विस्तारपूर्वक कहना प्रारम्भ कीं। पूरे एक प्रहर तक सुनने के बाद भी बिंबिसार को लगा कि उसने कुछ भी नहीं सुना है। उसने फिर से, दोनों को एक बार सब कुछ सुना देने को कहा और थका हुआ ब्रह्मदत्त, फिर से कहने के लिए तैयार हुआ—

'महाराज, ये दो तीर देखे ? चाहती तो हम दोनों को मार ही डालती; जैसे उसके तीर हैं वैसी ही उनकी आँखें हैं और वैसी ही तीक्ष्ण जिह्वा भी है। क्या कहूँ उस सौंदर्य की सीमा पाली को महाराज ! अद्‌भुत है, देवी है महाराज ! मैं तो गँवार हूँ, पूछिये इस संजय को, इसने बहुत से नाटक पढ़े हैं, शास्त्र भी कितने ही सीख डाले हैं, कहिए तो सही पाली का कुछ वर्णन करे !' संजय कहने के लिए तैयार ही था—

'महाराज ! वह एक ही है जिसका वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता, जिसे आँखों से देखे बिना कल्पना करना भी मिथ्या है !'

बिंबिसार ने तीक्ष्ण दृष्टि से दोनों की ओर देखा, सुनाई न दे इस तरह, छुपाकर धीरे से एक लम्बी साँस ली और कई बार पूछा हुआ प्रश्न फिर पूछा —'और पाली अभी तक ब्याही नहीं ?'

'नहीं महाराज !' छवी बार संजय ने यही उत्तर फिर से दुहराया।

'अभी तक कोई पाली से विवाह नहीं कर सका !' उसने जोर दे कर कहा। बिंबिसार ने ब्रह्मदत्त के दिये हुए तीरों को हाथ में लेकर घुमाते हुए कहा—

'इसका कारण सचमुच....'

'हाँ महाराज, आप सोचते हैं, वही है; पाली के योग्य, पाली से विवाह करने वाला यौवन-सम्पन्न पुरुष इस ओर जन्मा हो ऐसा आज तक किसी ने नहीं सुना !'

'महाराज, मैंने रेवा से सब कुछ जान लिया है !'

'तेरी रेबा तेरे साथ आई है ?'

'नहीं महाराज, हमारे पंचों ने रेवा को निकाल देने की आज्ञा दी थी; आप तो सब जानते ही हैं, क्यों महाराज ? वर्षा के कारण, रेवा को एक दिन सारथी के साथ उस पार रहना पड़ा था ! किन्तु पंचों ने कहा—रेवा पतित है ! स्वर्गीय बड़े-बूढ़ों ने भी कहा—'रेवा पतित है !' और क्रोध में मुझे भी लगा कि 'रेवा पतित है !' पर महाराज ! सच कहता हूँ वैशाली में रहते हुए भी, प्रत्येक लिच्छवी पाली को देखता है, पर रेवा के सामने देखने का आज तक किसी ने साहस न किया। महानाम उसे अपनी पोषित पुत्री मानते हैं ! क्यों संजय ?'

संजय ने मुस्कराकर बिंबिसार की ओर देखा और बोला—'और यह भी कि रेवा ने ब्रह्मदत्त को वचन दिया है कि जहाँ आम्रपाली होगी वहाँ रेवा भी साथ ही रहेगी; इसलिए रेवा को लाना हो तो केवल एक ही मार्ग —पाली को यहाँ लाना ! ...और पाली को यहाँ लाने की क्षमता हम जैसे

ब्राह्मणों में नहीं है !

'महाराज, सच बात है ! संजय जैसे तो हजारों बुद्धिमान आम्रपाली के यहाँ पानी भरते हैं; रेवा न होती तो मालूम हो जाता ! ऐसी वीर है आम्रपाली ! बुद्धिमान, सुदर, आकर्षक, अद्‌भुत, अद्वितीय, अवर्णनीय, अ....'

'बस, बस, ब्रह्मदत्त, हद हो गई।....' संजय ने ब्रह्मदत्त को बीच ही में चुप करते हुए कहा। तब मृदु हास्य से बिम्बसार की ओर देखकर हाथ जोड़ते हुए बोला—'महाराज, अब आपकी नींद में और अधिक बाधा डालने का हमारा अधिकार नहीं है, किन्तु अन्त में इतना कहना चाहता हूँ, कह दूँ ?....महाराज, पाली के लिए एक ही पुरुष विद्यमान है, और वह है मगधराज बिम्बसार !'

इतना कहकर संजय ने, ब्रह्मदत्त के कुछ बोलने के पहिले उसे कोहनी मारकर उठा दिया, और नियमानुसार आज्ञा लेकर वे दोनों शयनगृह के बाहर चले गये।

पाली के तीरों को हाथ में फिराता हुआ बिम्बसार एक टक उन्हें देखने लगा। राजगायक मोहनीपुत्र का गीत पंचमस्वर से खिल उठा था, और साथ ही साथ जैसे गीत की अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए, एक नारी की मृदु-कंठध्वनि उसकी ध्वनि के साथ मिलने लगी थी।

बिम्बसार के प्राण, शरीर और हृदय किसी अनिवार्य आकर्षण से खिचे जा रहे थे—उसके चक्षु तीरों को देखने हुए भी नही देखते थे; उसके श्रवण, मोहनीपुत्र का गीत सुनते हुए भी नहीं सुनते थे। अभी भी बिम्बसार के कानों में संजय के मीठे शब्द गूँज रहे थे—'पाली के लिए एक ही पुरुप विद्यमान है, और वह है मगधराज बिम्बसार !'

महामात्य देवेन्द्र अभी तक राजप्रासाद के मुख्य प्रवेशद्वार पर ही खड़े थे। ब्रह्मदत्त को भेजकर अकेला संजय नमस्कार करके उनके पास खड़ा हो गया; महामात्य हँसे और संजय के कंधे पर हाथ रखकर बोले—'जहाँ तक तुझ जैसा एक पुरुष मेरे पास है, वहाँ तक मैं बहुत कुछ कर सकता हूँ संजय ! बुद्धि-प्रधान राजनीतिक दावपेच खेलने के साथ ही साथ मूर्ख भी दिखाई देना

किसी साधारण मनुष्य का काम नहीं है !...'

'गुरु को शिष्य की श्लाघा करना शोभा नहीं ता गुरुदेव...!' संजय विनयपूर्वक बोला। देवेन्द्र हँस पड़े। संजय ने फिर कहा—

'अब तो महाराज के अणु-अणु में आम्रपाली ही रम रही है !'

'इतने ही से संतोष नहीं मानना है संजय, विवाह भी...' इतना कहकर देवेन्द्र एकदम चुप हो गये। उन्होंने अपना वात्सल्यपूर्ण हाथ संजय की पीठ पर फेरा और उसे जाने की अनुमति दी; संजय जाने लगा।

हृदयंगम रागिनी में मोहनीपुत्र का गीत सुनाई दे रहा था; उसकी प्रेयसी भी उसके कंठ से कंठ मिलाकर रागिनी छेड़ रही थी। दूर जाते सजय की पीठ को देखते हुए देवेन्द्र को बचपन याद आ गया। रागिनी ने स्मरण-शक्ति को उसका दिया था। महामात्य को बचपन के बाद यौवन की याद आई। यौवन के उन्मत्त स्वप्न उनकी आँखों के आगे झिलमिलाने लगे ! वैशाली का प्रत्येक मार्ग और एक-एक राजप्रासाद उसके चक्षु के आगे आ खड़ा हुआ ! स्वयं लिच्छवी न होते हुए भी, एक लिच्छवी को जन्मते ही मातृभूमि के लिए जितना अनुराग पिलाया जाता था, उतना ही प्रेम उन्हें वैशाली से था। वैशाली के लिए अपनी माँ का अपरिमित प्रेम उनके हृदय में पुनः जागृत हुआ। वैशाली को मगध के साथ जोड़ने का दृढ़ संकल्प फिर सवेग बना।

महामात्य को युद्ध पसन्द न था; वे बुद्धानुयायी थे। महाराज बिम्बसार का युद्ध प्रेम और साहस उन्हें बिलकुल नहीं सुहाता था। लिच्छविगण शत्रु के लिए बहुत ही प्रतिशोधी क्रूर और दुर्विनम्र थे; किन्तु हृदय से पवित्र थे, नीच तो उन्हें कहा ही नहीं जा सकता ! यह बात महामात्य भली-भाँति जानते थे। लिच्छवियों की दुर्बलता को वे एक खिलाड़ी की अपेक्षा अधिक जानते थे, और इसीलिए जो हँसकर प्रसन्नता से प्राण दे सकता हो, उसपर तलवार से वार करना उन्हें निरर्थक लगता था। महामात्य देवेन्द्र इसीलिए वैशाली को, एक भी लिच्छवी का रक्त बहाये बिना लेना चाहते थे। यही उनका दृढ़ निश्चय

था। केवल वे अकेले ही इस दृढ़ निश्चय को जानते थे, संजय भी नहीं। धीमी चाल से महामात्य अपने महल की ओर जाने लगे। उनसे सौ ही कदम पीछे उनके अंगरक्षक भी थे।

राजा बिम्बसार के हाथों में अभी भी दोनों तीर खेल रहे थे, और मोहिनी-पुत्र तथा उसकी प्रेयसी का गीत अभी तक चल रहा था—खिल रहा था !

(५)

'क्या उत्तर है महानाम....?' अपनी विजय से अत्यधिक गर्वित हो, इस ढंग से मूछों को धीरे धीरे ताव देता हुआ अभय लिच्छवी तेज़ दृष्टि से महानाम की ओर देखने लगा। उसके मुख पर, उपेक्षा मिश्रित गंभीर हास्य की अस्पष्ट रेखा-खेल रही थी।....

किंतु महानाम की पीठ अभय की ओर थी; उनकी आँखें झरोखें में दूर दिखाई देते हुए प्रासाद पर जा लगीं, उनका हृदय प्रासाद के उद्यान में घूमती हुई पाली की ओर था; और मन, सोचा जाय तो अपनी काँपती हुई वृद्ध किंतु सशक्त अँगुलियों द्वारा अभय की गर्दन बैठा था !...अभय के शब्दों ने उनका ध्यान भग किया ! उन्होंने पीठ घुमाई—दो सुन्दर मदिरा के पात्र लिए हुए अभय उनके संमुख खड़ा था। अभय की ओर वे एक-टक देखने लगे—

'असंभव, अभयराज ! बिलकुल अशक्य है; यह नहीं हो सकता !'

'नहीं होगा ?'....अभय ने मद्यपात्र की ओर देखते हुए पूछा।

'नही, नहीं होगा !' महानाम का पूर्ववत् निश्चयात्मक स्वर सुनाई दिया।

'नही हो सकता ?' अभय ने फिर पूछा। इस बार उसने आँखें ऊपर की ओर कीं; उसके मुख पर खेलती हुई वह मुस्कान कुछ कम हो गई थी।

'नहीं, नहीं, नही !' कहते-कहते महानाम एकाएक अभय के पास झपट आये, किंतु अभय की पलकें तक न हिलीं, उसी तरह वह उनकी ओर देखता रहा; बोला—'यह होना ही चाहिए महानाम !'

'अभय, हमारी उम्र अब मगाधया स रणक्षेत्र में जूझने और भिक्षुक होकर ससार के कोने में उपदेश देने की है; कन्याओं से ब्याहने की नहीं !'.... इतना कहकर महानाम एक ऊँचे तख्त के पास गये, और उस पर रखी हुई तलवार और मुकुट उठाकर ज्यों ही उन्होंने द्वार की ओर जाने के लिए पीठ की, तो सामने वैसा जरा भी अभिनय किये बिना, मार्ग रोककर अभय खड़ा था; उसके मुँह पर अभी तक वही भीषण हास्य था—

'मुझे वय और उपदेश की आवश्यकता नहीं महानाम ! मेरे पास दोनों है, और पर्याप्त है !'

महानाम के दाँत उन शब्दों को सुनते ही एकाएक जोरों से भिच गये; आँखें खिचीं, तलवार की मूठ कुछ कठिन हुई किंतु क्षणभर बाद, अपने को रोककर वे बोले—'पाली का मिलना असम्भव है !'

अभय का मुस्कराता मुँह सहसा गंभीर हो गया; दैत्य का मूर्त-स्वरूप जैसे महानाम के सम्मुख एक क्षण में आ खड़ा हुआ; निश्चित गंभीरता से वह बोला—'मैं पाली को लेकर रहूँगा !'

'महानाम की तलवार बीच में आयेगी अभयराज !'....यह कहते हुए महानाम की आँखें फैल गई जैसे चिनगारियाँ निकल रही हों ! अभय के मुख पर पहिले जैसी ही मुस्कान फिर घिर आई; वह बोला—'अभय के सामने अभी तक कौन-सी तलवार अखंड रह सकी है महानाम ?'...

'महानाम की नग्न तलवार, अभय लिच्छवी ने अभी तक पास से नहीं देखी है; शरीर से प्राणों का वियोग करने के लिए ही वह तलवार म्यान से बाहर निकलती है !' इतना कह कर महानाम द्वार के बाहर निकल गये।

अभय ने उनसे आने के लिए कहने का साधारण शिष्टाचार भी नहीं किया; जैसा था उसी तरह, उन्हीं भावों में वह कुछ क्षण खड़ा रहा ।....... तब एक हाथ धीरे से उठा कर मद्य-पात्र ओठों से लगाकर बोला—'अभयराज जिसे चाहता है उसे पा सकता है !'....वह झरोखे की ओर गया, उसकी

आँखें दूर दिखाई देते हुए महानाम के प्रासाद पर जा लगी, उसे, प्रासाद के उद्यान में विहार करती हुई पाली का ध्यान आया; और बड़बड़ाया—'पाली मेरी है, मैं उसे अपनी बनाऊँगा ही !' तब धीरे-धीरे दूसरा पात्र भी मुँह से लगाकर एकाएक हँस पड़ा ! हँसते-हँसते उसने पीछे मुड़कर देखा और रुक गया—द्वार के बीचोंबीच सुधीर खड़ा था, उसके सिर और कंधों पर अभी तक पट्टियाँ बँधी थीं, उसका शरीर अकड़ा हुआ था, हाथ की मुट्ठियाँ कठोर हो गई थीं, पतले ओंठ जोरों से सिमट गये थे और मुँह क्रोध से लाल हो गया था। अभय ने मुस्करा कर पूछा—'क्या बात है सुधीर ?'

'मुझे सुधीर न कहें, शत्रु कहिए, आज से हम दोनों एक दूसरे के आजीवन शत्रु हैं !' इतना कहते ही सुधीर नीचे गिर गया; अभय के हाथों से दोनों पात्र गिर पड़े ! ...

सुधीर का 'पालीमय' मस्तिष्क इतना तीव्र हो गया था कि इस क्रोध का प्रभाव हानिकारक होने से वह बेसुध हो गया ! अपनी पाली को 'अपनी बनाऊँगा' कहे, इसे सहना सुधीर के लिए असम्भव था और उसकी यह आन्तरिक अवस्था समझने में, अभय जैसे राजनीतिज्ञ को देर न लगी।

थोड़ी ही दूर नर्तकी रेणुका के महल में विलास छलक रहा था। वृद्ध रेणुका की—या यों कहिए रेणुका से उत्पन्न अभय की—पुत्रियाँ, वैशाली के योद्धाओं का मनोहरण कर रही थीं। संगीत और नृत्य की धुन में नर्तकियों की पायल, मृदंग की ताल और कंठ से निकलते हुए आलाप के आरोहण-अवरोहण के साथ-साथ, नवजवानों की 'आह' और 'हाय हाय !' की ध्वनि उर्ध्वगामी होकर दूर तक सुनाई देती थी।

महानाम अपने महल में पहुँचे, उनके हृदय में तुमुल संग्राम मच रहा था। मध्यरात्रि हो जाने पर भी वे अपने शयनगृह में टहलते ही रहे। कभी भी चित्त की स्थिरता न खोनेवाले और सदा शांतमुख रहनेवाले महानाम आज

पुत्री के भविष्य के लिए व्याकुल हो उठे थे। उनका पुत्र आनन्द, सामने ही एक ओर बैठा हुआ अपने पिता की उद्विग्न मुखमुद्रा देख रहा था—वह तर्क कर रहा था, जो उपयुक्त थे। वैशाली का भविष्य मानों उन दिनों पिता-पुत्रों के हाथों में खेल रहा था; था भी ऐसा ही; और इसका कारण थी पाली—एक स्त्री, एक सुन्दर युवती—महानाम की पुत्री।

'बेटा, अभय पशु और नीच होते हुए भी शक्तिशाली लिच्छवी है, उसका खुला विद्रोह करने से पूरी वैशाली में गड़बड़ मच जायेगी!'

'सहस्रों को नाश करने वाले एक दुष्ट को मार डालना कोई पाप नहीं, बल्कि उसे शीघ्र नष्ट न करना ही अधर्म है!'

'अभय अजेय है बेटा, वैशाली को अभी उसकी आवश्यकता है, हमें उसकी राजनीति की आवश्यकता है, उसकी बुद्धि की आवश्यकता है! इसी बुद्धि से उसने हमारे और अपने हज़ारों शत्रुओं के मुँह बन्द किये हैं; लोगों की कुंजी उसने अपने हाथ में इस तरह ले रखी है कि यदि उसका शिकार क्रोधाग्नि में जल-जल कर राख भी हो जाए, तो भी विरोध नहीं कर सकता!'

'मैं विरोध करूँगा, और दूसरे हज़ारों से कराऊँगा!'

'अकेले नीच से निबटा जा सकता है, अकेला बुद्धिमान भी मात किया जा सकता है, किन्तु नीच और बुद्धिमान मिलकर भीषण रूप धारण कर लेता है। अभय नीच भी है और बुद्धिमान भी। साधु बनकर पिशाच होना उसे आता है, वह एक आँख से रोकर दूसरी आँख से हँस सकता है; महादांभिक है वह। सत्य और प्रमाण के पर्दे के पीछे, तथा देशभक्ति और युवकों की शक्ति का बहाना करके उसमें, वैशाली के एक-एक युवक को पागल बना देने की क्षमता है। सैकड़ों बड़े बूढ़े उसके अत्याचारों को जानते हुए भी नहीं बोल सकते!'

'क्यों?'

'अभय का स्थान ग्रहण करने योग्य इस समय यहाँ कोई नहीं है।

वैशाली की राजनीति का विचारक वह है; राजा महाराजाओं को स्पष्ट उत्तर देना वह सिखाता है। हम तो मात्र युद्ध में उत्सर्ग होने वाले हैं; हमें कहाँ और कैसे उत्सर्ग करना, इसका निर्देश हमें अभय देता है! यही कारण है कि मेरी तलवार अभय के सामने केवल उद्यत होगी, उसे मार नहीं सकेगी !'

'अभय भले ही वैशाली का प्रभु बनने लगे किन्तु प्रतिष्ठा के सम्मुख अभय का मेरे लिए कुछ भी मूल्य नहीं है पिताजी ! मनुष्य-धर्म की रक्षा के लिए ही तो मरना और मारना होता है ! स्वाभिमान और पूर्वजों के गौरव के लिए हजार बार मरना होगा तो मैं मरूँगा, यह मेरा कर्त्तव्य है ! मैं लड़ूँगा; अकेला लड़ूँगा किन्तु अभय को जीने न दूँगा !'...

'अभय को जीवित रखना ही होगा !'

'तो पाली मर जाएगी; उस नीच बुद्धिमान को ब्याहने के पहिले वह अवश्य मर जाएगी। मैं अपने हाथों से उसे मारूँगा !'

'तुम भाई बहिन का स्नेह देख कर तो कभी-कभी मुझे भी ईर्ष्या हो जाती किन्तु....किन्तु अभय की 'हाँ' के लिए 'हाँ' करनी होगी !' महानाम धीरे-धीरे निश्चित-सा करते हुए बोले। पक्षपात रहित न्याय करने की उनकी रीति यहाँ भी वैसी ही रही। हृदय टुकड़े-टुकड़े होकर निकल रहा हो वैसे ही उनके कंपित शब्द निकल रहे थे—'मैं पिता हूँ बेटा ! लड़की के बाप के हृदय की व्यथा तुझ जैसा युवक नहीं समझ सकेगा ! पुत्री के पिता का अभिमान गल जाता है, उसे पराधीन और पराजित रहना होता है केवल बच्ची के सुख के लिए !'....महानाम ने अपना अंतिम निर्णय कह दिया; किन्तु आनन्द को यह मान्य नहीं था। आनन्द महानाम का पुत्र था, संस्कारों से उसे भी अपने निश्चय पर, प्राणांत तक अडिग रहने की शिक्षा मिली थी। उसका रक्त उबल उठा। पिता की ओर देख कर वह गरज उठा—

'अभय लिच्छवी और आपके बीच आपकी तलवार नहीं, मेरी तलवार आएगी पिताजी !'

'वैशाली, बेटा वैशाली !'.... वृद्ध की आँखें सहसा जैसे बाहर निकल आईं, उनके मुख पर एक अकल्पित भाव उदित हुआ; क्रोध में भरा हुआ आनन्द भी क्षण भर अपने पिता को देखता रह गया। कोई प्रगल्भ प्रेत या वैशाली की संरक्षक कोई महान आत्मा जैसे शून्य में से निकल कर महानाम में प्रादुर्भूत हुई। वे खड़े हो गये, उनके वृद्ध शरीर और आत्मा में कम्पन उत्पन्न हुआ—

'आनन्द, एक बार तुझे सिखाया था, आज फिर सीख ले। देख, यदि लिच्छवियों में जरा भी भेद भाव या अशांति फैली अथवा जरा भी वैमनस्य उत्पन्न हुआ तो वैशाली को बिम्बसार के अधिकृत ही समझना ! मागधी लोग और प्रायः सम्पूर्ण जंबूद्वीप हमें धर्महीन, क्रूर, जड़ और केवल लड़ाकुओं के रूप में ही पहिचानता है। शताब्दियों से प्राचीन हमारी स्वतन्त्रता हमारे नियम और रीति-नीतियाँ उन्हें नहीं सुहाती। ब्राह्मण लोग हमें अपनापन बेचकर दास बना देना चाहते हैं, और क्षत्रिय हमारी स्वतन्त्रता को असत्य करना चाहते हैं, यह ध्यान रहे बेटा ! मल्ल, शक और मागधी वैशाली पर टूट पड़ने को प्रस्तुत हैं। लाखों के हित के आगे पाँच-पच्चीस व्यक्तियों का सुख सुविधा की कुछ भी गिनती नहीं है। एक पाली से हजारों बचते हों तो अपनी लड़की होते हुए भी उस पाली की मुझे आवश्यकता नहीं है !'

'पर हमारी प्रतिष्ठा ?'

'हमारी प्रतिष्ठा के पहिले वैशाली की प्रतिष्ठा है। दो-चार लिच्छवियों का [illegible] होना देखा जायगा किन्तु समस्त लिच्छवी जनता का निर्मूल होना नहीं [illegible] जा सकता! आनन्द, अभय लिच्छवी का तिरस्कार मैं प्रत्यक्ष रूप में नहीं [illegible]र सकता !'

'तब पाली का क्या होगा ?'

'पाली...' महानाम रुक गये और स्थिर नेत्रों से आनन्द को देखने लगे; [illegible]नका कम्पन कम हो चला था—'पाली मेरी पुत्री है, महानाम की पुत्री को [illegible] धर्म सिखाने की आवश्यकता नहीं !'

'किन्तु अभय ब्याहे उसके पहिले ही कोई दूसरा विवाह कर ले तब ?

'तब ? कर ले !....'

'करेगा ही !'

'किन्तु बहुत शीघ्र ही विवाह करे तब ! यह बात लोगों में फैलाने में अभय को अधिक समय नहीं लगेगा। आँखों में धूल डालकर काम निकालने में अभय को बहुत कम समय लगता है, यह न भूलना !'

'पाली का विवाह करके उसकी आँखों में मैं धूल डालूँगा !'

'तेरे शब्दों पर मुझे आस्था है आनन्द !'

इतना कहकर महानाम शय्या पर गिर गये; आनन्द ने धीरे से उनके पैर शय्या में रखे; महानाम ने करवट बदली, उनकी आँखों में आँसू की एक अस्पष्ट झलक थी, जिसे आनन्द न देख सका !

शयनगृह के बाहर पैर रखते ही आनन्द रुक गया, वहाँ दासी भद्रा खड़ी थी; उसे देखते ही आनन्द का रहा सहा क्रोध भी विलीन हो गया। भद्रा की प्रेम-भरी आँखें इसका कारण थीं। आनन्द ने द्वार बन्द किया।

भद्रा थी तो दासी ही, किन्तु उसके जीवन का भूतकाल किसी को ज्ञात न था; महानाम के घर की अन्तर्व्यवस्था की वह अधिष्ठात्री थी। कोई उसे दासी न मानता था। उसके पास एक ही वस्तु थी—अगाध और असीम प्रेम—जो कि आनन्दके चरणोंपर अर्पित था। दासीसे विवाह करना आनन्दको इसलिए कठिन था कि महानाम वैशाली के एक प्रतिष्ठित नेता थे। दोनों का प्रेम धीरे धीरे, अप्रकाश्य भाव से वहाँ तक पहुँच गया था जहाँ उससे छूटना उन दोनों के लिए असम्भव था। उन दोनों के हृदय साक्षी थे कि उन्हें मृत्यु भी अलग नहीं कर सकती। यह होते हुए भी, किसी ने दोनों का प्रेम-सम्भाषण न सुना,

'वैशाली, बेटा वैशाली !'.... वृद्ध की आँखें सहसा जैसे बाहर निकल आई, उनके मुख पर एक अकल्पित भाव उदित हुआ; क्रोध में भरा हुआ आनन्द भी क्षण भर अपने पिता को देखता रह गया। कोई प्रगल्भ प्रेत या वैशाली की संरक्षक कोई महान आत्मा जैसे शून्य में से निकल कर महानाम में प्रादुर्भूत हुई। वे खड़े हो गये, उनके वृद्ध शरीर और आत्मा में कम्पन उत्पन्न हुआ—

'आनन्द, एक बार तुझे सिखाया था, आज फिर सीख ले। देख, यदि लिच्छवियों में जरा भी भेद भाव या अशांति फैली अथवा जरा भी वैमनस्य उत्पन्न हुआ तो वैशाली को बिम्बसार के अधिकृत ही समझना ! मागधी लोग और प्रायः सम्पूर्ण जंबूद्वीप हमे धर्महीन, क्रूर, जड़ और केवल लड़ाकुओं के रूप में ही पहिचानता है। शताब्दियों से प्राचीन हमारी स्वतन्त्रता हमारे नियम और रीति-नीतियाँ उन्हें नहीं सुहाती। ब्राह्मण लोग हमें अपनापन बेचकर दास बना देना चाहते हैं, और क्षत्रिय हमारी स्वतन्त्रता को असत्य करना चाहते हैं, यह ध्यान रहे बेटा ! मल्ल, शक और मागधी वैशाली पर टूट पड़ने को प्रस्तुत हैं। लाखों के हित के आगे पाँच-पच्चीस व्यक्तियों का सुख सुविधा की कुछ भी गिनती नहीं है। एक पाली से हजारों बचते हों तो अपनी लड़की होते हुए भी उस पाली की मुझे आवश्यकता नहीं है !'

'पर हमारी प्रतिष्ठा ?'

'हमारी प्रतिष्ठा के पहिले वैशाली की प्रतिष्ठा है। दो-चार लिच्छवियों का नष्ट होना देखा जायगा किन्तु समस्त लिच्छवी जनता का निर्मूल होना नहीं सहा जा सकता ! आनन्द, अभय लिच्छवी का तिरस्कार मैं प्रत्यक्ष रूप में नहीं कर सकता !'

'तब पाली का क्या होगा ?'

'पाली...' महानाम रुक गये और स्थिर नेत्रों से आनन्द को देखने लगे; उनका कम्पन कम हो चला था—'पाली मेरी पुत्री है, महानाम की पुत्री को धर्म सिखाने की आवश्यकता नहीं !'

'किन्तु अभय ब्याहे उसके पहिले ही कोई दूसरा विवाह कर ले तब ?

'तब ? कर ले !....'

'करेगा ही !'

'किन्तु बहुत शीघ्र ही विवाह करे तब ! यह बात लोगों में फैलाने में अभय को अधिक समय नहीं लगेगा। आँखों में धूल डालकर काम निकालने में अभय को बहुत कम समय लगता है, यह न भूलना !'

'पाली का विवाह करके उसकी आँखों में मैं धूल डालूँगा !'

'तेरे शब्दों पर मुझे आस्था है आनन्द !'

इतना कहकर महानाम शय्या पर गिर गये; आनन्द ने धीरे से उनके पैर शय्या में रखे; महानाम ने करवट बदली, उनकी आँखों में आँसू की एक अस्पष्ट झलक थी, जिसे आनन्द न देख सका !

शयनगृह के बाहर पैर रखते ही आनन्द रुक गया, वहाँ दासी भद्रा खड़ी थी; उसे देखते ही आनन्द का रहा सहा क्रोध भी विलीन हो गया। भद्रा की प्रेम-भरी आँखें इसका कारण थीं। आनन्द ने द्वार बन्द किया।

भद्रा थी तो दासी ही, किन्तु उसके जीवन का भूतकाल किसी को ज्ञात न था; महानाम के घर की अन्तर्व्यवस्था की वह अधिष्ठात्री थी। कोई उसे दासी न मानता था। उसके पास एक ही वस्तु थी—अगाध और असीम प्रेम—जो कि आनन्दके चरणोंपर अर्पित था। दासीसे विवाह करना आनन्दको इसलिए कठिन था कि महानाम वैशाली के एक प्रतिष्ठित नेता थे। दोनों का प्रेम धीरे धीरे, अप्रकाश्य भाव से वहाँ तक पहुँच गया था जहाँ उससे छूटना उन दोनों के लिए असम्भव था। उन दोनों के हृदय साक्षी थे कि उन्हें मृत्यु भी अलग नहीं कर सकती। यह होते हुए भी, किसी ने दोनों का प्रेम-संभाषण न सुना, क्योंकि वे कभी प्रेम की परिभाषा में बात नहीं करते थे। किसी ने उनका प्रणय भी न देखा, क्योंकि वे किसी को देखने न देते थे। उनका प्रेम, प्रेम ही था; अगाध और आंतरिक !

थोड़ी देर तक इसी तरह देखते रहने के बाद भद्रा ने मौन भंग किया 'वरराज को खोजने के पहले ही विवाह की जल्दी किस लिए ? पाली को ब्याहने वाला पाली की अपेक्षा चतुर होना चाहिए। है ?'

'तेरे ध्यान में है ?'

'ना !'

'कोई भी नहीं ?'

'होगा तो सही !'

'कौन है, कहाँ है ? कैसे मालूम हुआ ?'

'ईश्वर सेर के सिर सवा सेर रखता ही है ! पाली का सवाया भी कहीं होगा तो सही न ?'

आनन्द हँस पड़ा ! भद्रा निर्निमेष नेत्रों से उसे देखती रही।

(६)

वैशाली के वीथि-मंदिरों पर रात उतर आई थी—चाँदनी रात। रसिक लोग कूटागार से थोड़ी ही दूर स्थित महा-उद्यान में अपनी प्रियतमाओं के साथ विहार कर रहे थे। कई तो घरों की ओर लौटे जा रहे थे। पेड़ों की गहरी छाया में, शिलाओं पर, कितनों ही के गलों में अभी तक उनकी प्रियतमाओं के कर-कमल लिपटे हुए थे। कई ऐसे भी निर्बन्ध और निरंकुश युवक थे जो अभी भी अपनी रसिक रूप-सुन्दरियों के साथ, विचित्र मदमस्ती से वहाँ प्रविष्ट हो रहे थे। उनके ओठों पर की सुरा अभी तक सूखी भी न थी। उनकी वे प्रेयसियाँ या तो नर्तकी थीं या गायिकाएं; जिनकी ओर, दिन में कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता था ! वैशाली ही थी न ! उसे संगीत और नृत्य की आवश्यकता थी, इसलिए इन कलाकारों का भी ललित कला जैसा ही सम्मान किया जाता था—ये नर्तकी और गणिकाएँ वैशाली के युवकों की बुद्धि को तत्पर और उल्लास-मय रखने के लिए आवश्यक थीं !

अभी उद्यान के एक ओर दर्शकों का झुण्ड लगा था। कभी-कभी पूरे उद्यान को ही हँसी से भर दे इस तरह दर्शक हंस पड़ते थे और दूर कहीं वृक्षों के

नीचे एकांत में प्रेमालाप करते हुए कोई 'जोड़ा' चौंक उठता ! पश्चिमी प्रदेशों से कई नट आये थे, जो कठपुतलियों का खेल दिखाते थे।

कुछ शौक़ीन युवकों के आग्रह से इस समय एक नाटक खेला जा रहा था। तेल के दीपक के प्रकाश में प्रत्येक पुतली स्पष्टता से दिखाई दे रही थी। पुतलियों की आकृतियाँ ठीक स्त्री पुरुषों जैसी थीं। घोड़े, ऊँट, हाथी, कुत्ते, शुक, मैना और चिड़िया तक की पुतलियाँ थी, मानों दो गज के विस्तार में समाई हुई विश्वकर्मा की छोटी-सी सृष्टि ही हो ! कठपुतलियों के सूत्रधार प्रेक्षकों को दिखाई नहीं देते थे। उन कठपुतलियों की उस रंगभूमि के आस-पास सुन्दर चित्रवाला एक पर्दा था, जिसके पीछे खड़े रहकर सूत्रधार पुतलियों को नचाते थे। दोनों हाथों की दस अँगुलियों और जिह्वा पर उनका अद्‌भुत अधिकार था। उनके पास ही एक वाद्ययंत्र भी छुपा हुआ था—इसलिए कठपुतलियाँ केवल बोलतीं ही न थीं, बल्कि गाती भी थीं, और नाचती भी ! सूत्रधार अपनी कला में इतने निपुण थे कि दर्शकों में खड़ी हुई कितनी ही गानेवाली भी विस्मित होकर पुतलियों के नृत्य और संगीत को मुग्ध दृष्टि से देख रही थीं ! नाटक भी निराला था—एक वृद्ध किसी युवती कन्या से विवाह करने को तैयार हुआ है लड़की अपनी सहेलियो के साथ मिलकर ब्याहने वाले बूढ़े की ऐसी हँसी करती है कि अत मे हार मानकर उसे 'ना' कहनी पड़ती है। समाज के कितने ही प्रहारों के लिए सोद्देश्य व्यंग और लहजे से बोले जाने वाले तीखे शब्द क्षण में देखने वालों को गंभीर बना देते, क्षण में वे उसे गुनगुनाने लगते और क्षण में वहाँ हास्य के फौवारे छूट जाते ! दर्शकों के पीछे एक मनुष्य खड़ा था। दूसरों को दिखाने भर के लिए वह कठपुतलियों की ओर देखता था किन्तु उसकी दृष्टि चारों ओर घूम जाती थी और तब एक धीमी निःश्वास लेकर वह नाच देखने के लिए फिर से कठपुतलियों की ओर मुँह घुमा देता था !

इतने में एक ओर कुछ कोलाहल-सा हुआ और देखते-देखते रेवा अपने दो अंगरक्षकों के साथ हाँफती हुई वहाँ आ पहुँची ! पाली की रेवा को

'किसलिए धीरे बोलूँ ? मैं ज़ोर से बोलूँगा, मै लिच्छवी हूँ ! किसी का दास नहीं ! मैं बोलूँगा, अवश्य बोलूँगा !'

'सुधीर...!'

'मैं किसी से नही डरता चिरंजीव ! अभय क्या, अभय के बाप से भी नहीं ! पाली मेरी है, मेरी अपनी है, या तो उसे ब्याहूँगा नहीं तो कट मरूँगा ! नही, आत्महत्या नही करूँगा। मैं डरता नहीं, समझा !'

चिरंजीव ने सुधीर को कमर से सम्हाल कर उसके मुँह पर हाथ रखा। कठपुतली के नाटक की तरह इन दोनों के आस-पास भी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। चिरंजीव घबराया; नशे में और कुछ न बोल दे इस डर से उसने सुधीर को वहाँ से हटाने का बहुत प्रयत्न किया किंतु सुधीर जाने कैसे, संबल चिरंजीव के हाथों से छूट गया और दौड़ता हुआ एक पहाड़ जैसे सैनिक के पीछे छुप गया और चिल्लाकर कहने लगा—

'भाइयों, किसी भी वृद्ध पुरुष पर विश्वास करने के पहले सोच लेना, तुम्हारे शुभचिंतक होने का दावा करने वाले ये राजधुरंधर, समाजधुरंधुर और धर्मधुरंधर सब चोर हैं, दांभिक हैं, विषैले साँप हैं....!' चिरंजीव क्षुभित हो कर सुधीर को पकड़ने दौड़ा किंतु सुधीर ने तो एक छोड़ दूसरे के पीछे छुपकर 'लुकाछिपी' खेलना शुरू कर दी। उस पर नशा चढ़ा था, क्रोध चढ़ा था, वह अशिष्टता की सीमा लाँघ गया—'देखो लिच्छवियों ! यह मेरा मित्र भी शत्रु हो गया है; यह मुझे निर्वीर्य रहने का उपदेश देता है ! एक विषैले साँप की फुँफकारों के सामने मुझे कायर, डरपोक और कापुरुष होने की सलाह देता है। पर मै स्वतन्त्र लिच्छवी हूँ, पाली मेरी है, मैं डरता नहीं—अभय से, अभय के बाप से भी !'...

सुधीर चिरंजीव के हाथों में आने से बच गया। पाली और अभय का नाम ही लोगों में कौतुहल उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था ! वह एक छोटे से झुंड में जाकर बोला—'मित्रो ! यहाँ खड़ा हुआ प्रत्येक युवक मेरा मित्र है ! पकड़ लो इस चिरंजीव को, यह कायर है, डरपोक है और सबसे बड़ी बात यह

है कि यह विवाहित है ! यह बँधा हुआ है ! यह मेरा मुँह बन्द करना चाहता है, पर मैं मुँह बन्द नहीं करूँगा ! बोलूंगा, चिल्लाकर कहूँगा कि पाली बूढ़ों के लिए नहीं, जवानों के लिए है ! हमारे लिए है !! तुम मुझे नशे में न समझना, मैं अपने हृदय के सच्चे उद्गार तुम्हारे सामने व्यक्त कर रहा हूँ, और यहाँ खड़े हुए प्रत्येक युवक को तलवार निकाल कर अपने साथ खड़े रहने का आग्रह करता हूँ !'

पाली और अभय के बारे में, प्रकाश्य रूप से बोलना कितना भयंकर है यह बात चिरंजीव भली भाँति जानता था। लोगों की भीड़ बढ़ रही थी और उसके साथ ही सुधीर का आवेश भी बढ़ता जा रहा था। दर्शकों के बढ़ जाने पर, चिरंजीव ने उछलकर सुधीर को गिरा दिया; उसे बेसुध होने में कुछ भी देर न लगी, चिरंजीव उसे कंधे पर उठाकर ले गया !

इस घटनास्थल से थोड़ी ही दूर एक वृक्ष की आड़ में, कठपुतलियों का नाच शांति से देखने वाला एक मनुष्य यह सब सुन रहा था; उसीके पीछे कठपुतलियों का वह दाढ़ीवाला सूत्रधार खड़ा था जो कुछ व्याकुल दिखाई देता था। लोगों के बिखर जाने पर उसने धीरे से उस मनुष्य के कान में पूछा-'अभय कौन है, संजय ?'

'आप जिसके बारे में सुबह मुझसे पूछ रहे थे वही निर्भय लिच्छवी सर्दार, और महान योद्धा जो अब प्रेमी है !'

'वह पाली को ले जाना चाहता है ?'

'हाँ, वह पाली को ले ही जायगा।'

'यह नहीं होगा !'

'यह बात आपके हाथ में नहीं। अभय को कोई रोक नहीं सकता महाराज ! लिच्छवियों के कट्टर शत्रु भी यही कहते हैं कि यदि विषधर सर्प और अभय एक ही मार्ग में सामने मिले तो सर्प को छोड़ देना किन्तु अभय को मार डालना चाहिए !'

'धीरे बोल, संजय !'

संजय चुप हो गया। राजा बिम्बसार धीरे-धीरे वृक्ष की जड़ पर बैठ गया। सूत्रधार के भेष में उसका रूप छुप न सका था। नकली दाढ़ीमूछें लगाने पर भी उसकी आँखों की ज्योति किसी भी सुन्दरी को आकर्षित करने में समर्थ थी। इतने में एक व्यक्ति ने कहा—

'भोजन तैयार है महाराज!'

'शी...श्...श्....नायक कह!' सूत्रधार ने टोककर कहा। बिम्बसार अपने आठ दस साथियों के साथ एकांत में भोजन करने बैठा। अभय को ढूंढ़ निकालने, उसे देखने और हो सके तो उससे मिलकर बातचीत करने का उसने निश्चय कर लिया था।

'महाराज....!' उनमें से एक बोला—'नगर मे जाने के लिए मेरा मन 'ना' कहता है!'

'हाथों में लिया हुआ काम पूरा न करना उससे हार मानना है, और मै हार को समझता ही नहीं...!' बिम्बसार ने निर्भयतापूर्वक कहा।

'यहाँ आपसे मित्र के रूप में कुछ भला बुरा कह जाने के लिए क्षमा माँगता हूँ। महाराज! जीवन में एक स्त्री के लिए प्राण देना उतना आवश्यक नही जितना किसी अधिक उत्कृष्ट काम के लिए उसे बचाना है!'

'मै ब्राह्मण नहीं और विचारक भी नहीं...!'

आप मरनेवाले हैं, मारनेवाले है; किंतु यह सब समय पर ही शोभा देता है!'

'मैंने तुम सबों से पहिले ही कह दिया था, मेरे साथ न आओ। तुम में से किसी ने न माना; अब यहाँ आकर क्या चाहते हो? भाग जाने की बात करते हो?'

'महाराज! आपका शरीर आपका नहीं, हमारा हैं, देश का है! उसे चोट पहुँचने के पहिले ही हम सब उत्सर्ग हो जाएँगे! किन्तु...'

'पाली का महल तूने कितनी बार देखा है?....' महाराज ने अपनी पूर्ववत् राजसी निर्भयता से पूछा।

अपनी बात को बिलकुल उड जाती देखकर सजय अधिक न बोल सका, किन्तु उसका हृदय भीतर से गजभर फूल गया था ! इसी समय लौट जाने की बात न निकाल कर बिम्बसार के हृदय में पाली को देखे बिना, संजय ने वापिस न जाने का निश्चय दृढ़ कराया था ।

इतने में...दोनों कुछ चौंक पड़े। सामने वृक्ष की छाया में किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। बिंबिसार और संजय धीरे-धीरे उस ओर चले गये।

(७)

'मैं चलूंगी, चलूंगी, अवश्य चलूंगी !'

'मैं तुझे जाने नही दूंगा !'

'किसलिए?'

'सीमांत के मागधियों ने हमारे ग्रामीणों को उसकाया है; युद्ध होने की अधिक सम्भावना है।'

'इससे क्या...?' पाली ने निश्चित स्वर में अपने भाई से पूछा।

'कुछ नहीं, कुछ नही !' आनन्द ने जैसे बिना चिढ़े ही उत्तर दिया—

'पर अकारण ही एक स्त्री को युद्ध में घसीट ले जाने का काम एक पुरुष नहीं कर सकता !'

इस बार पाली खीझ गई—'तो मेरा बड़े से बड़ा अपराध यही है कि मैं नारी हूँ! और नारी हूँ इसलिए मुझे युद्ध में न जाना चाहिए ? क्या विधाता ने युद्ध का शौर्य और विजय पुरुषों ही के लिए निर्मित किये हैं, और उसे पाने का अधिकार पुरुषों को ही है ? और यह अधिकार इसीलिए न कि वह पुरुष है, क्यों वीरवर ?' एक ही श्वास में, क्रोध की मात्रा ज़रा भी कम किये बिना, भाई को भय-भीत करने के लिए पाली बोली। आनन्द ने कुछ ऊबकर कहा—'तुझे तो लोगों के मुँह ही बन्द कर देने हैं !'

'इतनी चपल तो हूँ न ?'

'नहीं, इससे भी अधिक !'

'तब साथ ले चलो न! युद्ध में तो बहुत मनुष्य होते हैं, मेरी इस चपलता से और अधिक लोगों के मुँह बन्द कर दूँगी!'

'मै भूल गया'...चिढ़ता हुआ आनन्द आगे बढ़ा—'पाली, युद्ध में जाते समय हम यों ही शस्त्र ले जाते हैं? युद्ध के आह्वाहन की रणभेरी सुनते ही हम, रणं-क्षेत्र में हाथ के शस्त्रास्त्र नीचे रख देते हैं और वाग्युद्ध प्रारम्भ कर देते हैं; जो बोलने में जीतता है वही युद्ध में जीतता है इसलिए तुझे युद्ध में जाने से जरा भी नही रोकना चाहिए सच है न?...पर युद्ध के लिए इतनी तड़पनेवाली शौर्य मूर्ति! इस बार मैं मागधियों से युद्ध करने जा रहा हूँ, जहाँ वे डरपोक मनुष्य शब्दों के लेनदेन के स्थान पर प्राणों के लेनदेन का खेल करते हैं; इसलिए यदि आपको साथ नही ले जा सकूँ तो क्षमा करना!'

'मै क्षमा करनेवाली शौर्यमूर्ति नही हूँ!'

'नहीं, आप तो समझदार को पागल बना देने वाली विप्लवमूर्ति हैं!'

'फिर भी मुझे साथ नहीं ले जाते?' पाली ने भारी मुँह से चिढ़े हुए आनन्द को उत्तर दिया। 'मुझे साथ ले जाओ, हो सकता है मै सचमुच ही मागधियों को पागल बना सकूँ!'

'पर इसके पहिले तो मै ही पागल हो जाऊँगा!' मुकुट पहिनते हुए आनन्द ने कहा, उसके मुख पर दबे हुए क्रोध का हास्य था, बोला—'तुम्हें यहीं रहना होगा, यह मस्ती छोड़ देनी होगी, गम्भीर बनना होगा, क्योंकि अब......'

'जो आगे बोले तो शस्त्र छुपा दूँगी, कल जाने ही न दूँगी',...पाली बीच में ही बोल दी। भाई के कहने का उद्देश्य क्या था, वह अच्छी तरह जानती थी। एकाएक, क्षण भर के लिए दोनों चुप हो गये। पाली बाहर से चाहे कितनी ही चंचल हो किन्तु वह हृदय से इतनी गम्भीर तो थी कि पिता की मनोदशा समझ सके। पिता को उसके विवाह की कितनी चिन्ता थी, यह वह अच्छी तरह जानती थी। पितापुत्र ने अभय वाली बात उससे गुप्त रखी थी; पर पाली सब कुछ समझती थी। अभय की करतूतों और षड्यन्त्र से वह

अभिज्ञ थी। संसार के प्रत्येक देश में, ऐसा एक पुरुष अवश्य जीवित रहता है जिसके अत्याचार और अनाचारों को पहचान ने की, संसार के भले और सच्चे मनुष्यों में समझ होती है, और जीवन में जो भी कुछ शुद्ध, सुन्दर और निर्मल है, उसका मूल्य आँकने के लिए प्रकृति ऐसे अत्याचारी और अनाचारी को जीने देती है।

अभय अत्याचारी और अनाचारी था यह बात पाली भलीभाँति जानती थी। कई स्त्री पुरुष ऐसे होते हैं कि किसी विशेष कारण के बिना ही हमें, उन्हें देखते ही उनके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है। पाली को भी अभय के लिए ऐसी ही अरुचि थी!

जिस कारणवश आनन्द, पाली को घर रखना चाहता था, उसी कारण पाली घर रहना नही चाहती थी। वह जानती थी कि घर रहकर एक या दूसरे प्रकार से उसे विवाह की बात सुननी पड़ेगी। पाली की बुद्धि तीक्ष्ण थी। उसके नटखटपन के पीछे प्रकृति ने गहरी समझ भी रखी थी। उसके पीछे लोग किसलिए पागल हो जाते हैं, यह वह अच्छी तरह जानती थी। विद्वत्ता सौन्दर्य और अद्भुत तेजस्विता, ये तीन पाली के आकर्षण के मुख्य तत्त्व थे, और ये ही उसके शत्रु की कमी पूरी करते थे। इसलिए उसका मन किसी ने भी जीता न था। कोई युवक सुन्दर हो तो विद्वान नहीं होता; विद्वान हो तो रूपवान नहीं होता; यदि सुन्दर और विद्वान भी हो तो प्रथम संभाषण में ही पांडित्य अथवा मूर्खता ज्ञात हो जाती है। पाली को पराजित कर सके ऐसा सुन्दर, विद्वान और अद्भुत बुद्धिशाली युवक उसे अभी तक मिला ही न था; तब वह अपने विवाह की बात को खेल और मस्ती में न उड़ाए तो करे भी क्या ?...

'सच बात है पर क्या करूँ! यहाँ अकेली बैठना मुझे सुहाता भी नहीं!' भाई को समझाती हुई पाली बोली।

'इसीलिए तो मैं कहता हूँ...लोग कहते हैं...'

'क्या कहते हैं ?' आँखें प्रज्ज्वलित कर पाली ने पूछा।

'लोग कहते हैं कि अकेली की अपेक्षा दो ही ठीक...' ऐसा वाक्य जिह्वा पर आ जाने पर भी आनन्द न बोल सका, चुप रहा। फिर बात बदल कर कहा—'हमारे शत्रु जंगली नहीं, मागधी हैं...'

'चाहे मागधी ही हों! उनका राजा ही क्यों न आ जाए!...'

'वह आ जाए तो क्या कहे?'

'पहले मैं नहीं मेरा तीर बोलेगा और तब मै बोलूंगी! एक बार मेरे सामने खड़ा तो रहे, तब....तब....'

सहसा पाली बोलते-बोलते रुक गई। उसकी दृष्टि सामने ही खड़े हुए एक आकर्षक पुरुष पर पड़ी—उसकी दाढ़ी मूछों के पीछे एक सुंदर चेहरा छुपा हुआ था, यह विश्वास किसी को भी उसके देखते ही हो सकता था। वह था कठपुतली का सूत्रधार!

सूत्रधार ने नमस्कार किया। उसके झुकने में भी एक प्रकार का मद था। उसके पीछे दूसरे सात मनुष्य थे। वे लोग कठपुतली का खेल दिखाने आये थे।

यह खेल स्वयं रेवा को ही देखना था या पाली को दिखाना था, यह बात कोई भी न जान सका। रेवा के मस्तिष्क में कठपुतलियो के ये नट ही क्यो आये यह भी कोई नहीं जानता था। पर इन कठपुतलियों का नाटक तो रेवा ने ही पसंद किया, इसमें ज़रा भी सन्देह न था।

....अविवाहित रहने की अपेक्षा, दंतविहीन वृद्ध से भी विवाह करना हज़ार गुना श्रेष्ठ है, यही नाटक का विधान था। रेवा ने दृढ़ निश्चय किया था कि यही नाटक पाली को दिखाना है।

नाटक प्रारम्भ हुआ; दर्शक एकत्रित हो गये। चतुर सूत्रधार, छोटी-सी बहू और वृद्ध पुरुष मे होने वाले प्रसंगों को इस चतुराई से प्रस्तुत करता था कि देखने वाले हँस हँसकर लोटपोट हो जाते थे। वृद्धपति की पशुवृत्ति और छोटी-सी पत्नी को रिझाने के मूर्खतापूर्ण प्रयत्नोंसे, बालविवाह और वृद्ध विवाहको न मानने वाले दर्शकों को वैसा न करने के लिए मानों व्यंग्य कर रहे हों, ऐसा मालूम होता था।

पाली का ध्यान सूत्रधार की ओर था। सूत्रधार की आँखें उसके हृदय के किसी गहरे निभृतकोण को जागृत करके अपनी ओर खींच रही थीं—पाली को लगा कि जैसे कोई बहुत निकट का आत्मीय वर्षों बाद मिला हो और फिर भी उसके सामने देखने की इच्छा न रखता हो ! पाली का ध्यान बारबार उसी ओर जा लगता था !

नाट्य समाप्त हुआ। इसी बीच पाली का क्रोध, अतिकोमल अवस्था में परिणित हो गया था। नाटक के इतने बड़े समय में उस मानी सूत्रधार ने पाली की ओर एक बार भी न देखा, जबकि वह स्वयं मूर्ख बनकर, टकटकी बाँधकर उसे ही देखती रही ! पाली का स्वाभिमान और सौंदर्यमद पुनः जागृत हुआ।

नाटक समाप्त होने पर, सूत्रधार को बुलाकर, महानाम ने पारितोषिक दिया। आनन्द घूर घूरकर सूत्रधार को देख रहा था। थोड़े समय के लिए भी यह सूत्रधार, महानाम को उनके दुःख में से खींचकर हास्य के प्रकाश मे ले जा सका था। पारितोषिक देते समय महानाम ने सूत्रधार को कुछ सोचते हुए देखा; उनकी आँखे कुछ खिची, किन्तु सूत्रधार के मुख की मुस्कान में जरा भी अन्तर न पड़ा। सूत्रधार के पीछे खड़े हुए उसके सहायक चौंक उठे। मुँह खोले वे महानाम को देखने लगे। उन्हें संदेह हुआ—कहीं वे पहिचाने तो नहीं गये है !....महानाम हँस पड़े, सहायकों को भयपूर्ण आशंका हुई, प्राण जैसे उछलकर मुँह में आ गये ! महानाम बोले—'अभी यदि मगध जाऊँ तो बिम्बसार तुझ जैसा ही दिखाई दे !' सहायकों की आँखों में अँधेरा छा गया, किन्तु सूत्रधार के मुँह की मुस्कान वैसी ही रही, बोला—

'बिम्बसार ही समझ ले !'....

सहायकों के मुँह पर जैसे किसी ने थप्पड़ लगाई हो, वे बिल्कुल कठपुतली से होकर खड़े रहे। महानाम फिर हँसे, खिल खिलाकर हँसे—

'बिम्बसार यहाँ ? सात वर्ष पहिले मैंने बिम्बसार को देखा था, वह भी यदि दाढ़ी मूछ बढ़ा ले तो तुझ जैसा ही दिखाई दे !'

इस बार सूत्रधार हँस दिया और कठपुतली की तरह उसके सहायकगण भी, नीरस हँसी हँसने लगे। उनकी घबराहट का कारण कोई समझ न जाय इस डर से और जोर से हँसने लगे ! पाली भी हँसी, पर केवल हँसने के लिए ही अभी भी उसका स्वाभिमान जागृत था।

सूत्रधार ने महानाम को नमस्कार किया; आनन्दकी ओर घूमकर हाथ जोड़े। और अन्त में पाली के सम्मुख आकर बन्दन किया। जैसे कुछ भी अपेक्षा न की हो, पाली ने केवल थोड़ा सिर हिला दिया। उसे विश्वास था कि सूत्रधार चला जाएगा, किन्तु वह न हटा, जहाँ था वहीं खड़ा रहा। पाली को पुनः उसकी ओर देखना पड़ा,—सूत्रधार के मुख पर मंद मुस्कान थी, पाली की दृष्टि अचानक उसके हाथ पर जा लगी—उसके हाथ पर एक छोटी-सी कठपुतली थी, वही कठपुतली जो कि अभी नववधू बन चुकी थी और अपने बूढ़े को हैरान करके जिसने सब दर्शकों को खिल खिलाकर हँसाया था।

'मै तुम पर मोहित हूँ, मुझे ले लो !' ...वह पुतली बोल उठी। सब हँस पड़े; पाली भी हँसी, पर दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर उसने सूत्रधार की ओर देखा।

'एक परदेशी की भेंट।' सूत्रधार सविनय बोला। गले से तरह-तरह के स्त्री-पुरुषों के स्वर निकालने वाले इस सूत्रधार का अपना स्वर सब से अलग था; स्वर में कुछ ऐसा प्रभाव था कि कोई उसकी उपेक्षा न कर सकता था। पाली क्षणभर स्तंभित रह गई।

'प्रतिदिन प्रातःकाल में, सूर्य की प्रथम किरणों के साथ इसका वक्ष फटता है, और यह उसमे रखी हुई गुप्त वस्तु को दिखलाती है, किन्तु एक बार बन्द कर देने के बाद दूसरे दिन के सूर्य दर्शन बिना यह नहीं खुलती !' इतना कहकर सूत्रधार चुप हो गया; उसके मुख पर पूर्ववत् मुस्कान थी। पाली ने पुतली ले ली। सूत्रधार और उसके सहायकों ने पुनः नमस्कार किया और जाने लगे।

इस विचित्र सूत्रधार को पाली देखती रही; उसकी विनय में भी मद

था, झुकता था किन्तु उसमें आज्ञा का छुपा हुआ अन्तर्भाव था।

'यह कौन होगा...?' पाली ने इधर उधर देखा; तब तक सब लोग बिखर गये थे। उसने सूत्रधार को मन से दूर करने का प्रयत्न किया और धीरे-धीरे शयनगृह की ओर जाने लगी।

(८)

नगर छोड़ने के बाद, वृक्ष तक पहुँचने पर सबसे पहिले संजय नीचे बैठा। बिम्बसार ने असीम साहस किया था—कुछ भी चूक हो जाती, जरा भी घबराहट मालूम हो जाती तो, महानाम के महल में ये सब मागधी मृत हो गये होते।

अति कठिनाई से वश में रखी हुई घबराहट, भय और अशांति एकाएक उभर आई। नीति चतुर संजय, ब्राह्मण महाराज ब्रह्मदत्त और पत्थर के समान शुष्क माने जानेवाला बिम्बसार का अंगरक्षक शबर, वृक्ष के नीचे बैठे काँपने लगे थे। बिम्बसार को हँसी आ गई। सबसे पहिले संजय ने बोलने का साहस किया—'महाराज! इस तरह बोलना आपको कैसे सूझा?'

'तो क्या कठपुतलियों को खिलानेवाला जीवित पुतलियों के आगे घबरा जाए? पिताजी मुझ से कहते थे कि कठपुतलियों का नाटक महीने में दो बार अवश्य खेलना चाहिए, इससे मन बहुत सावधान और संयमित रहता है, आज मुझे इसका विश्वास हुआ।'

'महाराज!'...उछलते मन से ब्रह्मदत्त बोला—'जानते हैं हम ग़रीब मनुष्य अकारण ही कट मरते और महाराजा को मरवा देने का कलंक हमारी सात पीढ़ियों को लग जाता?...'

'किन्तु तेरी पहिली पीढ़ी पैदा करनेवाली तो यहीं है, तू क्यों घबरा-घबरा कर प्राण दे रहा है?....'

'महाराज, मैंने कहा यों ही मारे जाते...मैं घबराता तो नहीं हूँ!....' इतना कहकर, घबरा न रहा हो यह दिखा उसने इधर उधर देख लिया—कहीं उनके पीछे कोई लिच्छवी तो नहीं आया!...किन्तु जंगल में निस्तब्ध शांति देखकर अनुभवी ब्रह्मदत्त ने एक लम्बी साँस ली और बोला—

'महाराज, अब हम मगध कब लौटेंगे ?....'

'बस न ?' बिम्बसार हँसा; उसके हास्य का अर्थ समझ कर घबराते हुए भी ब्रह्मदत्त बोला—'हमें अकेले रहने को कहें महाराज, हम पूरे वर्ष यहाँ रह जाएँगे, पर आपके साथ रहना याने रोज रात को मर कर सुबह जीने जैसा है ! इसलिए....इसलिए....' ब्रह्मदत्त और कुछ बोले उसके पहिले ही बिम्बसार ने पुनः अट्टहास किया। ब्रह्मदत्त फिर बोला—'यदि कल हम उन षड्यंत्रकारियों के पीछे न गये होते तो आज की झंझट जरा भी न आती।'

'अरे मूर्ख ! वह तो दैवी संकेत था; उन लोगों की गुप्त बातें हमने अकस्मात सुन ली।' वह कोई साधारण बात न थी, उससे तो हमारे यहाँ आने का साहस अधिकांश में सफल हुआ है।'

उत्तर में ब्रह्मदत्त तुरन्त खड़ा हो गया, हाथ जोड़के, गले में जैसे कुछ अटक रहा हो उस कठिनाई से बोला—'आप अब क्या करना चाहते हैं ? यहाँ से कहाँ जाने का विचार है ?...'

'कल प्रातःकाल से पहले उस कदलीवन तक पहुँच जाना है, क्यों संजय ?' अभी तक चुप बैठे हुए संजय को देख कर बिम्बसार ने पूछा। उत्तर में संजय, शून्य दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। 'जिस जगह षड्यन्त्रकारी वार करेंगे, वहाँ से पहिले हमें ही वार करना चाहिए, क्यों ?'

'पर वे तो पचास के लगभग हैं।' आँखें हटाए बिना ही संजय ने कहा—'कृषिग्राम जाकर हमारे मनुष्यों को प्रातःकाल से पहिले सहायता के लिए नहीं बुलाया जा सकता। प्रयत्न कर देखें ?' 'नहीं, नहीं।' बिम्बसार शांतिपूर्वक बोला—'आनन्द और पाली अकेले नही आएँगे।'

'आपको विश्वास है ?'

'हाँ।'

'किन्तु समय का कुछ विश्वास नही है।'

'घबरा मत !' बिम्बसार ने कहा।

सोते समय, संजय ने पास सोये हुए ब्रह्मदत्त के कान में धीरे से कहा—

'ब्रह्मदत्त, प्रेम करने वाले को भय और तर्क की बात गले ही नहीं उतरती !....तू घबरा रहा हो तो चला जा, तेरे लिए एक बहाना ढूँढ़ निकाला है ।....'

'महाराज को छोड़ कर कभी मैंने 'मेरा मेरा किया है ? मुझे डरपोक समझता है ? मुझे कायर समझता है...महदाचार्य पण्डित वैजकुण्ड के पुत्र को तू...तू....'

'हाँ, हाँ, हाँ !' कहते हुए संजय ने, आवेश में उठते ब्रह्मदत्त को रोका !... ब्रह्मदत्त को फिर से सुलाने में संजय को पूरा एक प्रहर लगा ! और वह भी सतत परिश्रम के कारण थक जाने से गहरी निद्रा मे डूब गया ।

पर बिम्बसार को नीद न आई । उसके रोम रोम से 'पाली' 'पाली' की झंकार उठ रही थी। वह पाली के मंदिर मे गया था, उसने पाली को देखा था—और पाली ने उसे जीत लिया था। सदा से पुरुष को नारी के हाथों विजित होना ही लिखा है; जो पराजित नही हुआ वह या तो पुरुष ही नही, या महात्मा है !

बिम्बसार महात्मा न था; सीधा-सादा एकमार्गी ब्रह्मचारी भी न था । सोलहों कलाओं से खिले हुए उसके वर्तमान यौवन ने जीवन के अनेक पहलू देखे और अनुभव किये थे। सोये-सोये, बीते जीवन की अनेक घटनाएँ कठपुतली के रूप में उसके मन के आगे आकर नाचने लगी ! घटनाओं की वह एक जैसी पंक्ति, अन्तरिक्ष से निकल कर, उसकी आँखों मे आकर पुन: वहीं विलीन होने लगी ।....एक गांधारी राजकन्या ने उसे पाना असम्भव जानकर उसे देखते ही आत्महत्या कर ली थी; कोशल और अपरांत के राजाओं की कुमारियाँ उसके बिना अन्न-जल न लेने का निश्चय करने के बाद; विवश होकर दूसरों से ब्याही गई थीं। किसी ने त्रिया-चरित्र भी किये, और मरण वशीकरण मन्त्रों के अनेक प्रयोग करने पर और अप्सराओं को लजाने वाली सुन्दरियों के आह्वाहन करने पर भी बिम्बसार अब तक स्वतन्त्र रह सका था। हाँ कभी कोई नर्तकी या श्रीमन्त कुमारियाँ अपने प्रियतमों को त्याग कर उसके पीछे पागल होकर रंगमहल में आ जातीं—बिम्बसार उन पर रीझने का प्रयत्न भी करता, और कई बार अपने को खो भी बैठता था ! इतना होते हुए भी यह सब थोड़े समय के लिए होता—रात को बिता कर दिन देखने के लिए ही ।...

बिम्बसार राजा था, राजा को रानी होनी चाहिए इसीलिए उसका विवाह भी हुआ था, किन्तु किसी ने उसे जीता न था...

पाली ने उसे जीता, ऐसा जीता कि बस। इसके बाद ऐसी कोई दूसरी पराजय उसके जीवन में घटेगी या नहीं, यही प्रश्न था !

रात के अंतिम प्रहर तक कितनी ही बार उसने, पाली को देखने से लेकर, पुतली की भेंट देने तक का एक-एक क्षण याद किया। ज्यों-ज्यों पाली उसकी कल्पना-सृष्टि में आने लगी त्यों-त्यों वह एक विशेष प्रकार के नशे में भ्रमित होने लगा—'उसका प्रस्फुटित यौवन, दो तीन बार वक्ष पर से उपवस्त्र हट जाने पर उसे ढँकने को उद्यत दिखाई देने वाले उसके हाथों और मुख का परिचालन; उसकी मदमाती तीक्ष्ण आँखें, प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँचा देने वाली रसमय सौंदर्य की मूर्ति—इन सबों ने उसे विभोर कर दिया। राजा राजत्व भूल गया, बुद्धि गँवाई, समझ खोई। नासमझ तरुण की तरह—सुधीर की तरह—मूर्ख बन कर पागल होकर वह प्रभात की प्रतीक्षा में बैठा रहा !

प्रभात हुआ। प्रातःकाल की प्रथम किरणें पाली की कोमल देह पर पड़ी; पाली जागृत हुई; और जिस पर उसकी पहली दृष्टि पड़ी उस वस्तु को विस्फारित नेत्रों से देखने लगी-सूर्य की किरण के स्पर्श से कठपुतली का हृदय फट गया था ! पाली उसके पास गई; कठपुतली के हृदय में एक भोजपत्र पर कुछ लिखा हुआ दिखाई दिया; पाली ने धीरे से उसे उठा कर पढ़ा—और चीख कर दूसरे कक्ष में दौड़ गई।

उसके अचानक चीखने से सब चौंक गए थे; वस्त्र पहिनते हुए आनन्द ने पाली को अपने शयन-गृह की ओर दौड़ती हुई देखा; वह बाहर आया। पाली ने भोजपत्र उसके हाथ में रख दिया; और आनन्द भी उसे पूरा पढ़ लेने के बाद चौंक कर पाली की ओर देखने लगा। भोजपत्र में लिखा था—

'साथ में मनुष्य लेना, अभय हमला करेगा।'......

पाली और आनन्द एक दूसरे को देखने लगे। पाली ने संकेत से सिर हिलाया; उसे कहना था—'अभय से सावधान रहना; नहीं तो तुम्हारी पाली बेमौत मर

जायगी...' परन्तु आनन्द को समझाने का यह समय नहीं था, क्योंकि उसके मुख पर क्रोध की कठोर रेखाएँ उभर आई थीं !

'मैं अभी तैयार होकर आई...' कहकर पाली वहाँ से जाने लगी, आनन्द बहिन को रोक न सका !

(६)

गहन वन को भेदती हुई सूर्य की रश्मियाँ मानों वृक्षों और पृथ्वी के दरों मे छुपने का प्रयत्न-सा कर रही थी। घोंसलों की ओर जाते हुए पक्षीगण कलरव करते हुए उड़ रहे थे और उनके कलरव को भंग करता हुआ आनन्द का रथ सरपट वेग से बीहड़ बन में चला जा रहा था। घोड़ों के मुख का झाग और आनन्द के रक्तवर्ण मुख और सूखे ओंठ स्पष्ट बतला रहे थे कि वह कितनी शीघ्रता और कितने समय से यात्रा कर रहा था।

पाली साथ में ही थी; रथ को इधर-उधर घुमाते हुए आनन्द को वह शांति-पूर्वक देख रही थी। भाई की व्याकुलता सदा से उसके आनन्द का कारण होती थी—ऐसे समय में उसे भय के स्थान पर विनोद हो सकता था। एक ओर मुँह करके, हथेली में ठोड़ी टेक कर, दूसरे हाथ से एक तीर उछालती हुई गंभीर मुँह बनाकर वह बोली—'सर्वज्ञता का दावा करने में बेचारा मनुष्य हमेशा ही मुँह की खाता है ?'

'क्या बोली ?' परिश्रम से उद्विग्न आनन्द पूछ बैठा !

'कुछ नही, कुछ नही !'....उसी गम्भीरता से पाली ने उत्तर दिया और तनिक ठहर कर उसे चिढ़ाने के लिए फिर बोली—'मैं यह कहने का विचार कर रही थी कि उस किसान का कहा माना होता तो...'

'कौन-सा किसान...?' क्रोध में आनन्द ने पूछा।

'पर आपको प्यास लगी है तो बेचारी बहिन पर क्यों चिढ़ते हैं ?' भारी मुँह बना कर पाली ने कहा। आनन्द क्रोध पी गया, बोला—

'किस ने कहा कि मुझे प्यास लगी है ?...'

'किसी ने नही...' पाली ने उत्तर दिया; तब ओठों पर कृत्रिम मुस्कान

लाकर बोली—'तुम्हारे ओंठ सूखे मालूम होते हैं; कुछ-कुछ काँप भी रहे हैं...अब न काँपने का दिखावा न करना !....इसलिए मुझे लगा कि तुम्हें प्यास लगी होगी । देखना; मुझे प्यास नहीं लगी है । मार्ग भूलकर दो प्रहर तक भटकने पर कुछ प्यास थोड़े ही लगती है ! और लगे ही किसलिए ? मैं तो यही कहती थी कि दो प्रहर पहले जो किसान मिला था उसके बताये हुए मार्ग पर गये होते तो कुछ खा-पीकर विश्राम भी कर पाते !....पर मुझे प्यास नहीं लगती है ।'

सदा की तरह आनन्द का क्रोध विलीन हो गया; वह हँस पड़ा । सच पूछो तो उसके क्रोधित होने का कारण अभी तक नन्दीग्राम न पहुँचना ही था । भल्लों के गाँव की सीमा पर भीषण प्रतिरोध की सम्भावना थी इसलिए नन्दीग्राम की पंचायत से जितनी शीघ्र मिला जाता उतनी ही अधिक लाभ था, किंतु जल्दी-जल्दी में और मार्ग में मिले हुए अभय के सारथी की सलाह से, अनजाने में वह ऐसे गहन जंगल में जा घुसा था कि अब तक मुख्य पथ पर आ ही न सका । देर में और देर....कुछ ही समय पहिले वर्षाऋतु पूरी हुई थी इसलिए कितने ही पुराने रास्तों और गिरे हुए वृक्षों से वन नया नया सा मालूम हो रहा था । अकस्मात एक पोखर के निकट रथ आ पहुँचा; उसे देखते ही पाली कूदकर उतर गई और उस ओर दौड़ी । तृषातुर आनन्द भी जाकर पोखर के किनारे बैठ गया ।

इतने में चाबुक की फटकार सुनाई दी; भाई बहिन ने चौंककर रथ की ओर देखा, किन्तु वे कुछ सोचते उसके पहले ही रथ दूर की घनी झाड़ियों में अदृश्य हो गया । कोई अपरिचित व्यक्ति रथ को शीघ्रता से दौड़ाकर ले जा रहा था। पानी पीना छोड़, आनन्द रथ ले जाने वाले का मुँह देखने के लिए शीघ्रता से निकट की एक छोटी-सी टेकरी पर चढ़ने लगा किंतु उसके सिरे पर पहुँचने के पहिले ही वह लुढकता हुआ नीचे आ गिरा । पाली चीख उठी; किसी ने आनन्द के सिर पर इतनी शीघ्रता से तीर छोड़ा कि कुछ मालूम ही न हो सका। एक तेज़ थप्पड़ की आवाज़ वह बेसुध होने के पहिले सुन चुका था । रणवीर लिच्छवी को चीखने का भी अवसर न मिला ! और...आँख की एक टिमकार में,

दामिनि की एक झलक की तरह, झाड़ियों में से मनुष्य निकल आये। आनन्द को मिलने के लिए पुकारती और दौड़ती हुई पाली की ओर वे लोग झपटे; किंतु वे पाली को छुएँ इसके पहिले ही एक दूसरा रथ सम्पूर्ण वेग से पाली के पास होकर निकला और जाते-जाते रथ के सारथी ने पाली को रथ में खींच लिया। रथ के पीछे ही कुछ अश्वारोही दौड़ते आ रहे थे; झाडी मे से आने वालों ने उनका सामना किया। विस्मय से पाली अवाक् रह गई थी; वह किसी तरह बोलने का प्रयत्न करती इसके पहिले ही रथ, मुख्य पथ छोड़कर एक मोड पर मुड़ा और आनन्द जिस टेकरी पर पड़ा था वहाँ आ खडा हुआ। रथ चलाने वाला उछलकर नीचे उतरा, घायल आनन्द को कंधे पर डालकर दौड़ता हुआ रथ पर लाया, और रथ दौड़ा दिया।

यह सब इतनी शीघ्रता से हुआ कि पाली विमूढ़-सी देखती ही रही। शत्रुओं के तीर लग सकने के पहिले तो रथ दूर निकल गया था। अब पाली विस्फारित नेत्रों से देख रही थी—रथ का सारथी वह कठपुतली वाला था।

शत्रुओं के तीर रथ से टकरा-टकरा कर नीचे गिरते थे और सारथी निर्भयतापूर्वक रथ चला रहा था। गोद में सोये हुए भाई के घाव के लिए चीखना या सारथी की वीरता पर प्रसन्न होना—पाली सोचती ही रह गई। छोटी-सी बात, बिल्कुल छोटी-सी बात थी किन्तु पाली इस छोटी-सी वीरता पर वार गई।

छद्मवेशी संजय और ब्रह्मदत्त, अभय के छुपे हुए मनुष्यों से लड़ रहे थे। शत्रु अधिक थे, रथ को बहुत दूर गया समझ संजय ने अपने सैनिकों को छुप जाने का संकेत किया। अकारण ही वीरता पर मर मिटने का यह समय न था। वे चालाकी से कुछ ही क्षणों मे शत्रु की दृष्टि से ओझल हो गये। अभय के मनुष्य दो दो की जोड़ी में फैल गये; वे जानते थे कि अभय के सम्मुख खड़ा रहना मृत्यु से भी भयंकर था।

पाली का रथ दौड़ रहा था। इतने में दो घोड़े दौड़ते हुए रथ के पास आने लगे। बिम्बसार ने दूर से टापों की आवाज सुनकर पीछे देखा और चिल्लाया—'पाली, घोड़ों की रास पकड़ना ज़रा मैं उन अतिथियों का स्वागत कर लूँ ?....पाली भी उन दो अश्वारोहियों को देख रही थी। उसने मुस्करा कर

कहा—'हाथ की डोर किसी को दी जाती है परदेशी ?'...

बिम्बसार चौंका; यह स्त्री इस विषम परिस्थिति मे भी निर्भय और निःसंकोच होकर व्यंग्य कर रही है ?

आनन्द ने आँखें खोल दी थीं। घाव वाली जगह को पाली ने सम्हालकर बाँध दिया था, इसलिए उसके हाथ खाली थे। उसने रथ में से धनुषबाण उठाये और बिम्बसार के कुछ कहने के पहले ही दूर से आते हुए उन दोनों अश्वारोहियों पर तीर छोड़े, दोनों चीख कर धराशायी हो गये !

बिम्बसार पाली पर वार गया ! रणचण्डी के शौर्य और प्रेरणा का आज उसने अपनी दृष्टि से अनुभव किया। उसके बैठने के ढंग, चपलता, चातुर्य-पूर्ण धैर्य और संयम, इन सबों ने बिम्बसार को विमूढ़ बना दिया। उसने पहिली बार अनुभव किया कि पाली ने उसके हृदय पर अधिकार कर लिया है। अब पुनः उसके पाये जाने की आशा नहीं है; फिर से उसे ले लेने की शक्ति भी नही है। बिम्बसार पराजित हुआ।

पाली ने धनुषबाण एक ओर डालकर भाई को देखा और आँखों में पूर्ववत् नटखटपन लाकर बोली—'भाई साहब, जरा भी लजाना मत। मेरा उपकार मानने का नीच काम आज आपको न करना होगा ! उपकार इन दाढ़ी-वाले का मानना, जिन्होंने हम दोनों के प्राण बचाये हैं।' आनन्द ने अच्छी तरह आँख खोलकर बिम्बसार की ओर देखा, और साश्चर्य स्वर में पूछा—'तू यहाँ ? तुझे पहिले पहल देखा तभी मुझे शंका हुई थी कि तू कठपुतली वाले की अपेक्षा अवश्य कुछ अधिक है। अब हमारे घर आकर तुझे सब बातें बतानी होगी !'

'मैं परदेशी हूँ !'

'जब तक तू हमारे साथ है तब तक निर्भय है !'

'विश्वासपूर्वक कहते हो ?' आँख के कोने से देखते हुए 'विश्वास' पर भार देकर बिम्बसार ने पूछा।

'लिच्छवी का शब्द ही विश्वास है।'

'वचन का मूल्य ठीक-ठीक माप लिया है ?'

'लिच्छवी शब्दों का मूल्य ठीक-ठीक समझते हैं, इसीलिए वे अ
नहीं बोलते !'

बिम्बसार क्षण भर चुप रह कर बोला—'कुछ विश्राम लेकर पूरी
कहूँगा, कहे बिना छुटकारा भी नहीं है !'

'छुटकारा ?' भाई बहन दोनों ने चौंककर पूछा।

'हाँ, मैं छद्मवेष में हूँ, इसका कारण भी बहुत ही विचित्र है !' इत
कहकर बिम्बसार ने घोड़ों को चाबुक लगाकर उन्हें सवेग किया और बो
—'मेरी सच्ची कहानी जानने के बाद, आपके मन में जो भाव निर्धारित हं
उन्हीं पर मेरा जीवन निर्भर रहेगा; डर इतना ही है, तुम्ही उसे बराबर सम
सकते हो।'

पाली इस नट को एकटक देख रही थी। उसे क्षणिक शंका हुई f
यह कोई महान गुप्तचर होना चाहिए ! किन्तु वह कुछ बोली नहीं, बोलने व
समय भी न था। बात बदलने के लिए पाली ने उससे कहा—'रथ इस ओ
घुमाना, नंदीग्राम इस ओर...' किन्तु पाली कहते-कहते रुक गई। र
नंदीग्राम की सीमा पर आ पहुँचा था। पाली विस्मित हुई; इस अनजा
परदेशी ने कैसे जाना कि हम दोनों नंदीग्राम जाने के लिए ही निकले थे !..
हतबुद्धि पाली कठपुतलीवाले को देखती रही; तब गम्भीर मुँह बनाकर बोर्ल
'मालूम होता है कि तुम्हें हमारा घर दिखाने की भी आवश्यकता न होगी
रथ यहाँ क्यों ठहराया ?' आगे चलाओ।'

'सचमुच मैं आपका महल नहीं जानता; डोर पकड़िए अब आपकी
वारी है!' इतना कहकर उसने लगाम छोड़ दी; पाली ने हँसकर उसे लेने के
लिए हाथ बढ़ाया।

(१०)

आनंद की चोट अधिक न होने पर भी, कठिनता से उसे सुलाकर पाली
महल से बाहर निकली। इसी बीच में विद्युत्वेग से नंदीग्राम में यह बात फैल
गई थी कि आनन्द पर चोरों का आक्रमण हुआ है। इतना ही नहीं, महानाम के

उस छोटे-से प्रासाद के आगे असंख्य गाँव वाले एकत्रित भी हो गये थे।

'बेटा, वनराज सिंह भी एक ही ओर देख कर चलने मे मार खा जाता है, तब, हम तो मनुष्य हैं; तेरी पीठ पर चोट लगना मेरे लिए लज्जा की बात है!' मीठा उलाहना देकर अभिराम बोला। अपने को निर्विकार दिखाने का प्रयत्न करते हुए भी आनन्द अथवा पाली को अस्वस्थ देख कर भीतर से वह कितना व्याकुल हो जाता है यह बात आनंद जानता था। इस बार आनद ऐसे बोला जैसे वह यह बात न जानता हो—'दादा, सब दोष तुम्हारी इस लाड़ली का है।'

'भले ही इसकी भूल हो, पर मार खाने में एक स्त्री को दोष नही देना चाहिए, चाहे वह लिच्छवी ही क्यों न हो!' भवे समेटते हुए वृद्ध ने कहा—'साथ मे यह दाढ़ी वाला कौन है?'

'एक कठपुतलीवाला...'

'नही हो सकता।' वृद्ध बीच ही मे बोल उठा।

'तब?' शय्या से उठकर आनन्द पूछ बैठा—'कोई गुप्तचर?'

'ऊँ....हूँ....।' वृद्ध ने बलपूर्वक आनन्द को सुलाते हुए कहा।

आनन्द और पाली का वयोवृद्ध गुरु अभिराम, आनन्द के औषधोपचार करने में लगा था। वैशाली मे, ब्राह्मणत्व के अवशेष-सदृश, यह वृद्ध ब्राह्मण निःसतान था। बाराणसी की यात्रा के बाद और अनेक अन्य साधुओं के समागम के बाद उसने इस छोटे से नन्दी-ग्राम में एकान्त जीवन बिताने का निश्चय किया था। गाँव से बाहर प्राचीन यक्ष-मंदिर से थोड़ी ही दूर एक झोपड़ी में रहने वाला एक वेदांती वानप्रस्थ उसका मित्र था।

आनन्द और पाली पर वह अपनी संतान जैसा ही स्नेह रखता था; उसने ब्राह्मणत्व के उच्च संस्कार उन दोनों में कूट-कूट कर भरे थे। वह अपने उस वेदांती साथी की संगति से प्रायः नास्तिक जैसा हो गया था और कई बार किसी धर्मप्रवर्तक या सम्प्रदायप्रवर्तक से लड़ बैठता था। तो भी वृद्ध अभिराम के लिए, केवल नन्दीग्राम में ही नहीं बल्कि मगध, कौशल और मल्ल के कई ब्राह्मण ग्रामों में लोग एक-सा ही सम्मान करते थे। भीष्म के समान

कब दबे पैरों वह आकर बैठ गया था। बिम्बसार ने धीमे स्वर में पूछा—'सब कुशल क्षेम है?'...संजय ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया; किन्तु उसके मुख पर एक विचित्र प्रकार की व्याकुलता थी। ऐसा मालूम होता था कि वह किसी बात को छुपाने का प्रयत्न कर रहा हो। बिम्बसार यह बात समझ गया, पूछा—'क्या है संजय...?'

'महाराज! जरा महल के बाहर आइये!'

बिम्बसार तत्क्षण खड़ा हो गया और संजय को लेकर बाहर के छोटे उद्यान मे आया।

'महाराज!' संजय ने आस-पास देख कर बहुत धीरे कहा—'हमें शीघ्र ही यहाँ से निकल जाना चाहिए; कोशल और चेटकराज की सेनाएँ, मगध की सीमा पर अचानक चढ़ाई करने की तैयारियाँ कर रही हैं; गुप्तचर यहाँ समाचार लेकर आया है। यह बात मालूम करने हमें वहाँ जाना ही चाहिए!'....

'संजय!' बिम्बसार उत्तर में हँसता हुआ कहने लगा—'मुझे राजगृह (राजधानी) ले जाने के लिए कोई और अच्छा बहाना ढूंढ़ना था! इतनी-सी बात!'....

'नहीं महाराज, बिल्कुल सच बात है।'

'इससे भी भयंकर उपद्रव उपस्थित होने पर, मुझे बिना पूछे तुझ अकेले ने ही सामना किया है और मैंने यश पाया है, आज वही संजय'....

'महाराज, हम सब तो जाने को तैयार हैं किन्तु तब यहाँ एक भी अंगरक्षक नहीं रखा जा सकता, इसलिए...'

'मुझ अकेले की तुम बिलकुल चिन्ता न करो, जाओ, मंगल सिद्ध हो!'

'जैसी आज्ञा' संजय ने सिर झुका कर उत्तर दिया।

दूर खड़े हुए ब्रह्मदत्त ने खाँस कर ही जता दिया कि वह भी खड़ा है किन्तु निकट नहीं आ सकता, बिम्बसार ने भी खाँस कर उसका उत्तर दिया। संजय सबों को लेकर अदृश्य हो गया।

बिम्बसार धीरे-धीरे प्रासाद की ओर चला। संजय के समाचार ने उसके मन पर कोई विशेष प्रभाव न किया था—कोशल और चेटकराज उसका

सामना करने में असमर्थ थे, यह बात वह अच्छी तरह जानता था; फिर भी उनकी मनोवृत्तियाँ जानना आवश्यक था और इस काम के लिए संजय पर्याप्त था।

'शत्रु बन जानेवाले लिच्छवियों के ग्राम में वह अकेला ही रह गया' इस विचार से उसके हृदय में अधिक शांति और स्फूर्ति उत्पन्न हुई, जैसे उसे मन-चाही वस्तु मिल गई हो !

आज उसका मन पाली ने जीत लिया था। रथ में बोलती हुई पाली, प्रासाद में आने पर उसके रक्तस्राव को देखकर घबराई हुई पाली, व्रण पर औषधोपचार करते समय, श्वासोच्छ्वास सुनाई दे इतनी निकट, उससे बिल-कुल सटकर खडी हुई पाली, जाने किस स्फूर्ति से उसके हृदय और मन में दौड़ रही थी ! सैंकड़ों बार विचार आया कि पाली के शयन-गृह की ओर जाकर जागृत या सुषुप्त पाली को एक बार देख आऊँ !

अभी भी उसे ये ही विचार आ रहे थे। उद्यान का शांत वातावरण उसे प्रेरित करने लगा, उसके पैर अवश होकर पाली के शयन-गृह की ओर मुड चले किन्तु थोड़े ही डग भर कर रुक गये। काष्ठ के एक सुन्दर विश्राम-स्थान पर पाली अकेली बैठी थी। हवा में उड़ते हुए उसके चंचल वस्त्र स्पष्ट बता रहे थे कि वह शयन-गृह से अभी-अभी आकर बैठी है। वह जिस स्थिति में विश्रांति-पूर्वक बैठी थी, वह अंगपरिवेष्ठन और बिखरी हुई अलकें, उसके सौंदर्य में अनूप कमनीयता जोड़ रही थी। वह पाली को निर्निमेष नयनों से देखने लगा और आगे बढ़ने या न बढ़ने की अनिश्चित अवस्था में किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन वहीं खड़ा रहा।

रजनीगंधा के फूल, दिन के फूलों की सुगंध को भुलाने के लिए महक रहे थे। बिम्बसार जिस स्थान पर खड़ा था पाली उसे न देख सकती थी। पाली के हृदय में एक अदम्य आँधी उठ रही थी, जिसका अनुभव बिम्बसार को हो रहा था। बिम्बसार का हृदय जोरों से हिलोरे ले रहा था जिसकी अनुभूति पाली को हो रही थी।

लोग जिसे 'प्रेम' कहते हैं, आज इन दोनों को उसके रहस्य की अनुभूत

हो रही थी। दोनों के हृदय में एक साथ एक ही बात उठती थी। अब तक दंतकथाओं और पुराणों से उन्होंने प्रेम की बाते सुन रखी थीं किन्तु उसका सच्चा साक्षात्कार उन्हें आज ही हुआ।

पाली एकदम खड़ी हो गई और उन्मत्त-सी बन, उद्यान के बीचोंबीच, छोटी-छोटी मछलियों वाले तालाब के किनारे पहुँचने के लिए धीरे-धीरे बिम्बसार की ओर बढ़ने लगी। कुछ घबराकर बिम्बसार उल्टे पैरो चलने लगा, पर वहाँ पीछे जाने को स्थान ही न था, पाली वहीं आकर रुक गई। दोनों एक साथ बोल उठे—'तुम...?'

पर एक शब्द कहकर दोनों रुक गए, और एक साथ हँस पड़े। पाली ने विनोद में पहेली बूझी—'क्यों, और मार खाना बाक़ी रह गया है, अकेले ही घूम रहे हो तो ?'

'लिच्छवी पीठ पीछे से वार नहीं करते, तब डर किस बात का ?'

'तुम लिच्छवी हो ?' आशा भरे नयनों से पाली ने पूछा।

'नहीं, मै लिच्छवियों को पहिचानता हूँ !'

पाली निराश हुई, वह बोलते-बोलते रुक गई। जैसे दोनों एक दूसरे को देखकर बोलने का विषय सोचने लगे। इस बार बिम्बसार पहले बोला—

'तुम्हारे भाई के लिए अब चिन्ता करने जैसा कुछ नहीं है !'

'यह मुझे मालूम न था कि आप वैद्यराज भी हैं !' पाली ने प्रारम्भ किया।

'मैं नहीं, मेरा एक मित्र वैद्यराज है' इतना कहकर बिम्बसार रुक गया; अपने राजवैद्य जीवक कुमार भृत्य का नाम उसके तालु तक आया, किन्तु उसने उसे वही रहने दिया, इस डर से कि कही पाली उसे मागधी समझ कर आशंकित न हो। बातें करते हुए दोनों विश्राम-स्थान तक आ पहुँचे। पाली एक कोने मे बैठ गई, बिम्बसार भी उसी बैठक पर उससे कुछ ही दूर बैठा—किन्तु तुरन्त उसे याद आया कि वह कठपुतली वाला है; वह एकदम खड़ा हो गया। उसकी इस क्रिया पर पाली ने मुस्करा कर पूछा—

'खड़े क्यों हुए ? डर लगा ?'

'डर ?'

'हाँ, डर कि आम्रपाली पहचान जायगी कि तुम कौन हो, पर मै जानती हूँ।'

'क्या....?'

'तुम कठपुतली का धन्धा करने वाले नट नहीं हो !'

बिम्बसार एक क्षरण चुप रह कर बोला—'नहीं, मैं नट नहीं हूँ !'

'तब तुम कौन हो ?' पाली ने पूछा।

'जानकर क्या करोगी ?' उसी तरह बिम्बसार ने पूछा।

'न बताकर तुम क्या पा जाओगे ?'

'अब ? कुछ नहीं !'

'अव... ?'

'हाँ, अब कुछ नहीं ! मेरे जीवन का एक बड़ा कार्य छद्मवेश में ही करना लिखा था, और वह हो गया।'

'वह बड़ा कार्य हमारी वैशाली मे ही करना था ?'

'हाँ, तुम्हारी वैशाली में ही !'

पाली बिम्बसार को एकटक देखती रही, उसे यह पुरुष बहुत रहस्यमय लगा ! यद्यपि बिम्बसार के शब्दों में निर्भयता, स्पष्टता और हार्दिक सरलता थी तो भी पाली की आँखों पर से शका की एक हलकी-सी बदली निकल गई। आत्मीय जैसा लगने वाला यह पराया मनुष्य, उसे कुछ समय तक अपने से दूर जाता हुआ मालूम हुआ। वैशाली के शत्रु कुछ कम नहीं थे, और साधारण भी न थे। पाली ने चाहा कि इस कठपुतली वाले की दाढ़ी इसी क्षरण खींच लूँ, किन्तु दूसरे ही क्षरण उसने हृदय के इस आवेग को रोक लिया। बिम्बसार उसके मन की बात जान गया, वह कुछ आगे झुक कर कहने लगा—'विश्वास रखना, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ !' पाली विश्वासपूर्वक मानने के लिए प्रस्तुत ही थी, फिर भी गम्भीरतापूर्वक मुस्करा कर बोली—'हमारी वैशाली में तुम्हारा कौन-सा बड़ा कार्य पूरा हुआ है ?'

'सच कहूँ ?'

'झूठ कहने की चालाकी तुम्हारे मुँह पर से तो मालूम नहीं होती ! कहो'

बिम्बसार के लिए अपना वह बड़ा कार्य बताने के सिवा दूसरा मार्ग ही न था। उसने बता दिया—'आम्रपाली को देखना था।'

पाली बिम्बसार को देख रही थी; उसके शब्द सुनकर सहसा खड़ी हो गई। बिम्बसार को लगा कि पाली उसे निम्न कोटि का मनुष्य समझती है; उच्छृंखल प्रसन्नता उसके मन में नाचने लगी। तब पाली सम्पूर्ण गम्भीर थी—

'गांधार और साकेत के राजकुमार मुझे देखने के लिए आये थे; पर नट बनकर नहीं, राजकुमार होकर! तुम राजकुमार हो?' पाली ने सहसा बिम्बसार की ओर देखकर निश्चयात्मक स्वर में पूछा—'कौन हो? कहाँ से आये, दक्षिणापथ से?'

बिम्बसार पाली को देखता रहा, बोला—'तुम्हारा पहला वाक्य सच है, मैं राजकुमार हूँ! पर उत्तरापथ का नहीं; दक्षिणापथ का भी नहीं, मेरा एक ही पथ है, और तुम्हें उस पथ पर ले जाने के लिए जीवन का सर्वस्व छोड़ कर, और हृदय का सर्वस्व साथ लेकर यहाँ आया हूँ!' पाली स्थिर मन से उसकी ओर देखती रही—

'उस पथ का नाम क्या है?'

'उसका नाम नहीं बताया जाता, कोई भी उसका नाम नहीं बता सकता!'

'तुम जैसा कुशल नट भी नहीं बता सकता?'

'तुम जैसी अनुपम सुन्दरी भी नहीं बता सकती! उस पथ पर जानेवाले ही जानते हैं कि वह पथ कैसा है!' जैसे बिम्बसार, पाली के लिए रटे हुए वाक्य कह रहा हो। पाली अब तक बिम्बसार की चोट की चिन्ता में थी, परन्तु इस निर्भय पुरुष को इतने थोड़े समय में यहाँ तक बढ़ते देखकर, अपनी निर्बलता के लिए वह लज्जित हुई। उसकी अतिशय धृष्टता पर उसे रोष हुआ और कठोर उत्तर देने की इच्छा हुई, किन्तु उससे दृष्टि मिलते ही, वे शब्द जाने कहीं विलीन हो गये; इच्छा अन्तर्हित हो गई, रोष द्रवित हो गया। वह कृत्रिम क्रोध दिखाकर बोली—'ठीक है, तुम हमारे अतिथि हो, नहीं तो...'

'क्या करती?'

'यह दाढ़ी नोच लेती, और दूसरे राजकुमार जो कुछ भी सुनकर गये वही तुम्हें भी सुना देती !'

'दाढ़ी तो मैं सबेरे ही निकाल देने के लिए तैयार हूँ किन्तु एक भय है—तुम्हारे क्रोध करने का।'

'जैसे हमें क्रोधित होना ही नहीं चाहिए; क्यों ?'

'मुँह पर से तो ठीक-ठीक मालूम नहीं होता !'

'स्वदेश जाओ तब अपने परम मित्र वैद्यराज को आँखों की दवा देने का आग्रह अवश्य करना !'

'हमारे पथ पर जानेवाले को इसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, उसे तो हृदय की आँखें खुली रहीं कि सब कुछ आया समझो !'

'और तुम्हारी खुली हैं न ?' पाली ने सकटाक्ष पूछा।

बिम्बसार चौंका; उसके मुँह के शब्द मुँह में ही रह गये। सचमुच जो पाली ने कहा वह भी वही कहनेवाला था। अब तक पाली की बातों ने उसे हताश न किया था; पाली स्वयं भी यही सोच रही थी कि इस तरह, किसी के साथ वह कभी नहीं बोली।

बिम्बसार उसके निकट आ खड़ा हुआ और साश्चर्य कहने लगा—'गुरुजनों की आज्ञा है, लोगों के कहने में विश्वास नहीं करना चाहिये किन्तु आम्रपाली उन सबों को झूठा ठहराती है...।'

पाली का ध्यान भंग हुआ, उसने कुछ संकुचित होकर अत्यन्त समीप आये हुए बिम्बसार से कहा—'मैं समझती थी तुम मेरी प्रशंसा कर चुके, पर नहीं, मालूम होता है मेरी प्रशंसा तुम अब प्रारम्भ कर रहे हो।' बिम्बसार और समीप आया; एक प्रकार के उन्माद से वह प्रेरित था।...

उसका स्वर बदल गया—'आम्रपाली के लिए वर्षों से बातें सुनता आया हूँ, लोग मुझसे कहते थे पाली अनुपम है, अलौकिक है—आम्रपाली के सौन्दर्य की प्रशंसा वायु की प्रत्येक लहरी में सुनाई देती है। इस विषय पर वाद-विवाद करने के बाद, दो क्षत्रिय कुमारों को लड़ते देखकर मुझे हँसी आई थी, आज मुझे अपने आप पर हँसी आती है। आज मालूम हुआ कि

पाली के लिए जो कुछ भी कहा जाता है, वह सब अपूर्ण है; जो कुछ भी सुना है वह पाली को देखने पर बहुत थोड़ा मालूम होता है।'

'तक्षशिला मे काव्य का विषय तो न लिया था ?' बिम्बसार से दूर हटती हुई पाली बोली।

'कविता को देखकर अपढ़ भी कवितामय हो जाता है।'

'तब तुम राजकुमार नहीं हो, राजकुमार अपढ़ नहीं होते।' पाली को फिर विनोद सूझा। किन्तु बिम्बसार की स्थिति वैसी न थी, वह अकेला था और समय बहुत कम था। पूर्ववत् उन्मत्त दशा में ही वह आगे बढ़ता गया, बोला—'अपने देश से निकला तब दो निश्चय किये थे—एक तो पाली को देखे बिना नहीं लौटूँगा और दूसरे पाली को देखने के बाद यहाँ ठहरूँगा नहीं। किन्तु सच बात यह है कि अब मै लौटने की शक्ति को खो बैठा हूँ; मैंने हार नहीं मानी है, यहाँ से भी हारकर नहीं जाऊँगा। यहाँ तीन दिन रहूँगा, देखता हूँ मेरे निश्चय का क्या परिणाम निकलता है!'

'अतिथि! किसी लिच्छवी का निश्चय कभी सुना है ? किसी मागधी से पूछ देखना।'

'मेरे लाभ की बात होगी तो मगधराज से भी पूछने में नही हिचकिचाऊँगा।'

'मागधी हमारे शत्रु हैं, हमारे मित्र बनकर उनसे मिलोगे तो अकारण ही मृत्यु के मुख में जाना होगा।'

'ऊँ हूँ... झूठ बात है, मागधियो को मैं और अधिक पहिचानता हूँ!'

'लिच्छवी से भी अधिक ?'

'हाँ, भूल गई कि मैं कठपुतलीवाला हूँ ? मनुष्य स्वभाव को पहिचानना हमारा पहला काम है। मुझे तो मागधी और लिच्छवी मे कुछ भी भेद मालूम नही होता।'

'अतिथि का अपमान करना पाप है, कृपया मागधियों से हमारी तुलना न करो, वे हमारे शत्रु हैं।'

'बनाये हुए या माने हुए ?' जातीय अभिमान में उत्थित पाली को शान्त करने के लिए बिम्बसार ने पूछा।

पाली ने चौंककर बिम्बसार को देखा; क्रोधपूर्वक वह बोल उठी—'अभी तुम मागधी जैसे मालूम होते हो।'

'और सचमुच हूँ तो?...'

'अतिथि हो इसलिए प्राण तो बच जाएँगे। लिच्छवियों की प्रवेणी-पुस्तक में उपकार का बदला मृत्यु नहीं है।...पर तुम मागधी नहीं हो!....'

सीमोल्लंघन हो गया।

बिम्बसार के मुँह तक आये शब्द, पाली का अंतिम वाक्य सुनकर वहीं रह गये।...वह स्वस्थ हुआ; दूसरे को ईर्षा उत्पन्न करने वाले, मागधी के गर्व के स्थान पर उसके मुख पर निर्दोष मुस्कान खेलने लगी। वातावरण में प्रच्छन्न कटुता अपने आप कम हो गई। वह धीरे से बोला—'तुम्हारी बात सच है; तीन दिन बाद कहूँगा कि मैं कौन हूँ।'

अतिथि की सरलता और मोहक मुस्कान से पाली पराजित हो गई। अतिथि को कटु शब्द कहने के लिए वह लजाई भी। आगे बढ़े बिना ही, वह मृदु स्वर में बोली—'तीन दिन बाद तुम्हें नहीं कहना होगा, मैं कहूँगी कि तुम कौन हो।...'

बिम्बसार बिलकुल समीप आ गया। पूछा—'अभी ही कह दो न कि मैं कौन हूँ?'

'अतिथि।' पाली ने उत्तर दिया। तब दोनों एक दूसरे को देखते रहे—उन, प्रेम-पथ के पथिकों के रूप में!

(११)

वैशाली नगरी के उत्तरी राजमार्ग से कुछ ही दूर पर वैशाली के युवकों का द्यूतगृह था, और उसके निकट ही मधुशाला भी। बहुधा संध्या को ही द्यूत प्रारम्भ होता था, किन्तु किसी दिन अपवाद-स्वरूप, जब कि कोई रसिक परदेशी आ जाता, दोपहर से ही प्रारम्भ हो जाता था। आज वही बात थी। ताम्रलिपि के कई व्यापारी युवक लिच्छवियों के साथ द्यूत खेलने आये थे, इतना ही नहीं बल्कि वे लिच्छवियों के हाथों कड़ी हार भी खा बैठे थे। दोनों पक्ष रसिक थे इसलिए लिच्छवी खिलाड़ी परदेशियों को द्यूतगृह से

सीधे मधुशाला में ही ले गये।

अमावस्या की रात थी; मधुशाला में दीपक जगमगा रहे थे। आज अचानक वैशाली के सुराध्यक्ष के यहाँ आ जाने से दीपकों के प्रकाश के साथ चारों ओर सुगन्ध भी फैल रही थी। मधुशाला के स्वामी शम्भु का संकीर्ण हृदय, सुगन्धित तैल को यों ही जलता देखकर, जला जा रहा था, इसलिए उन द्यूतगृह के रसिकों के आ जाने से उसके आनन्द का पार न रहा; उनके द्वार में आने के पहिले ही उसने भगदौड़ मचा दी। निर्बल होने के कारण उसे क्रोध करने या क्रोध दिखाने में जरा भी समय न लगता था। किसी धनवान को वहाँ आता देखकर, दासों पर स्वामित्व की छाप लगाने और आगन्तुकों के प्रति श्वानवत् दासता दिखाने के लिए वह आतुर हो जाता था; इसे वह अपने सुरा-विक्रय का बड़ा साधन मानता था जब कि पीनेवालों की दृष्टि में वह केवल हास्यास्पद ही मालूम होता था।

इस अकारण भगदौड़ से सब दास अभ्यस्त थे, वे अपने काम पर लग गये। मिश्रित धातुओं के कलामय पात्रों में मदिरा दी गई। प्रत्येक युवक ने कुछ न कुछ आलोचना करते हुए मद्यपान प्रारम्भ किया।

नशे का दौर शुरू होते ही एक रँगीले परदेशी ने पास बैठे हुए एक युवक लिच्छवी से कहा—'क्यों मित्र अम्बट्ठ पाली को कब दिखलाएगा ?' पाली का नाम सुनते ही प्रायः सबों की दृष्टि उस परदेशी की ओर गई; अम्बट्ठ कुछ संकुचित हुआ। परदेशी अपनी धुन में कहता ही गया—'तीन-तीन दिनों से उसे देखने के लिए श्रम कर रहा हूँ पर कुछ मालूम नहीं होता! मित्र शर्त लगाकर आया हूँ कि पाली को लेकर ही जाऊँगा, लेकर ही नहीं, ब्याह कर भी।...'

परदेशी के ये शब्द अग्नि से भी अधिक दाहक और घृत से भी अधिक भड़काने वाले थे। प्रत्येक लिच्छवी विस्फारित नेत्रों से उस परदेशी को देखने लगा; परदेशी उनकी ओर से निरपेक्ष होकर हँसते-हँसते सुरा पान कर रहा था। उसी समय एक कठोर पंजा उसके कन्धे पर पड़ा, वह सम्हले

उसके पहिले तो पकड़ने वाले ने उसे नीचे गिरा दिया, और छाती पर चढ़ बैठा; वह सुधीर था।...

'उठ जा सुधीर, खड़ा हो।' कहकर दो-तीन युवक सुधीर को परदेशी के उपर से खींचने लगे, किन्तु वह परदेशी भी ऐसा वैसा न था, सुधीर की इस खींचातानी में वह चतुराई से खड़ा हो गया और सुधीर के साथ गुथ गया। इस बार परदेशी का हाथ ऊपर था। उसे जोड़ीदार मिला और कुछ ही क्षण में मद्यपात्र और पाट हवा में उड़ने लगे। सुधीर और परदेशी का मुष्टि-युद्ध देखते लायक था; अंत में जीता भी सुधीर ही। दोनों के शरीर पर चोट के गहरे चिह्न लगे थे। काफ़ी झंझट और खींचातानी के बाद, दोनों पक्ष के लोगों ने मिलकर दोनों को अलग किया। परदेशी अधिक आहत हुआ था। दो बलिष्ठ युवकों के हाथो में जकड़ा हुआ सुधीर हाँफता हुआ कहने लगा—'पाली को यह परदेशी ले जायगा ?....लिच्छवियों की राजधानी वैशाली मे से ! अरे, पाली को छूने के पहिले इसके हाथ कटकर नीचे गिरेगे !'

'यह तो समय आने पर देखा जायगा !' कोने में बैठा हुआ एक मालव-वासी सुरापान रोककर बोल उठा। वह अब तक शांति से बैठा हुआ यह खेल देख रहा था; बोला— 'पाली से विवाह करने का दृढ़ निश्चय करने वाला युवक साधारण नहीं हो सकता...'.

'नहीं, वह साधारण नहीं होगा, इसका अर्थ यही है कि वह लिच्छवी जैसा नही हो सकता।'

'सच बात है।' मालववासी ने सुरा का घूँट गले में उतार कर कहा—'यह परदेशी लिच्छवी से अधिक बलशाली होगा, तभी पाली को ब्याह सकेगा न ?' इतना कहकर वह हँसा और महापात्र मुँह से लगाया। उसके स्पष्ट शब्दों मे घृणा की मात्रा थी। युवक वीरभद्र इसे सहन न कर सका, दो क़दम आगे बढ़कर उसने कहा—'यह बात तो लिच्छवी का तीर, तलवार या हाथ, सामना करते ही सिद्ध कर देंगे !'

'अवश्य....!' पात्र में से पूर्ववत् एक घूँट पीकर वह मालवी बोला—'कि

परदेशी लिच्छवी से अधिक बलवान है !...' यह सुनकर वीरभद्र की आँखें ललाट पर चढ़ गईं; दो डग भरकर बोला—'हम लोग वैशाली में किसी महान अपराध के बिना परदेशी के प्राण नहीं लेते।...' 'नहीं तो मेरे प्राण ले लेते यही न ?... पर तुम भूलते हो, प्रकृति ने वैशाली में ही सब शौर्य और बल नहीं भर दिया, अन्य देशों में भी है !' इतना कहकर मालवी ने एक घूँट और पी और पात्र पटिये पर रखने के लिए हाथ बढ़ाया किन्तु उसे छूने से पहिले ही एक खन-खनाती हुई कटार उसके हाथ के पास गिरी साथ ही कोई चिल्लाया—'तो अभी ही देख लो !' मालवी ने आँखें ऊपर कीं, कटार डालकर आह्वाहन करने वाला वीरभद्र ही था। मालवी ने ज़ोर से पात्र को कटार पर पटक कर वीरभद्र की ओर देखा; फिर पात्र उठाकर उसकी अंतिम घूँट मुँह में उडेल ली; मुँह पोंछा और कटार लेकर खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही सब को उसकी विशाल देह का ज्ञान हुआ। शंभु की तो आँखे ही मुँद गईं; जिह्वा तालू से चिपक गई, बोलने का बहुत प्रयत्न करने पर भी ओंठ खुले ही नहीं।

वीरभद्र साधारण लड़ाकू न था; वह गर्व और उपेक्षापूर्वक उस मालवी को देख रहा था। दोनों योद्धा एक दूसरे के सामने आ गये। युद्ध-प्रिय लिच्छवी युवक कौतूहलपूर्वक उन योद्धाओं को देखने के लिए गोल घेरे में खड़े हो गये। दामिनी की एक झलक की तरह वीरभद्र और मालवी एक दूसरे पर टूट पड़े। वीरभद्र चपल और फुर्तीला था, मालवी बलिष्ठ और भीषण। दोनों ही एक दूसरे के वार पर वार झेलने और प्रहार करने लगे। कुछ देर तक तो मालवी वीरभद्र को बच्चो के खेल की नाईं घुमाता रहा; किंतु अवसर पाकर वीरभद्र शेर की तरह उछला और विशालकाय मालवी के पेट मे कटार भोंक कर स्फूर्ति से दूर हट गया। मालवी का ऊपर उठा हुआ हाथ नीचे गिर गया; वीरभद्र ने पुन: कूद कर एक झटके मे गिरते हुए मालवी के कलेजे मे कटार उतार दी। शभु के ओंठ खुले; वह चीख उठा। तत्क्षण एक दूसरा परदेशी वीरभद्र पर झपटा और कटार के एक ही वार में वीरभद्र को सदा के लिए सुला दिया। उसके बाद...सुधीर वीरभद्र के घातक पर टूट पड़ा, दूसरे लिच्छवी भी कटार निकालकर आगे बढ़े। परदेशी लोग तो प्रस्तुत थे ही, दोनों दल एक

दूसरे का काम तमाम करने लगे।

शंभु पागल की तरह कूदने लगा; अपने प्राण बचाने के लिए वह इधर से उधर दौड़ने लगा; दासों पर आज्ञा करने के बदले प्रार्थना करने लगा और लड़ने वालों से प्रार्थना के बदले धमकाने लगा। तब कुछ सुध आने पर, चिल्ला चिल्लाकर दासों को बुलाने लगा जैसे जोरों से चोट लग रही हो। इन बीते बीस वर्षों में उसने अपनी मधुशाला में केवल शब्दों की ही लड़ाई देखी थी; पर प्राण-घातक युद्ध और वह भी इन सबों का! यह तो उसके जीवन की सब से अधिक अनजानी बात थी! उसे अपनी दूकान नष्ट होती दिखाई दी। उसका अतिशय क्रोध और जोरों की चिल्लाहट अंत में आँसू बनकर गालों पर बहने लगी। किन्तु इससे भी अपना कुछ लाभ होता न देख, सिर पर साफा डालकर वह प्रलय मचाता हुआ भाग गया।

यदि इसी समय हाँफता काँपता चिरंजीव वहाँ न पहुँच जाता तो पाली के पीछे सारे संसार को उखाड़ देने के उन्माद में सुधीर स्वयं परदेशियों के हाथों नष्ट हो जाता।

मधुशाला का होहल्ला सुनकर निकट की बस्ती के रथकार और रंगकार लोग अपने जेट्ठकों (नायकों) को लेकर वहाँ दौड आये। चिरंजीव को देख-कर कई जेट्ठक दोनों दलों को शान्त करने के लिए जो हाथ में आया उ से लिपट गये। कुछ चोटे तो आईं किन्तु जेट्ठक और चिरंजीव अन्त में कार्यकारी हुए। सबों का क्रोध शान्त हो गया था क्योंकि चिरंजीव ने एक एक करके आठ शव सबों के बीच लाकर रख दिये थे। तीन लिच्छवी और पाँच परदेशी मारे गये थे; और आहत तो प्राय: सभी हुए थे।

उसी समय रोता-बिलखता शंभु, वैशाली के सुराध्यक्ष, परदेशी व्यापारियों से कर उगाहने वाले शुल्काध्यक्ष, अंगसंरक्षक और परदेशी-संघ के प्रधान सार्थवाह के साथ वहाँ आ पहुँचा। सुरा में उन्मत्त युवकों को तब ध्यान आया कि यह सब क्या हो गया!

नगरसंरक्षक ने अधिक विचार किये बिना, आहतों को नगर-चिकित्सा-लय में भिजवा दिया और सार्थवाह की इच्छानुसार परदेशियों के शवों को नगर-

व्यय से अंतिम संस्कार के लिए भेज दिया तथा अपनी प्राचीन रीति के अनुसार लिच्छवि शवों को पशु-पक्षियों के उपभोग के लिए नगर के बाहर खुले रख देने के लिए भेजा।

गणिकाध्यक्ष क्षपणक का छोटा भाई भी मृत लिच्छवियों में से एक था। क्षपणक इतना उदार न था कि अपने भाई की मृत्यु को सरलता से भूल जाता। एक स्त्री के लिए इतने भीषण युद्ध में कूद पड़ने वाले युवकों से वह घृणा करता था। केवल पाली के लिए एक जीवन को धूल मे मिला देखकर उसे असीम क्षोभ हुआ; भाई की मृत्यु ने उसके क्रोध को उभार दिया। अंतिम क्रिया के बाद उसने आसपास के जेट्ठकों को बुलाकर गुप्त वार्तालाप किया और तब कुछ निश्चित करने के बाद वह सबों को लेकर रातोरात नगरश्रेष्ठी के महल मे जा पहुँचा।

पाली के लिए लड़ाई होना कोई नई बात न थी; विद्युत वेग से नगर मे यह बात फैल गई। इस पुराने आश्चर्य पर सबों ने अपनी अपनी घृणा प्रदर्शित की; नगरश्रेष्ठी भी उन्ही मे से एक था। किन्तु नगरश्रेष्ठी की हँसी अधिक समय तक न रह सकी; क्षपणक के बढते हुए क्रोध को देखकर वह अवाक् रह गया। गणिकाओं के सर्वोपरि अधिकारी क्षपणक को प्रत्युत्तर देना साधारण काम न था। संथागार में उसकी पुकार सुनाई देने पर केवल अभय ही उसे चुप कर सकता था। बेचारा नगरश्रेष्ठी वणिक ठहरा! इस विषय मे क्षपणक से अधिक वादविवाद करना उसनें उचित न समझा। किसी तरह उत्तप्त क्षपणक को शांत करके उसे अभय के घर ले गया। अभय के पास इतने ही समय में सब समाचार पहुँच चुके थे; उसे गुप्तचरों के द्वारा सब विशेष बातें भी मालूम हो चुकी थी। इतना ही नही, उसे विश्वास था कि अंत में सबों को उसके पास आना पड़ेगा। वे सब नगरश्रेष्ठी के साथ अभय के भवन में आ पहुँचे। साधारण शिष्टाचार के बाद अभय के निकट बैठते ही क्षपणक ने कहना प्रारम्भ किया—

'पाली का निर्णय कर दीजिए!'

'पर मै कैसे कर सकूँगा?'

'आप नहीं करेंगे तो कोई न कर सकेगा ! वैशाली के इनेगिने पूज्य वयोवृद्धों में से आप एक हैं ! लिच्छवि देश के कोने-कोने में अनुपम सुन्दरियाँ विद्यमान हैं किन्तु उनमें से किसी भी विवाहिता या कुमारी ने पाली के समान वज्रपात नहीं किया ! एक स्त्री के पीछे रणवीर लिच्छवी युवकों को मूर्ख बनने दें, कट मरने दें ? और कब तक ? महानाम हम सबों में वयोवृद्ध हैं, हम उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना नहीं चाहते किन्तु लिच्छविगण कर्त्तव्य के सम्मुख अपने आपको भी तुच्छ मानते हैं ! इस समय हमारा कर्त्तव्य एक ही मार्ग दिखा रहा है कि पाली के लिए अंतिम निर्णय हो जाना चाहिए—फिर चाहे संथागार के सभापति महानाम की पुत्री ही क्यों न हो !'

हज़ार गुप्तचर, हज़ार दिनों में भी न ला सके वैसा एक अवसर अभय को अनायास ही मिल गया था; जंगल में छुपी हुई पाली जैसे अपने हाथ बाँध कर उसके पैरों में आ पड़ी—इसी धुन में उसने एक बार पैरों की ओर भी दृष्टि की। उसका हृदय आनन्द से नृत्य करने लगा; किन्तु मुँह पर इसका ज़रा भी चिन्ह दिखाए बिना, क्षपणक को बढ़वा देने के लिए, सार्थवाह और नगर-श्रेष्ठी की ओर दृष्टि घुमा कर शांतिपूर्वक वह बोला—

'मेरे भाइयो, तुम्हारी बातें सच मान लूँ तो भी पाली पर मेरा ज़ोर कैसे चल सकता है ?'

'सभापति महानाम पर तो चल सकता है न ?' क्षपणक एकदम कड़क उठा तब कुछ शान्त हो कर बोला,—'आप दोनों मित्र हैं, वर्षों तक लिच्छवियों की राजधुरा आपने चलाई है, आपको उन्हें समझाना ही पड़ेगा !'

'प्रयत्न करूँगा !'

'प्रयत्न नहीं, निर्णय करना होगा !'

'मैं वचन से नहीं बाँधा जा सकता।'

'महाराज, पाली ने एक नहीं, सैकड़ों नहीं, हज़ारों युवकों के हृदय में आग सुलगाई है। बीती बातें जाने दीजिए उसके कारण आज हमारे तीन, और परदेशियों में से पाँच युवकों ने प्राण गवाँए हैं ! पर आप ही देख लेना,

तीन के तीस और तीस के तीन सौ लिच्छवी पाली की आग में निरर्थक जलते हुए दिखाई देंगे। अब बिना विलंब पाली का विवाह हो जाना चाहिए। आगामी वैशाख की पूर्णिमा के पहले पाली का विवाह नहीं हुआ तो....'

'तो...?'

'तो महाराज, मेरा वह अकेला भाई जंगल में सोया हुआ है। वैशाख की पूर्णिमा के पहिले पूज्य महानाम या आनन्द पाली के लिए किसी युवक को चुन ले, अथवा पूर्णिमा के दिन हजारों युवक ग्रीष्मोत्सव के लिए एकत्रित होंगे, स्वयं पाली को उनमें से किसी एक को चुन लेना होगा, यह मेरा और सबों का अंतिम निर्णय है!'

'और यदि यह भी न हुआ तो?' शुभ्र मूछों को वट देकर कुछ बारीक दृष्टि करके अभय ने क्षपणक से पूछा।

'तो फिर महाराज, संथागार है और हम हैं! परिषद के सम्मुख सर्वप्रथम यही प्रश्न रखा जायगा, और पवित्र प्रवेणी-पुस्तक हमारे प्रश्न का उत्तर दे देगी!'

ठीक उसी समय वयोवृद्ध महानाम ने अभय की देहरी में पैर रखा। उस अंतिम वाक्य ने कानों से जाकर उनके हृदय को डस लिया था। धूर्त अभय ने अवसर जानकर, नगर की एक बहुत आवश्यक मंत्रणा के लिए महानाम को अपने घर आने की प्रार्थना की थी। अभय नें अस्वस्थ होने का ढोंग किया, इसलिए महानाम को आना ही पड़ा।

वैशाली के भीष्म-सदृश वयोवृद्ध को अकस्मात् वहाँ आता देखकर क्षपणक और नगरश्रेष्ठी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कर वहीं बैठे रहे। क्षपणक और कुछ न बोल सका। परदेशी सार्थवाह क्रोधित होते हुए भी विमूढ़-सा चुपचाप बैठा रहा। क्षपणक सहसा खड़ा हो गया; मोटी तोंद वाले नगरश्रेष्ठी भी धीरे-धीरे उठ खड़े हुए, और तीनों व्यक्ति महानाम और अभय को नमस्कार करके वहाँ से चले गये।

उनके जाने के बाद, चाँदी की छोटी चौकी पर मद्य की प्याली ठोक कर,

दास को सूचित करने के ढग से महानाम की ओर देखे बिना ही अभय ने अपना प्रपच जाल फैलाना प्रारम्भ किया—

'सुना ?'

'हाँ !'

'सब कुछ सुन लिया ?'

'नहीं, जितना जानना चाहिए था उतना ही !' अभय आगे बात न बढ़ा दे इसलिए महानाम ने कठोरतापूर्वक कहा।

'किन्तु उन वाक्यो मे कुछ जानने योग्य बातें बाक़ी रह गई है ! संथागार में समस्त लिच्छवी परिषद के बीच परिषद के महान, अचल सभापति के आगे उनकी पुत्री का प्रश्न प्रस्तुत होगा ! लोग कहेंगे–'लिच्छवी गणतन्त्र के किसी भी गूढ़ रहस्य को ढूँढ निकालने वाले, किसी भी विषय का 'न भूतो न भविष्यति' की तरह निर्णय करने मे असमर्थ महानाम, अपने ही घर की एक बात—कन्यादान—का निर्णय करने में असफल हुए !' लोग पूछेंगे कि, अपनी पुत्री का असहाय भविष्य अतिम निर्णय के लिए सथागार में रखना पड़ा ! लोग हँसेगे कि एक आदर्श लिच्छवी इतनी तुच्छ समस्या को भी हल न कर सके ! तब लिच्छवी प्रजा के मुख्य हितैषी और शुभचिन्तक का क्या होगा ? मुझे तो लज्जा से नीचे देखना पड़ेगा !'

'लाज से नीचे देखना पड़ेगा ? मित्र की लाज तुम्हारे बीच नही आएगी ?'

'होगा !...आज आप मेरा इतना सम्मान क्यों कर रहे है ? भविष्य के सम्बन्ध की सूचना तो नहीं है न ?'

'नहीं यह मेरे 'न भूतो न भविष्यति' निर्णय की सूचना है !'—

'महानाम, चाहे तुम सब कुछ क्यों न जानते हो, पर एक बात नही जानते, कि तिरस्कार कैसे करना चाहिए !' अशिष्टता का सीमोल्लंघन करके यह धूर्त खिलाड़ी महानाम को जाल में फँसाने का खेल खेलने लगा। उसे पाली की आवश्यकता थी, और महानाम के द्वारा 'हाँ' कहलाने का यह अंतिम अवसर था। किन्तु महानाम ने अभय को पहिचान लिया। उसकी धूर्तता और प्रपंचों से उन्हें अत्यन्त घृणा हुई। उन्हें यही बात जाननी थी कि अभय ने

उन्हें किसलिए बुलाया था। उनके संक्षिप्त उत्तरों और प्रश्नों से अभय समझ गया कि आज महानाम का जाल में फँसना कठिन है! मद्यपात्र आ चुका था; अधिक शिष्टाचार किये बिना अभय ने उसे मुँह में उँड़ेल लिया और महानाम की ओर देखकर बोला—

'महानाम, जो निर्णय संथागार में होगा, वैसे कई निर्णय भूतकाल में हो चुके है और भविष्य में भी होंगे, क्योंकि यह निर्णय प्रवेणी-पुस्तक ही करेगी!'

अभय के शब्द सुनकर महानाम काँप गये और धूर्त अभय ने उनकी यह दुर्बलता देख ली; उसे आगे बोलने का साहस बढ़ा—'महानाम, परिषद् में पाली के विवाह का प्रश्न रखा जायगा, उस समय एक नहीं कम-से-कम एक हजार लिच्छवी नवयुवक उस एक कुमारी के लिए तैयार होंगे!....और अभय के लिए तो आपका पक्का विश्वास है ही कि वह ऐसे एक हज़ार युवक उम्मीद-वारों को खड़ा करेगा!....मेरे लिए यह कार्य बहुत साधारण है, यह तो आप भी जानते होंगे। जब एक ही कन्या के लिए एक हज़ार लिच्छवी पुकारकर हाथ बढ़ाएँगे....'

'अभय, भय दिखाकर मुझे कोई जीत नही सका है!....'

'मैं कहाँ नही जानता? अभी तो मैं केवल मित्र का कर्तव्य निबाह रहा हूँ। संथागार में जब एक हजार युवकों के गणश्रेष्ठी यह प्रश्न पूछेगे तो प्रवेणी-पुस्तक देखना होगी! प्रवेणी-पुस्तक कहती है—'एक पुरुष के लिए यदि हजारों लिच्छवी परस्पर लड़ मरते हों तो उस पुरुष को मार डालना चाहिए, और यदि किसी सुन्दरी स्त्री के लिए हजारों नवयुवक एक दूसरे को नष्ट करने पर तुल जायँ, और वह स्त्री कुमारी हो तो उसे हज़ार युवकों की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण वैशाली की संपत्ति मानी जाय। एक पुरुप का मनोरंजन करने के स्थान पर उसे पूरी वैशाली का मनोरंजन करने की धर्माज्ञा होगी। पाली के लिए यह धर्माज्ञा उसके पिता, वैशाली के 'न भूतो न भविष्यति' सभापति महानाम घोषित करेंगे!...और पाली, वैशाली की 'न भूतो न भविष्यति' सुन्दरी नर्तकी बनकर हजारों लिच्छवियों के हृदय भी नचाएगी!'

'पशु....! पामर ! ! ....

'मैंने कहा न, कि आपको तिरस्कार करना आता ही नहीं है !'

'अभय, प्रवेणी-पुस्तक का न्याय भी मैं जानता हूँ और पाली को भी...!' क्रोध से काँपते हुए महानाम ने आँखें लाल करके कहा—'और यह न भूलना कि महानाम की तलवार को अभी तक कोई नहीं रोक सका है...!'

'मैं तलवार की बात नही, पाली की बात करता हूँ—या तो मुझे दीजिए या संपूर्ण वैशाली को। मुझ वृद्ध को दोगे तो एक भी युवक आँख उठाकर न देख सकेगा। किसी युवक को दोगे तो हजारों युवक उसके पीछे मरने को तैयार हो जाएँगे, इस बात का विश्वास तुम्हें भी है और मुझे भी। पाली मेरी होगी या वैशाली की ! इसके सिवा कोई दूसरा निर्णय अभय नहीं होने देगा इसका विश्वास रखें।' इतना कहकर उसने मद्य-पात्र महानामके सामने रखा—एक ही झटके में महानाम ने उसे नीचे गिरा दिया और जाने लगे। उनके हाथ रह-रह कर तलवार की मूठ पर पहुँच जाते थे। अभय महानाम को देखता ही रहा; उसने धीरे-धीरे नीचे झुककर पात्र को फ़र्श पर से उठा लिया। जो दास मद्य-पात्र उठाने के लिए दौड़ आया था, वह समझ न सका कि अभय के मुंह पर सदा की तरह विषमय हास्य था या असीम क्रोध !

(१२)

तीन दिन बीत गए और तीन दिन तक बिम्बसार एक ही काम करता रहा—पाली को देखते रहना !

अभी भी वह पाली को ही देख रहा था, ग्राम के बाहर की एक छोटी-सी पर्णकुटी में दोनों बैठे थे। पाली एक वृद्ध को अपना हाथ दिखाने में तल्लीन थी। वृद्ध ने अपने दूसरे हाथ से बिम्बसार का हाथ पकड़ रखा था; किन्तु बिम्बसार की आँखें तो पाली की ओर ही थीं !

नंदीग्राम के पूर्व की ओर, जहाँ से शाक्यों की सीमा प्रारम्भ होती थी, नंदीग्राम का एक छोटा-सा यक्ष-मन्दिर था। यह मन्दिर किस यक्ष का था यह बात कोई न जानता था क्योंकि मन्दिर में यक्ष की मूर्ति ही न थी। बहुधा गाँव के

बूढ़े कहा करते थे कि सीता नामक एक राजकुमारी यहाँ दर्शन के लिए आया करती थी। उसके बाद तो दुष्काल ने इतना भयंकर रूप धारण किया कि यक्ष फिर वहाँ ठहर ही न सका और वह मंदिर कोशल, शाक्य, मल्ल, मगध, काशी इत्यादि स्थानों में नियमित भ्रमण करने वाले धार्मिकों की मुख्य धर्मशाला बन गया। मन्दिर से थोड़ी ही दूर पर एक पर्णकुटी थी, जिसमें एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। कई प्रकार के यंत्र-मंत्रादि का ज्ञाता होने के कारण, साकेत के एक ब्राह्मण-ग्राम से उसे बलात् देश-निकाला दे दिया गया था। वह वेदांती था इसलिए वहाँ के आस-पास के अन्य ब्राह्मणों के झूठे गर्व और वितण्डवाद तथा रूढ़ क्रूरता के कारण उसे उनसे विशेष अरुचि हो गई थी। अंत में अपने पुराने मित्र अभिराम के आग्रह से यह यक्षमंदिरवाला स्थान उसने अपने रहने के लिए पसन्द किया। इस मंदिर में आनेवाले धर्मप्रवर्तकों से वह बहुधा वाद-विवाद किया करता था। स्वभाव से तेज होने के कारण वह किसी से भी भिड़ जाता और स्पष्ट बोलने का अभ्यास होने के कारण किसी को भी जो चाहे सुना देता था। अभिराम के सिवा किसी से उसकी बनती न थी। कइयों से वाद-विवाद और शास्त्रार्थ करने पर भी उसने उस रिक्त मन्दिर में किसी देव की मूर्ति स्थापित नहीं होने दी थी; इस काम में उसे अभिराम से बहुत सहायता मिलती। वह प्रतिदिन संध्या समय इस वेदांती के पास आ बैठता, दिन भर की आपबीती उससे कहता, और फिर वे दोनों सारे संसार को, और अन्त में उसके स्रष्टा को भी अपने ज्ञान से तोलकर और आलोचना की हथौड़ी से ठोक पीटकर अपने मन का उबाल शान्त करते थे।

बिम्बसार ने एक ही दिन में अभिराम का मन जीत लिया था। वृद्ध को सब से अधिक आश्चर्य इसी बात पर हो रहा था कि इन तीन दिनों में ही बिम्बसार, पाली और आनन्द की यह अखंड त्रिपुटी कैसे बन गई! उसके मन में एक ही बात भ्रमित हो रही थी...। उसका मित्र वेदांती ब्राह्मण मृत-मनुष्य की खोपड़ी की परीक्षा करके भविष्य कहने की विद्या में पारंगत था; मृत और घातकके सम्बन्धकी वर्तमान स्थिति और भविष्यका वह पूर्ण ज्ञाता था। अभिरामने

अपने मस्तिष्क के भ्रमित विचारों का हाल सदा की तरह वेदांती से कहा और आग्रह किया कि वह पाली और बिम्बसार का भविष्य ध्यानपूर्वक देखे। स्वाभावानुसार पहले तो वेदांती चिढ़ बैठा, पर थोड़े समय बाद शांत होने पर उसने दोनों का भविष्य देखना स्वीकार किया। इसलिए अभिराम, आज इन दोनों को वेदांती के पास लाया था। वेदांती जब दोनों का भविष्य देखने में तल्लीन हुआ तो अभिराम यक्ष-मदिर में चला गया। किसी परिव्राजक के मंदिरमें आने की बात सुनकर वेदांती ने उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए अभिराम को भेज दिया था। वृद्धि वेदांती, पाली और बिम्बसार के हाथों को देख रहा था। वेदांती के मुख पर भावों का परिवर्तन पाली को कभी आशान्वित और कभी चंचल बना देता था....।

अंत मे वेदांती ने दोनों के हाथ छोड़ दिये और पास में रखे हुए तुलसीदल मुँह में डाले और एक ठंडी निःश्वास लेकर सिर हिलाने लगा। पाली, अभिराम की तरह वेदांती को भी अपने नटखटपन से उतना ही सताती थी, फलस्वरूप बूढ़ा भी पाली को किसी-न-किसी प्रकार चिढ़ा दिया करता था। इस बार वृद्धके मुँह की गंभीरता से पाली के प्राण गले तक आ पहुँचे; वेदांत की भविष्वाणी सुनने के लिए वह अधीरतापूर्वक उसकी ओर देखने लगी। यह बात बूढ़ा समझ गया और पाली की ओर देखकर बोला—'यह दाढ़ीवाला राजकुमार है! इसके प्रारब्ध मे महान आत्माओं से संसर्ग प्राप्त करना लिखा है... यह प्रकृति का अनुचित पक्षपात है, अन्याय है!....'कैसे भगवन्?....' विस्फारित नेत्रों से वेदांती की ओर देखकर बिम्बसार ने पूछा। 'मुझे भगवन् नहीं वेदज्ञ कह!...' अभ्यासानुसार वेदांती ने उसकी भूल सुधारते हुए कहा—'यह प्रकृति का बड़ा भारी अन्याय नही है?... तू एक विद्वान शास्त्री के पास बैठा है और तेरी बुद्धि इस लड़की को देखने में लगी है! बोल, तू मेरे पास बैठने लायक है?....फिर भी बैठा ही है! यह प्रकृति का घोर अन्याय है!...अस्तु, तू कहाँ का राजा है?...'

'मैं राजा नही, पर किस देश का हूँ यह तो आपको बताना चाहिए! आप ही वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ हैं न!'

'तू सच कहता है कि तू राजा नहीं है?' वृद्ध ने बारीक दृष्टि डाल कर पूछा।

'नहीं, नहीं हूँ!'

'तो थोड़े ही समय में हो जाना चाहिए!'

....'कितने समय में दादा?...' सहसा पाली के मुँह से शब्द निकल पड़े; वह लाज से ज़मीन में गड़ गई।

वृद्ध ने दोष निकालने के लिए कृत्रिम क्रोध से पूछा—'तू क्यों पूछती है? भविष्य तेरा कह रहा हूँ या इसका?....अस्तु प्रारब्धशाली युवक, तू केवल राजा ही नहीं एक महाराजा बनेगा,....सम्राट बनेगा।'

'यह तो आप जैसों के आशीर्वाद से ही हो सकेगा?'—

'आशीर्वाद से कुछ लाभ नहीं, तेरे भाग्य के योग से ही होगा!'

'प्रकृति का घोर अन्याय होगा!' पाली ने गम्भीर बन कर कहा।

बिम्बसार हँस पड़ा, फिर उत्सुकतावश बिना संकोच के, पूछ बैठा—

'वेदज्ञ, सम्राट बन जाऊँगा, पर किस देश का?'

'पूर्व देशों का, तू पूर्व का है।'

'यदि पूर्व का न हूँ तो?'

'तो तू झूठा है!'

'झूठा मनुष्य सम्राट् कैसे बनेगा?'

'हृदय में कपट न हो तो बन सकता है, इसीलिए तो कहता हूँ कि तुझको भाग्यशाली बनाना प्रकृति का घोर अन्याय है। उसने तुझ में एक निर्बलता के साथ चार सुन्दर वस्तुएँ दी हैं। तू झूठा होने पर भी सम्राट बनेगा'—

'दादा! हाथ तो मेरा देख रहे हो और भाग्य इनका पढ़ रहे हो?'.... पालीने मुँह चढ़ाकर पूछा। वेदांतीने चौंक कर देखा! तभी उसे ख्याल हुआ कि बात करते-करते उसने पाली का हाथ पकड़ लिया था। जो बात पाली के हृदय में घूम रही थी, वही बात वेदांती के मन मे थी। उसका छुपा मन, पाली का भविष्य जानने के लिए अत्यधिक व्याकुल हो गया। अपने मन की बात बाहर प्रकट न

हो जाए इसलिए उसने हँसने का प्रयत्न किया—हँसा; और बोला—

'कारण यही है पाली, कि इसका हाथ पढ़ कर मैंने तेरा भाग्य देखा था।'

'पर मेरा भविष्य अभी तक मुझे कहाँ कहा है ?'

'तुझ अकेली को कहूँ या दोनों को ?'

'मुझ अकेली को ही कहो दादा।'

'नहीं प्रभु ! बिम्बसार ने मत-भेद किया।'

'क्यों ?...' पाली ने भृकुटी चढ़ा कर पूछा।

'यह तो घोर अन्याय होगा वेदज्ञ !'

'कैसे ?'

'पाली को सुनाने के लिए आपने मेरा भविष्य कहा था, अब मुझे सुनाने के लिए पाली का भविष्य कहना चाहिए !'

वेदांती बिम्बसार की ओर देखने लगा; उसने मुँह घुमाए बिना ही तिरछी आँखों से पाली की ओर देखा, तब पुनः बिम्बसार की ओर देख कर दोनों को सुनाता हुआ कहने लगा—'तुम दोनों की मनोकामना पूरी होगी !...पर बेटी'....पाली की ओर देख कर उसने कहा....'तू महारानी नहीं बनेगी !'

'प्रभु....!' जैसे बिम्बसार के चेहरे का रक्त अचानक उड़ गया ! वेदांती एकटक उसकी ओर देखता रहा; कुछ देर बाद उसने पाली की ओर दृष्टि घुमाई और मुस्करा कर कहने लगा,—'बेटी, जीवन में दुःख और सुख सदा से ही एक दूसरे को हराने के लिए द्वन्द्व-युद्ध करते रहते हैं, कोई भी मनुष्य इन से अलग नहीं रह सका है। आज तक कोई इसका निर्णय नहीं कर सका कि इन दोनों में कौन अधिक शक्तिशाली है ? क्योंकि दोनों एक दूसरे से हारते रहे है ! अपने जीवन के अंतिम दिन तू इससे ऊँचे स्तर पर बिताएगी, तुझे ब्रह्म-ज्ञान होगा—जिसके पीछे सारा जीवन गँवा कर भी मैं न पा सका, उसे तू सरलता से पा जाएगी ! कदाचित तू संसार-त्याग भी करेगी !'

'नहीं नहीं, प्रभु ! मैं ऐसा नहीं होने दूँगा, कभी नहीं ! आशीर्वाद दीजिए प्रभु, यही आशीर्वाद दीजिए !...'

आत्मसंयम खोकर, बिम्बसार के क्षुब्ध हृदय से यह बात निकल तो गई किंतु सम्हल जाने पर तत्क्षण वह संकुचित हो गया। पाली और वेदांती उसके आवेश में गर्भित प्रेम और निश्चय को स्तब्ध होकर देखते रहे।

'प्रभु !' सिर उठाकर पुनः बिम्बसार बोला—'आपने अभी कहा न था कि हमारी कामनाएँ पूरी होंगी ?'

'मैंने 'तुम्हारी' इच्छा पूरी होगी यह कहा था, 'तेरी' इच्छा पूरी होगी यों नहीं कहा।'

'और इसमें अपवाद नहीं हो सकता ?'

'नही !'

'बस प्रभु ! यही आशीर्वाद दीजिए !'

बिम्बसार अधिक न बोल सका। पाली अभी भी विस्मित-सी उसके मुख की ओर देख रही थी। अंत मे दोनों ने वेदांती का आशीर्वाद लिया और जाने लगे। वेदांती शांतिपूर्वक दोनों को जाते हुए देखता रहा।

इतने में अभिराम की दूर से आती हुई चिल्लाहट ने उसका ध्यान भङ्ग किया। वह तेजी से दौड़ता हुआ चला आ रहा था, मानो उसके जराजीर्ण पैरों में नया यौवन आ गया हो ! उसके वेदांती के पास पहुँचने के पहिले ही बिम्बसार और पाली दूर निकल गये थे। उसके मुँह पर भीषण आवेश दिखाई दे रहा था। कभी-कभी युद्ध में जीतने पर भी अभिराम ऐसा उन्मत्त हो जाता था; उसे देखकर वेदांती खीझा—इस बूढ़े को यौवन तो याद नहीं आ गया ? किसी का शरीर छेदकर, या किसी के टुकड़े-टुकड़े करके तो अभिराम पागल की तरह यहाँ दौड़ा नहीं आया ? मार काट और हिंसा से वेदांती को अत्यन्त घृणा थी। वेदों के सतत मनन के बाद जब से उसने वैसी कितनी ही बातों का त्याग किया था तब से प्राण लेने की क्रिया उसके मन में अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न करती थी। वेदों की अगम्य बातें जानने के लिए वह कभी-कभी बहुत व्याकुल हो जाता। इसलिए अभिराम कुछ उत्तेजक बातें कहे उसके पहले ही वह मृगचर्म समेटकर संध्याकर्म के लिए पर्णकुटी में जाने को उठ खड़ा हुआ। किन्तु अभिराम चूकने वाला न था, बोल उठा—

'मित्र, सुन तो सही !'

'सुन लिया ! कितनों को मार डाला ?'

'अरे, मैं ही मर गया भाई, मैं स्वयं मर गया !'

'तू मर ग....' वेदांती कुछ कहना चाहता था किन्तु उससे बोला न गया, कुछ देर बाद उसने मुस्करा कर पूछा—'तू कब मर गया ?'

'कुछ ही क्षण पहले; यही तो कहने आया हूँ !'

अब तो अभिराम के लिए वेदांती सचमुच ही भयभीत हुआ। अभिराम का स्वर बदल गया था। उसके मुँह पर सदा के गांभीर्य के स्थान पर एक प्रकार का स्मित खिल रहा था। ममेटा हुआ मृगचर्म नीचे रखकर उसने अभिराम का हाथ पकड़ा और नीचे बैठाया।

'देख अभिराम, वैद्य का ही मस्तिष्क बेकाम हो जाय तब दवा कौन करेगा ?'

मुझे दवा की आवश्यकता नहीं है, और समझ की भी नहीं। विप्र, जिसकी आवश्यकता थी वह अलभ्य वस्तु मुझे आज अचानक ही प्राप्त हो हो गई है। मित्र, मैं मर गया हूँ क्योंकि अब मुझे पुनर्जीवन की अनुभूति हो हो रही है। मेरी मंद दृष्टि अचानक प्रोज्ज्वल हो गई है ! मेरे शरीर में सहस्र अश्वों की शक्ति एक साथ दौड़ उठी है ! मैं सब कुछ देख सकता हूँ; मेरी आन्तरिक दुविधा दूर हो गई है, मुझे असीम शांति का तट मालूम हो गया है, बस वहाँ जाने की देर है। इसलिए तुझे लेने आया हूँ; चल, वयस्क, मेरे साथ यक्ष-मंदिर में चल....'

'यक्ष-मंदिर में ? क्या वहाँ कोई परिव्राजक आया है ?'

'तू शाक्यों के राजकुमार, शाक्य-मुनि को जानता है ?...वे आये हैं; मैं उनसे मिला। उन्होंने प्रेममयी दृष्टि डालते ही मानों मेरे प्राण और हृदय अपनी ओर खींच लिए। मैं उनके पास बैठ गया, और उनके उपदेश सुनने में तल्लीन हो गया। मैं नहीं मानता था वेदांती ! सच कहूँ तो हम नहीं मानते थे कि एक युवक लौकिक और अलौकिक जीवन के रहस्यों और चमत्कारों को समझ सकेगा ! शाक्य-मुनि युवक हैं, वे सब समझते हैं। मैं जो

कहता गया, जो जो प्रश्न मैंने पूछे वे गूढ़ प्रश्न अति साधारण होकर मेरे सामने प्रकट होते गए ! मैं अवाक् हो कर उन्हें देखता रहा। धीरे-धीरे हृदय में प्रकाश हुआ, मुझे एक दिव्य ज्योति की प्राप्ति हुई। मैं उनके चरणों में गिर पड़ा। मैं मर गया। मेरा पुनर्जन्म हुआ। शाक्य-मुनि अद्‌भुत हैं, अलौकिक हैं। मेरी दृष्टि में वे सर्वज्ञ हैं। चल वेदांती; अभी चल—तेरे वेदांत का आरम्भ और अन्त शाक्य-मुनि में मिलेगा, जो तुझे वहाँ शांति नहीं मिले तो जो कहे, दण्ड भोगने के लिए तैयार हूँ ! मित्र, मैं मर गया हूँ और तुझे मरने के लिए ले जाने आया हूँ।'

'शाक्य-मुनि ? आलारकलाम ने जिसके विषय में घृणापूर्वक कहा है वही तो नहीं ? वह तो हर किसी को दीक्षा देता है ! सुना है हमारे गाँव के एक मोची ने उससे दीक्षा ली है। नीच जाति को दीक्षा ! वही जो भिक्षुओं के साथ घूमता रहता है, और शास्त्र अध्ययन करता रहता है। भारत के अनादि धर्म का विरोध करके तेरा शाक्य-मुनि स्वयं धर्मप्रवर्तक होना चाहता है ? देखूँ तो सही उस अधर्मी को ! इस शाक्य गौतम को !....'

'....बुद्ध को, गौतम बुद्ध को—कह !' वेदांती की भूल सुधारते हुए अभिराम बोला—'उनके शिष्य उन्हें गौतम बुद्ध के रूप में पहिचानते हैं—सम्यकसंबुद्ध गौतम के रूप में !'

वहाँ खड़ा-खड़ा अभिराम और अधिक बोलने का धैर्य खो बैठा था; सर्वशास्त्र कोविद वेदांती को वह शाक्य-मुनि के पास ले जाने के लिए आतुर हो रहा था; इसलिए जब वेदांती को खींच-तान कर यक्ष-मन्दिर तक ले आया तब ही उसे शांति हुई। यक्ष-मन्दिर तक आ पहुँचने के बाद दोनों एक दूसरे को देखने लगे। यक्षमन्दिर सूना था।

वेदांती ने हाँफते-हाँफते इधर उधर देखा और किसी के दिखाई न देने पर व्यंग भरी आँखों से अभिराम की ओर दृष्टि की। अभिराम बेकल हो कर इधर उधर दौड़ रहा था; वह मंदिर, और मन्दिर के पास कच्ची दीवार की

धर्मशाला में घूम आया पर कोई दिखाई नही दिया । वेदांती अभी भी तीक्ष्ण दृष्टि से अभिराम को देख रहा था ।

'अभिराम....'वह बोला—'तू आज की बात कह रहा है या चार महीने पहले की ?'

'अरे, तू क्या मुझे मदिरा के नशे मे समझता है ? चार महीने पहले की बात आज दौड़ कर कहने क्यों जाऊँ ?'

'तेरा कौन-सा काम साधारण होता है ? पाँच वर्ष पहिले की बात तू एक बार मुझे रात को नींद से जगा कर कहने लगा था !'

'वह तो आत्मा की बात थी; आध्यात्मिक असन्तोष की बात थी !'

'अच्छा, अब मुझे समझा कि शाक्य-मुनि ने तुझे ऐसी कौन-सी बातें कह दी कि एक ही बार में, एक ही क्षण में तेरे जीवन भर का आध्यात्मिक असन्तोष दूर हो गया, और मुझे भी उसके लिए यहाँ घसीट लाया ?....'

'वेदांती ! तू वेदों को मानता है न ?'

'तेरा शाक्य-मुनि मानता है ?'

'नही !'

'आत्मा को मानता है ?'

'तू जिसे आत्मा मानता है, उसे नहीं !....'

'परलोक को मानता है ?'

'मानते हैं, और नही भी मानते !'

'तब मै उस मनुष्य का मुँह भी नही देखूँगा ! कोई दूध के विषय में तर्क करना चाहे और उसमें यदि दूध को पहचान ने की क्षमता ही न हो उसके साथ तर्क कैसा, अभिराम ?'

'पर भाई, दूध को देखे बिना तू ही दूध के विषय में तर्क करने की मूर्खता कर रहा है। तूने शाक्य-मुनि के साथ वार्तालाप किया है ?...नहीं ! तर्क किया है ? नहीं ! तब तू अपना ही विरोध कर रहा है ! जिसे देखा नहीं, जिसके विषय में कुछ नहीं सुना, जिसके सिद्धांतों को नहीं समझा उसे अचा-

नक यह कह देना कि 'तू कुछ नहीं जानता !' यह कहाँ तक मूर्खता दिखाता है ? तू ही कह न !'

वेदांती क्षणभर अभिराम को देखता रहा; उसने विस्फारित नेत्रों से देखा कि अभिराम के मुख पर अपूर्व प्रसन्नता प्रस्फुटित हो रही थी। उसकी आँखों में गर्वमयी ज्योति चमक रही थी मानों उसे कोई अलभ्य वस्तु मिल गई हो। वह देखता ही रहा ! उसने यक्षविहीन मन्दिर की ओर देखा; मनुष्यविहीन धर्मशाला की ओर देखा, और देखा चन्द्रविहीन आकाश की ओर––सप्तर्षि जैसे एक ओर भाग जाना चाहते थे ! धीरे-धीरे उसने सिर नीचे झुका लिया और बोला––'शाक्य-मुनि गौतमबुद्ध....गौतम बुद्ध !....'

तब जैसे उसे कोई बात याद आ गई, वह उठ खड़ा हुआ, और संध्या-कर्म के लिए पर्णकुटी की ओर जाने लगा।

अभिराम निर्निमेष दृष्टि से वेदांती की पीठ को देख रहा था; उसके ओठ विजय के गम्भीर हास्य से फड़क रहे थे। जीवन में पहिली वार वेदांती विजित होता दिखाई दिया। वेदों को न माननेवाले, आत्मा और परमात्मा का विभिन्न प्रकार से विवेचन करनेवाले शाक्य-मुनि ने वेदांती को बड़ी उलझन में डाल दिया था; विचारों के इस प्रवाह में, जिस जगह वेदांती को रुकना पड़ा, उस स्थान को यह कल का शाक्य-मुनि, एक क्षत्रिय-पुत्र पार कर गया था। अभिराम, वदांती के मन के दुविधामय विचारों को जान गया, इसलिए वह एकटक वेदांती की पीठ की ओर देख रहा था।

आनन्द, सीमा पर के झगड़ों का निबटारा करने के लिए अन्य ग्रामीणों के साथ गया था, वह कब से उसके पैरों के पास आकर बैठा गया, यह अभिराम को मालूम ही न हुआ। जब आनन्द धीरे से कुछ बोलने लगा तब उसे सुध आई।

'दादा, मैंने शाक्य-मुनि को देख लिया ! उन्हें श्रावस्ती नगरी के अनाथ पिण्डिक के यहाँ से आमन्त्रण मिला, वे वहाँ गये हैं। बहुत विचित्र पुरुष हैं दादा ! मैं उन्हें तलवार लेकर मारने दौड़ा पर मार नहीं सका !'

'ऐं ! दुष्ट, क्या कहा ? तूने मेरे प्रभु पर हाथ उठाया ?'

'हाँ, दादा ! मल्लराज गोपाल, सीमा के झगड़े में मेरे सामने आकर खड़ा था। देखते ही देखते बात बहुत बढ़ गई, दोनों गाँव के पंच भी बीच में पड़े किन्तु गोपाल न माना, उसे आवेश चढ़ा हुआ था। उसी समय शाक्य-मुनि अपनी मित्रमण्डली के साथ उधर आ निकले, उन्होंने हमें शान्त करने का प्रयत्न किया। 'तुच्छ बातों के लिए मनुष्यों की हिंसा करना अज्ञानी और मूर्ख मनुष्यों का काम है' ऐसा ही कुछ वे बोले। मुझे क्रोध आ गया, तलवार लेकर उनकी ओर जा दौड़ा ! किन्तु ओह, मै उनकी अदम्य मुस्कान नहीं मिटा सका। अचानक मेरे पैर रुक गये, मेरा हाथ आकाश में ही रह गया !'...

'फिर ? दुष्ट तूने क्या किया ?'

'तब मुस्कराते हुए वे आगे बढ़े: उन्होने मेरी तलवार हाथ में लेकर म्यान में रख दी। उसी मुस्कराते मुख से, उसकी ओर देखकर उन्होंने उसकी तलवार भी म्यान में रखी और कहने लगे—'

'क्या कहा आनन्द ! उन्होंने क्या कहा ?'

'बोले कि—कभी भी वैर से वैर नष्ट नहीं होता। प्रेम द्वारा ही सब वस्तुओं का आधिपत्य मिलता है; यही सनातन धर्म है !'

'धन्य प्रभु ! फिर....बेटा ?'

'प्रेम से वश करने की बातें तो मैं कब से सुनता आ रहा हूँ किन्तु शब्दों का जो चमत्कार उनके मुख पर दिखाई दिया, वह मैंने कहीं भी, कभी नहीं देखा। मुझे लगा कि उनकी मुस्कान मेरे हृदय को बेंध रही थी. मेरी समस्त शक्ति उस मुस्कान ने हर ली। मै अपनी सुधबुध खो बैठा और मेरा मस्तक उस सन्यासी के—'

'मुनि के—' अभिराम ने भूल सुधारी।

'उस मुनि के पैरों मे गिर पड़ा...' आनन्द ने अपनी भूल सुधारकर कहा 'और तब ही मुझे मालूम हुआ कि मल्लराज गोपाल के साथ ही मैंने भी अपना सिर इस सन्यासी के—'

'शाक्य-मुनि के—'

'शक्य-मुनि के पैरों में झुका दिया था; तब उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया; हम दोनों को उठा कर हृदय से लगाया; और हम जाने किस तरह सारा वैमनस्य भूल कर एक दूसरे से चिपट गए। जब हम एक दूसरे के बाहुपाश से छूटे तब हमें सुध आई कि शाक्य-मुनि अपने शिष्यों के साथ नदी के उस पार, नदी के शांत जल में किरणें फेंकते हुए जाज्वल्यमान सूर्य की ओर, दूर चले जा रहे थे। दादा, आंसुओं के अवगुंठन ने मुझे और स्पष्ट न देखने दिया। मल्लराज ने सच ही कहा था—'वे हमे छोड़ गए पर हमारे हृदय को ले गए'। तुम उनसे मिले थे दादा ! उनसे तुम मिले थे ?'...

अभिराम की आँखों से आँसू बह रहे थे। घोर अंधकार में विद्युत-प्रकाश की एक झलक चतुर मनुष्य को मार्ग दिखा देती है उसी तरह शाक्य-मुनि, अभिराम का हृदय उज्ज्वल करके चले गए थे। एक ही घटना द्वारा उन्होंने अभिराम, आनन्द और गोपाल को अपना बना लिया। आनन्द के प्रश्न के उत्तर में अभिराम ने सिर हिलाया। उसकी आँखों के आँसू उमड़ रहे थे। वह धीरे-धीरे खड़ा हुआ और उन्मत्त-सी दशा मे, पास बैठे हुए आनन्द का हाथ पकड़ कर महल की ओर जाने लगा।

१३)

वही चन्द्रमा, वही उद्यान और वे ही पाली व बिम्बसार थे; पर वह रात न थी। वह तीन, नहीं किंतु सात दिनों बाद की रात थी।

उस दिन संध्या से, जब वेदांती ने भविष्यवाणी की थी, अब तक पाली और बिम्बसार के बीच हृदय में भावों के उत्थान-पतन ने विचित्र रूप धारण कर रखा था। वेदांती से मिलने के बाद दूसरे ही दिन से पाली, बिम्बसार को प्रेम और भय के मिश्रित भावों से देखने लगी। एक प्रकार का संशय, एक प्रकार के वियोग का पूर्वाभास धीरे-धीरे पाली के हृदय मे प्रकट होने लगा। पाली ऐसे भावों को समूल नष्ट करने का प्रयत्न करती; वे अन्तर्हित भी होते, किन्तु कभी-कभी वे फिर प्रकट हो कर दोनों को अशांत कर देते थे।

जब इन दोनों प्रेमियों के बीच रसपूर्ण वार्तालाप प्रारम्भ होता तब पाली अपनी समस्त शक्ति एकत्रित कर मन को बलात् दबा कर आधी बात छोड़, उठ जाती थी। किसी समय श्रृंगार करते-करते रुक जाती; कभी तो महल के बाहर ही न जाती और कभी बिम्बसार से छुपने के लिए किसी काम का बहाना करके आनन्द, अभिराम या वेदांती के पास भाग जाती।....किन्तु जब वह मन को अधिक कठोरता से दबाती तब भी वह भय मिश्रित प्रेम आ ही जाता, उसे लगता कि हृदय अब वश में नहीं रहेगा! और था भी ऐसा ही !

सुबह से बहाना करके छुपी हुई पाली कोई दूसरा बहाना ढूँढ़ कर बिम्बसार को मिलने के लिए दौड़ी आती थी। मन को जितनी कठोरता से बाँधती वह उतना ही सरल हो जाता! कौन जाने बिम्बसार में ऐसा क्या था! उसकी आँखों से आँखें मिलते ही पाली के अंग-अंग में एक अननुभूत सिहरन दौड़ जाती। मुख पर हास्य देख कर, निश्चित की हुई बात निभ नहीं सकती थी। बिम्बसार के प्रेममय शब्द उसका अपनापन छीन लेते। अनेक बार बिम्बसार को न देखने का निश्चय करने पर भी पाली बहुधा उसे देखते ही सुध खो बैठती और उससे बातें करने बैठ जाती !...और बिम्बसार ?...

ऐसे तो उसने स्त्री और यौवन को ठीक-ठीक पहचान लिया था, किन्तु नारी की प्रीति, अपनी विशुद्ध और यौवन सुलभ मादकता से परिवेष्ठित युवती का निर्मल प्रेम, उसे केवल आम्रपाली में ही मिला था।

पाली के प्रथम दर्शन से ही वह जान गया था कि पाली उसकी है; और जब से उसने इस बात का अनुभव किया तब से वह रही सही सुधबुध भी खो बैठा था। जिसकी प्रशंसा करने में लोग थकते न थे, वह चपल और बुद्धिमान बिम्बसार किशोरावस्था में पैर रखते ही किसी साधारण युवक की तरह पागल बन कर राज्य, शरीर और देश सब कुछ ही भूल बैठा। उसे इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि पाली और वह दो नहीं, एक हैं। नवप्रभात में किसी चंचल दासी का वीणा-संगीत पाली के पदों को भी चंचल बना देता। सुगंधित, सुकुमार कुसुमों को तोड़ती हुई, पक्षियों को पकड़ कर, तथा मयूर मयूरी और हरिणियों को बुला-बुला कर जब पाली नाचने

भी लगती तब उसी वीणा-संगिन के सुरों में विमूढ़ बनकर बिम्बसार वृक्ष की ओट से नर्तकी पाली को देखता रहता। पाली निस्संदेह एक कुशल नर्तकी थी।...

पाली की निडरता, उसके बुद्धि-कौशल और उसके सम्पूर्ण विकसित शरीर सौष्ठव ने बिम्बसार को विजित कर लिया। वैसे ही कभी-कभी वह पालीको देखते ही बाहुपाश में जकड़ने के लिए उन्मत्त हो जाता।

...कभी-कभी पाली को सोई हुई, गहन निद्रा में निमग्न देखकर, उसे घंटों इसी प्रकार देखने के लिए तरसता। कभी रात को जाग उठता और बाग में उस काष्ठ की बैठक पर बैठे-बैठे जाने कब तक पाली के शयन-गृह की ओर एकटक देखता रहता। निरन्तर प्रहरों पाली से वार्तालाप करने के लिए वह तड़पता रहता !...पाली के हास्य से वह प्रफुल्ल हो जाता था; पाली की अनबन से वह व्याकुल हो उठता; पाली के रोष पर वह मोहित हो जाता, पाली के क्रोध पर वह न्यौछावर हो जाता था !....

मन ही मन किये हुए निश्चय, दोनों के मिलते ही जाने कहाँ विलीन हो जाते ! दोनों के अन्तर मिलने के लिए आकुल हो उठते—ऐसी स्थिति में समय और स्थान ही उनकी बाधा बन जाते थे।

आज की रात, पूर्वगत् अन्य रातों के समान होते हुए भी विभिन्न थी। दूसरी रातों से, आज की रात में केवल यही अन्तर था कि आज बिम्बसार अधिक व्याकुल था और पाली अपनी साधारण चंचलता छोड़कर गंभीर बन गई थी।

पाली गहन विचारों में निमग्न थी; इस समय वह बैठक पर लेट गई थी। विचारों का तांता-सा लगा रहा था—एक परदेशी पुरुष—जिसके वंश और देश का निश्चित पता न था, उसके पीछे यह लिच्छवी कन्या, महानाम की पुत्री पागल कैसे हो गई ? पाली ने अनेक बार, वैसी कई कुमारियों को जो कि विवाह के पहिले ही प्रेम बावरी बन जाती थीं, हँसी की थी। किसी युवक के सम्मुख किसी युवती को सहसा प्रेम-द्रवित और झुकी हुई देखकर उसे

असीम क्रोध होता था। कोई भी स्त्री जब ऐसा व्यवहार करती तब वह स्वयं अपने को अपमानित अनुभव करती थी और समय पर उस स्त्री को रोष-भरा उलाहना देने वह स्वयं वहाँ पहुँच जाती थी। वह सबसे अधिक इसी बात पर चिढ़ती थी कि पुरुष को देखकर स्त्री अबला क्यों बन जाती है ?... उस समय इस बात का प्रामाणिक कारण उसे ढूँढे न मिलता था। आज उसे रह रहकर यही बात मन के किसी कोने को गुदगुदा कर बता रही थी स्त्री की यही निर्बलता—नर और नारी का प्रणय, प्रकृति की देन है !

इस उत्तेजना के कारण अधिक निर्बल कौन है ?...स्त्री या पुरुष ? या दोनो ही ?...जिस प्रतीति की स्त्री-पुरुष दिन-रात कामना करते हैं वही सच्चा सुख है ?...इसी विषय मे 'किसलिए' और 'क्यों' के गहन विचारों मे पाली उलझ गई थी।

तब ही अत्यन्त निकट से, श्वास के स्वर में बिम्बसार ने कहा—'पाली !'

'अति....' अतिथि शब्द पूरा न हो सका; पाली चौंक उठी।

'अति सुंदर...' बिम्बसार ने पाली का अधूरा शब्द पूरा किया।

'क्या है अति सुन्दर...?'

'जो कुछ तुम कहती और मानती हो !' बिम्बसार ने उत्तर दिया। पाली कुछ देर उसकी ओर देखती रही तब बोली—'तुम यहाँ क्यों आये ?'

'....और तुम ?'

पाली सहसा कुछ उत्तर न दे सकी। बिम्बसार भी मौन था, जैसे दोनों एक दूसरे को समझ रहे हो ! श्वासोच्छ्वास से पाली का वक्ष काँप रहा था, और कुछ कहने के प्रयत्न में ओंठ भी हिल-हिल कर रह जाते थे ! बिम्बसार की मदमाती आँखों और हृदय में उठते हुए तूफ़ान ने कुछ देर तक दोनों को विमूढ़ बना दिया।...दोनों के मन साक्षी थे कि इतनी रात मे वे उद्यान में क्यों आये ? पाली ने बलपूर्वक अपनी भावनाओं को दबाया। वह सहसा खड़ी हो गई और बोली—'तुम कल ही यहाँ से चले जाओ !...'

'क्यों ?' बिम्बसार ने मुस्करा कर पूछा।

'तुम्हें कल जाना ही होगा!'

'क्यों?'

'तुम जाओगे या नहीं?'

'क्....'

'क्यों न पूछो!' पाली बीच में ही बोल उठी—'जाओगे या नहीं!'

'मैं परदेशी हूँ, अतिथि हूँ, सम्भव है मैं अभी तक स्वस्थ न हुआ हूँ!'

'आज संध्या को मुझे उठाकर गंगावाली टेकरी पर चढ़ गये तब तो स्वास्थ्य ठीक था न?'

'नहीं, एक छोटे बछड़े को लेकर, एक श्वास में मैं टेकरी पर चढ़ जाऊँ तब ही कहा जा सकता है कि मैं स्वस्थ हूँ—मेरे शुभचिन्तकों का यही अभिप्राय है! तुमको उठाने का श्वास अभी तक बन्द नहीं हुआ है।....मैं स्वस्थ नहीं हूँ।'

'यों ही कहो न कि मैं बछड़े से भी अधिक भारी हूँ।'

'मैंने ऐसा कब कहा?' बिम्बसार ने अत्यन्त मृदु स्वर में पाली का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा; इस स्पर्श ने पाली को सिहरा दिया। बिम्बसार ने पुनः शिराओं में विद्युत्प्रवाह उत्पन्न किया, उसने मन्द स्वर में कहा—'पाली!....'

'नट....' मुँह उठाकर उसी स्वर में पाली ने उत्तर दिया; उसकी आँखें झुक गई थी। पाली का एक हाथ बिम्बसार के हाथ में ही था; उसने दोनों हाथों से पाली को अपनी ओर खींच लिया। पाली विस्फारित नेत्रों से उसे देखती रही।....

'पाली, हृदय की भावना बाहर आकर बोले तो हम दोनों के हृदय एक बात कहेंगे, यह बात तू भी जानती है और मैं भी!....'

बिम्बसार 'तू' तक आ पहुँचा था। पाली को यह 'तू' सम्भवतः अमृत जैसा लगा होगा, क्योंकि उसने इसका कुछ भी विरोध नहीं किया। बिम्बसार के कहते-कहते ही पाली ने आँखें मूँद लीं; बिम्बसार की वह भावना उत्तेजित

हो रही थी ।...

'पाली, जब से यहाँ आया हूँ, तब से मन में बार-बार यही कह रहा हूँ और सोच रहा हूँ—तुझसे कैसे कहूँ कि 'तू मुझे सुखी कर, मुझे विवाह कर लेने दे ! अब मैं तेरे बिना नीरस हो रहूँगा !....किन्तु मैं नहीं कह सका। पाली, मैंने किसी के आगे निर्दोष बनने का आडम्बर नहीं किया । जो कुछ शुद्ध, स्वच्छ और सुन्दर, तेरे पास है, वह मेरे पास नहीं; केवल शक्ति या बुद्धि कभी आकर्षक नहीं होती; केवल सौन्दर्य भी कभी सम्पूर्ण या आकर्षक नहीं होता ! मैंने अनेक सौन्दर्य-मूर्तियाँ अपने चरणों में लोटती देखी हैं, किन्तु उन पर मैं हँसता रहता था । मैं केवल मनोरंजन कर रहा हूँ, यही मेरे हास्य का रहस्य था। किन्तु जब से मैंने तुझे देखा है, मुझे लगा कि मैं जिसे देखता था वह मुझे मिल गई; और इस समय अनुभव हो रहा है कि मैं परिपूर्ण हूँ ! तू ही मुझे पूर्ण करती है पाली ! तू मेरी है ! सामाजिक नियमों, लोकलाज और कुल-संरक्षण के लिए हम विधिपूर्वक विवाह करेंगे; पर हमारा विवाह तो हो ही गया है ! तुझे मैं तेरे समाज में किसी भी प्रकार अपमानित देखना नहीं चाहता । तू मुझसे विवाह-ग्रंथि में बन्ध जा...!'

पाली उन्मत्तवत् बिम्बसार को एकटक देखती रही । यदि अब तक पाली मौन न रही होती तो जो कुछ बिम्बसार ने कहा वही अक्षरश: बोल जाती। किन्तु पाली बुद्धिमान थी; उसमें नारी हृदय की संवेदना के साथ-साथ एक लिच्छवी का स्वाभिमान और पिता की दी हुई शिक्षा भी समाई थी। वह बिम्बसार से अलग हो गई। दूर दृष्टि डालकर, जैसे उस ओर इंगित करते हुए पाली ने कहा—'तुम परदेशी हो !'

'मैं राजकुमार हूँ ।'

'नट हो !'

'पर जन्मजात नहीं !'

'रहस्यमय हो !'

'दुष्ट नहीं !'

'विदेशी पर सीमित विश्वास ही किया जा सकता है' पैर बढ़ा कर पाली ने कहा—'जो पुरुष अपने आपको गुप्त रखना चाहता हो, जो सच कहने में संकुचित रहता हो, जो रात-दिन अपने उस रहस्यमय जीवन के लिए सचेत रहता हो, उसकी किसी भी बात पर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है ?....'

बिम्बसार उसके पास दौड़ आया; पाली तिरछी दृष्टि से अपने शब्दों का प्रभाव मापने लगी। वह अनभिज्ञ की तरह उस ओर पीठ करके खड़ी रही जैसे वह बिम्बसार का आना नहीं जान पाई है। उसने बलात् अपने मुँह पर विराग लाने का प्रयत्न किया। किन्तु बिम्बसार यह सब न देख सका; उसने पाली को दोनों हाथों से एकदम अपनी ओर घुमा लिया और उसकी ओर पागल की तरह देखकर कहा—'पाली, मेरी आँखों में देखकर कह कि 'मुझे तुम पर विश्वास नहीं है!' पाली ने देखा, बिल्कुल पुतलियों में देखा। बिम्बसार देखता ही रहा। पाली जैसे उसे पढ़ कर बोली—'तुम्हें मुझमें विश्वास है ? नहीं! क्यों ?' इतना कहकर वह उस बैठक पर बैठ गई। बिम्बसार भी उसके पीछे जा बैठा। पाली उसकी ओर देखे बिना ही कहती गई—'मुझमें विश्वास होता तो कह देते कि तुम कौन हो! प्रेम में अविश्वास का ज़रा भी स्थान नहीं; प्रेम का अर्थ ही विश्वास है!'

बिम्बसार द्रवितप्राय होकर बोला—'पाली, तेरे ये कठोर आघात भी मुझे अमृत जैसे लगते हैं! अभी मैं और कुछ नहीं कहूँगा, बस एक ही बिनती करता हूँ'....कहकर उसने तीव्र आवेश में पाली को अपनी ओर खींच लिया और बोला—'पाली फिर मुझे देख और सच्चे हृदय से कह कि तुम मुझमें विश्वास नहीं करते! बस, मैं इसी क्षण यहाँ से चला जाऊँगा। तुझ पर विश्वास नहीं करूँगा पाली, तो निश्चित समझना कि मैं, अपने आप पर विश्वास नहीं करूँगा—मैं, मैं नहीं रहूँगा!....'

इस बार पाली द्रवित हुई, सहसा उसने बिम्बसार के हाथ अपने हाथ में ले लिए, मानो उसे अपनी ओर खींचना चाहती हो। बिम्बसार और निकट

आ गया; पाली और खिसक आई और प्रेम-दृष्टि डाल कर बोली—'तुम्हें मुझमें विश्वास है तो कहो कि तुम कौन हो! मुझे कहो?....' पाली का प्रश्न सुनते ही बिम्बसार ने अपनी दृष्टि फेर ली और धीरे-धीरे बोला—'मैं अभी नहीं कह सकता पाली!'

पाली भभक उठी, सहसा खड़ी हो गई। बिम्बसार भी उठा—उसे पाली की आँखों में भीषण ग्लानि और स्वाभिमान दिखाई दे रहा था। 'अतिथि, मैं लिच्छवी हूँ! आम्रपाली लिच्छवी अपने नाम पर कलंक नहीं लगाएगी! तुम पूछते मुझे तुम पर विश्वास है या नहीं? तो सुनो मुझे तुम पर विश्वास नहीं है....' इतना कह कर वह तेजी से चली गई। उसका मन खंड-खंड हो रहा था—उसे लग रहा था कि वह स्वयं अविश्वास की पात्र है!

किंकर्त्तव्यविमूढ़ बिम्बसार उसकी ओर देख रहा था, उसका हृदय तीव्र वेदना से छटपटा रहा था। पाली, पीछे देखे बिना ही, अपने शयन-गृह की ओर चली गई. उसकी आँखों में आँसू थे।

(१४)

सुधीर की आँखों से आँसू बहे जा रहे थे। एक छोटी-सी मित्रमंडली उसके पास खड़ी हुई खिलखिला कर हँस रही थी। दो-चार युवकों के हाथ में सदा के व्यसनवश मदिरा के प्याले झूम रहे थे। कई के हाथों मे मिठाइयों के टुकड़े भी थे।....उनमें से बहुत से तो उसीके समान प्रेम के पीछे पागल थे। कोई-कोई समझदार बन कर सुधीर के साथ 'मीठा' विनोद कर रहा था। इस विनोद का एकमात्र आधार पाली थी। वैशाली के ठीक बीच में पयगृह+ था और उसके सप्तखंड प्रासाद के सातवें खंड मे संस्थाध्यक्ष* के पुत्र शौनक ने इस मंडली को एकत्रित किया था! स्वयं विवाहित होते हुए भी, उसका मन पाली के लिए हर समय ऊँचा नीचा हुआ करता था। उसे पाली की बातें सुनना बहुत सुहाता था। उसे मालूम था कि पाली के पीछे पागल होने वालों में सुधीर से अधिक कोई नहीं है। इसलिए उसने सुधीर के साथ मित्रता का सम्बन्ध जोड़ा, और थोड़े ही समय में उसका अभिन्न मित्र बन बैठा। सुधीर सदा ही पाली की बातें करता और शौनक उससे सन्तुष्ट होता था।

+ पक्की ईंटों से बँधा हुआ एक बड़ा बाज़ार जिसके चारों ओर दुकानें थीं।

* व्यापार व्यवसाय का अध्यक्ष।

आज सुधीर ने नहीं, उसके दूसरे मित्रों ने पाली की बातों का श्रीगणेश किया। एक ने सुधीर के प्रेम की मिथ्या आलोचना की। तब क्या था? दूसरे ने झट सुधीर का पक्ष लिया, तीसरे ने उसमें सुधार किया। कौशिक और गोविन्द नामक दो विनोदी युवक, सुधीर को पानी चढ़ाने के लिए श्लेषपूर्ण वाक्य बोलने लगे। एक मण्डन कर रहा था। दूसरा खण्डन। विवाद का रूप चरम सीमा पर पहुँच चुका था। सुधीर का हृदय अपने स्थान पर नहीं रहा। उसके मस्तिष्क में मदिरा का नशा पूरी तरह चढ़ गया था; वह जी खोलकर अपनी और पाली की बातें करने लगा। बात करते-करते वह स्वयं ही अपनी मूर्खता पर धीरे-धीरे हँसने लगा!....इतना हँसा कि आँखों से आँसू बहने लगे! वे युवक मित्रगण इतनी-सी बात से संतोष मानने वाले न थे। वे सुधीर को और अधिक बढ़ावा देने लगे। गोविन्द सम्पूर्ण मद्यपात्र को एक साथ पीकर बोला—

'यह सब तो सच है, पर सुधीर, उस दिन संथागार के पास तू पाली के रथ के आगे ही क्यों न सो गया? पाली अपने आप रुक जाती!'

'तू भी मूर्ख ही है गोविन्द....' कौशिक ने अग्नि में घी डाला—'अरे, पाली के रथ तक पहुँचते-पहुँचते तो यह बेसुध हो जाता है तब उससे बातें कौन करे? हाँ, मुझे साथ ले जाय तो कुछ अड़चन न हो! इसके बेसुध हो जाने पर मैं उससे वार्तालाप करूँगा।....इतना मित्रधर्म निबाहने के लिए मैं अभी से तैयार हूँ!'....कहते-कहते उसने मदिरा का प्याला मुँह से लगाया और सब के सब एक साथ हँस पड़े। गोविन्द पर मदिरा का गहरा प्रभाव होता जा रहा था। कृत्रिम क्रोध दिखा कर वह बोला—'याने परिश्रम सुधीर करे, बेहोश सुधीर हो, और पाली के साथ प्रेमालाप करके उसका मन तू जीत ले? यह कभी हो सकता है!'

....'अबे गोविन्द, तुझे तो विनोद सूझ रहा है पर उधर तो सुधीर का कलेजा कटा जा रहा है!' किसी ने चेतावनी दी।

'इसका कलेजा कटा जा रहा है और इधर क्या हो रहा होगा? तेरा हाथ मेरे हृदय पर रख और देख यह हृदय की धुक् धुक्—पाली, पाली, मेरी

पाली—कह रहा है या नहीं ?...' मदिरा के नशे में गोविन्द की सुध खोई जा रही थी। मन की छुपी हुई बातें बाहर आने लगी। गोविन्द के मुख और उच्छृंखलता ने पास खड़े हुए मद्य-निषेधक युवकों को भी प्रभावित कर लिया था।

'पाली के बारे में और आगे न बढ़; वह मेरी सम्बन्धी होती है!'

'अरे, सुनक्षत्र! तेरी सम्बन्धी होती है, बहिन होती है इसलिए उससे विवाह ही न करेगा?' शौनक ने हँसते-हँसते पूछा।

गोविन्द ने जवाब में पूछा—'किस की बहन विवाह नहीं करेगी?'

'मूर्खराज' कौशिक ने सुनक्षत्र से कहा—'बनावटी बहन के लिए दस मँगनी आ जाती है!'

'हाँ, हाँ!' गोविन्द स्वेच्छापूर्वक बड़बड़ाने लगा—'पहली मँगनी मेरी!'

'अरे, पहिली मँगनी सुधीर की ही रहेगी!' एक ने कहा।

'सुधीर के दूध के दाँत भी न आए होंगे तब से यह गोविन्द पाली को देखता आया है?...' गोविन्द ने अपनी छोटी-छोटी मूछों पर बट देकर कहा—

'पहली मँगनी मेरी है!'

'वह क्या किसी मागधी की सम्पत्ति समझ ली है कि जिसकी पहली दृष्टि पड़े वही उसका स्वामी हो जाय?...' कौशिक ने कहा।

'कौशिक, किसी का भी पत्नी से विवाह करना आकाश पाताल एक करना है!' गोविन्द ने पुन अपनी अस्थिर अँगुलियाँ मूँछों पर फेरते हुए कहा।

उसी समय किसी ने कहा—'कैसे?' 'तुझे क्या सचमुच मदिरा का नशा चढ़ा है गोविन्द?' 'सच बोल?' एक साथ, सब युवकों के मुंह से अलग-अलग उद्गार निकल पड़े। पाली का विवाह नहीं हो सकेगा, इस बात से सब प्रेमी अचानक चौंक पड़े!

'किसलिए?' सबों के शांत हो जाने के बाद शौनक ने पूछा।

'किसलिए?' गोविंद ने आँखें फाड़ कर शौनक से पूछा, और कहने लगा, इसलिए कि मैंने कल ही पाली के साथ विवाह कर लिया है!'

'ऐं!....' जैसे सबों के कंठ में से प्राण निकल गया।

'हाँ, हाँ, कल मध्य रात्रि को मैंने पाली के साथ विवाह किया है !'

'कहाँ ?' एक ने रोते पूछा ।

'मेरे ही घर में ! ....विवाह के बाद पाली वाराणसी के सुन्दर वेश वस्त्रों से सज कर मेरे शयन-गृह में आई...'

सुनने वालों की साँसें रुक गईं । गोविन्द कहता गया—'स्वर्ण के रत्न जटित आभूषण पहिन कर, शची को लजाने वाली रूपराशि बिखेरती हुई पाली मेरी शय्या पर बैठ गई...'

रोने वाले युवक के मुँह से अचानक एक कंपकँपी निकल गई ।

'धीरे-धीरे मैं पाली के पास बैठ गया...'

पुनः सुनने वालों के हृदय ज़ोरों से धड़कने लगे । मदिरोन्मत्त गोविन्द, स्वेच्छापूर्वक बोलता ही गया—'तब मैंने पाली के हाथ पकड़े, उसे बाहुपाश में ली और...'

'नहीं, नहीं...' रोने वाला युवक ज़ोरों से चिल्ला उठा ।

'शाँत, शाँत, भट्टी !...' सुनक्षत्र बोला ।

'फिर क्या हुआ गोविन्द, फिर....?'

'फिर ?' गोविन्द खिलखिला कर हँसा और बोला—'मित्र, फिर जो कुछ होना चाहिए था वही हुआ ! मैंने इसके अधरामृत का पान किया और...'

'चुप रह, चंडाल ! चुप ! !' सारा पण्यगृह काँप गया; सुधीर कड़क उठा और कूद कर उसने गोविन्द का गला दबा दिया, फिर उसने गोविन्द को बुरी तरह पीटना शुरू किया; पाली के पीछे पागल दूसरे युवक भी गोविन्द पर टूट पड़े । क्रोध में पागल सुधीर ने अधमरे गोविन्द को झटके से खड़ा किया और दाँत ज़ोरों से किटकिटा कर पूछा—'विवाह कहाँ पर हुआ ? महानाम सिंहराज के प्रासाद में ?...'

'नहीं, मेरे घर में ?'

'पाली कहाँ है ?'

'मुझे नही मालूम !'

'नीच, पामर ! कल रात को तो विवाह किया और तेरी पत्नी कहाँ है यह तुझे नही मालूम ? सच सच बता गोविन्द ?'

'मेरी तो सुनता ही नही !' कठिनता से साँस लेकर गोविन्द बोला—'मैंने उसके अधरामृत का पान किया और तब ही मेरी आँखें खुल गई ! मुझे तभी मालूम हुआ कि यह तो सपना था ! उसके बाद मै पाली के विरह में विक्षिप्त हो कर चिल्लाने लगा और बेहोश हो गया ! ...'

इतना कह कर गोविन्द धराशायी हो गया; वह सचमुच बेसुध हो गया था। किन्तु बेसुध गोविन्द पर भी सुधीर का क्रोध कम नहीं हुआ—गोविन्द ने स्वप्न में भी पाली से विवाह क्यों किया ? यह बात सुधीर सहन नही कर सका। मद्योन्मत्त बेसुध गोविन्द को भी उसने दो चार लात घूसे लगा ही दिए। उसका हृदय जल रहा था। महीनों से पाली का निरंतर ध्यान करते रहने पर भी, एक रात को भी एक क्षरण के लिए भी पाली उसके स्वप्न में नहीं आई थी !

थोड़े ही समय में, शौनक के उपचार से गोविन्द सुध में आया! मित्रों की जरा-सी बात कहने में, सुधीर के इस क्रूर व्यवहार के कारण उसे तीव्र क्रोध आया। पूर्ण स्वस्थ होने पर वह सुधीर के पास आया। शौनक, दोनों फिर न लड़ पड़े इसलिए सावधान था। सुधीर के पास आ कर गोविन्द ने गम्भीर स्वर से कहा—'ये सब लोग हम पर हँसते हैं, मैं भी उन लोगों के साथ हँसता था, पर अब नहीं हँसता। तुझे ही मार डालने से यदि मुझे पाली मिलती हो, तो मैं तुझे यहाँ से जीवित नहीं जाने देता! इसलिए आगे के लिए एक ही बात का ध्यान रखना कि पाली पर तेरा हाथ लगने के पहिले ही इस अकिंचन गोविन्द का हाथ लग चुका होगा !' इतना कह कर गोविन्द वहाँ से चला गया। कोई नही बोला। केवल वह रोने वाला चीख उठा था—'पाली मेरी है, पाली मेरी है, मेरी है....' कहता हुआ वह भी गोविन्द के पीछे-पीछे भाग गया।

दूसरे दिन लिच्छवि-नगरी में श्रावणी अष्टमी का त्यौहार था। महा-उद्यान से थोड़ी ही दूर लिच्छवी युवकों की बाढ़-सी आ गई थी। देह में मले हुए सुगंधित तैल, गंध, मंदार पुष्प की मालाएँ, स्त्रियों की अँगुलियों में महकती हुई मेंहदी और कुम्कुम् सारे वातावरण को विचित्र स्फूर्तिमय बना रहे थे। विवाहित और अविवाहित युवतियों की उपस्थिति ने रसिक युवकों को विचित्र उत्तेजना से परिपूरित कर दिया था। और साथ-साथ आज युवकों की बल परिक्षा का दिन था, तब शेष क्या रह जाय?

महोत्सव का प्रारम्भ धनुर्विद्या के प्रयोगों से हुआ। प्रत्येक युवक अपनी शक्ति और कला दिखाने के लिए आतुर हो रहा था। प्रायः प्रत्येक प्रयोगकर्त्ता के प्रयोग अचूक सिद्ध हुए; उनमें भी लगभग सौ युवक तो प्रशंसा की सीमा लाँघ गये। जैसे एक ही तीर से, एक ही श्वास में, एक हाथ से धनुष पकड़ा हो उस तरह एक जैसे और एक साथ वे लोग लक्ष्यभेदन करते थे। इन सौ युवकों में सुधीर और गोविन्द भी थे। विनोदशील कौशिक, सुधीर और गोविंद के बीच होली सुलगाने का बहाना ढूँढ रहा था। पाली के विषय में झगड़े का अंत करने के लिए उसने दोनों से एक निवेदन किया।....'एक बटवृक्ष के ऊपर एक बाँस रखा था, उस पर एक बनावटी सिंह, विशिष्ट ढंग से रख दिया गया—दो सौ क़दम दूर से उस सिंह को छेद देने वाले से पाली का विवाह किया जायगा। कौशिक के इस निवेदन ने कुछ दूसरा ही रूप धारण कर लिया। धीरे-धीरे सब युवकों को यह बात मालूम हो गई। एक के बाद एक उन सब युवकों ने सिंह को छेद दिया। उसके बाद दूसरी प्रतियोगिताएँ भी प्रारम्भ हुई। ये सब पाली को पाने के लिए तैयार थे। सात प्रतियोगिताएँ होते होते साँझ हो गई और उत्सव समाप्त हो गया। पाली को पाने की चढ़ा-ओढ़ में कोई किसी को हरा न सका। इस साधारण विनोद ने गंभीर स्वरूप धारण कर लिया। ये सौ युवक अग्रगण्य लिच्छवी कुटुम्बों में से थे और इन सबों की जिह्वा पर पाली का ही नाम था।

सब से बुरी दशा सुधीर की थी। यद्यपि वह इन सौ युवकों की तुलना में आगे न था तब भी सबसे अधिक कठिन परिश्रम सुधीर ने ही किया था।

जब रात के प्रथम प्रहर मे उसने मधुशाला मे पैर रखा, तब वह बहुत थक चुका था। पहिला घूंट पीते ही उसने निश्चय कर लिया कि पाली से विवाह करने वाले को मार डालना होगा। इतने मे कौशिक ने जल्दी-जल्दी उसका कंधा झकझोर कर कहा—'मूर्खराज, तू यहाँ बैठा है और शौनक के प्रासाद मे वे सौ युवक तेरी पाली के लिए कोई असाधारण निर्णय करने को एकत्रित हुए है।'

'असाधारण निर्णय का मतलब ?'

'पाली का बँटवारा करने के लिए वे सब गुप्त सभा कर रहे है, उसमें निर्णय होगा कि पाली से विवाह कौन करेगा।'

प्रत्युत्तर में [illegible] ने आवश्यक मदिरा पी और जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

शौनक के सातवे खड मे पैर रखते ही सुधीर रुक गया। सौ ही युवक शस्त्र हाथ में लेकर, पाली के लिए एक दूसरे को काट डालने के लिए तैयार हो गये थे। बेचारा शौनक इधर से उधर दौड़कर उन्हे शांत करने का प्रयत्न कर रहा था। वैशाली के सभी अग्रगण्य युवक वहाँ एकत्रित थे। सभी युवको ने पाली के लिए मरने अथवा मारने की हठ ठान ली थी, और उन सबो के बीच मे सुधीर का कट्टर शत्रु गोविद बैठा था। पीठ घुमाकर सुधीर ने देखा कि वह रोले-वाला युवक पागल की तरह, निसैनी के कोने पर हँसता हुआ खड़ा था। मदिरा के नशे मे मद-माता होकर सुधीर क्रोध मे भी पागल होने लगा। उसने हाथ मे लेकर एक छोटी-सी कृपाण म्यान से निकाली, और सभा के बीचोंबीच खड़ा होकर आँखें निकालता हुआ कहने लगा—'तुम में से जिस किसी को पाली से विवाह करना हो, वह पहिले मेरे सामने आ जाय और तलवार लेकर द्वन्द्व-युद्ध करे, जो जीतेगा वही पाली से व्याह करेगा। मै प्रवेणी-पुस्तक की शपथ लेकर कहता हूँ कि पाली से विवाह करनेवाले को मै मार डालूँगा।'

प्रवेणी-पुस्तक की सौगंध के कारण सारी सभा में सनसनी फैल गई। सौ में से कोई भी तिलभर हटने वाला न था। गोविंद खड़ा हो गया; और सभा-पति से कहा—'यदि सभा स्वीकार करे तो अभी ही इस बात का फैसला हो जाय: पाली से विवाह करनेवाले को मै स्वयं जीवित नहीं छोड़ सकता।'

गोविन्द का वाक्य पूरा होने के पहले ही सुधीर कृपाण लेकर उसकी ओर झपटा; गोविन्द एक झटके में अपनी तलवार निकालते-निकालते रुक गया।.... उस रोनेवाले युवकने म्यानबद्ध तलवार दूरसे फेंककर सुधीरकी तलवारको हवा में उड़ा दिया था। रुद्रमूर्ति भट्टी सहसा खिलखिला कर हँस पड़ा और सिर हिलाता हुआ चला गया। सबों को शांत देखकर शौनक ने बोलना प्रारंभ किया— 'पाली का अन्तिम निर्णय तलवार से नहीं, बुद्धि से करना होगा!'

'सच बात है, और बुद्धि भी काम न आये तो प्रवेणी-पुस्तक और सथागार है ही! पाली तलवार से प्राप्त नहीं की जा सकती!' किसी परिचित मनुष्य का उपर्युक्त वक्तव्य सबों ने सुना। सबों ने पीछे देखा चिरंजीव सामने खड़ा था; चिरंजीव को देखते ही सुधीर शांत होने लगा। दस दिन पहले, घर जाने का वचन देकर छुप जाने के कारण सुधीर अपराधी की तरह खड़ा था; चिरंजीव आज ही अपने गाँव से वैशाली आया था। वह सथागार मे बैठने वाला लिच्छवी युवक था। युवक की गुप्त सभा देखकर उसे सुधीर को बचाने का एक सुंदर अवसर मिला। उन एकत्रित युवको की मूर्खता पर उसे बहुत क्रोध हुआ। स्वयं विचारक होनेके कारण उसने युवको की नाड़ी परख ली थी। एक बार चारो ओर दृष्टि डालकर वह सभा को सम्बोधन कर करने लगा—

'वीर लिच्छवी राजकुमारो और युवको! मैं इस सभा के सम्मुख एक ही विनती करने आया हूँ। यह पास मे खड़ा हुआ सुधीर मेरा मित्र है। आज, यह मुझसे ही नहीं बल्कि हमारे गाव मे, हमारे कुटुम्ब और स्नेह सम्बन्धियों से छूटकर यहाँ घूमता रहता है! देखिये इसका मुखारविंद, ठीक-ठीक देख लीजिए! चार महीने पहले हमारे गाँव में वीरता और स्फूर्ति में इसकी जोड़ का कोई युवक न था; मुझे अभी भी विश्वास है कि इस सभा में भी शस्त्रनिपुणता और निर्भयता मे सुधीर से अधिक सिद्धहस्त युवक कोई नहीं है! फिर भी यह बात आप निश्चित समझना कि इस सभा का कोई भी युवक इसे मार डालने में समर्थ हो सकेगा! कारण जानते है? मित्रो यौवन पुनः मिल सकता है, सुख पुनः मिल सकता है, और सम्पत्ति भी पुनः प्राप्ति की जा सकती है पर एक बार गँवाई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त नहीं की जा सकती!'

'यहाँ, लिच्छवियो के पच्चीस राजकुमार और पचहत्तर वैशाली के

रणवीर लिच्छवी युवक एक स्त्री के लिए एक दूसरे को काट डालने के उन्माद मे उन्मत्त हैं। मैं सभाके सम्मुख यह प्रश्न रखता हूँ—वैशाली के भावी देशरक्षकों, तुम्हारे ऐसे कृत्यों से लिच्छवियो की प्रतिष्ठा रहेगी या जायगी? मेरा मित्र एक स्त्री के लिए वीरता के स्थान पर पशुता ग्रहण कर रहा है; और आज जो दशा इसकी है, वही कल तुम्हारी होगी! मैं पुनः प्रश्न करता हूँ—युवकों! जो स्त्री माता को पुत्र से अलग करती है, पुत्र को पिता की अवज्ञा करना सिखाती है, मित्र की, मित्र के द्वारा हत्या कराती है, और जिसके लिए एक भाई दूसरे भाई को काट डालने को तैयार हो जाता हो—वह स्त्री, किसी लिच्छवी की पत्नी होने योग्य है?'

सभा निस्तब्ध बनी रही। किसी ने उत्तर न दिया। सभा को प्रभावित करनेके बाद चिरंजीव पुनः आवेशमें बोलने लगा—'उत्तर दोगे लिच्छवीकुमारो? वैशाली को पाली की आवश्यकता है या यौवन सम्पन्न युवकों की? प्रश्न करता हूँ, युवकों! पाली को ब्याहने वाला कब तक जीवित रहेगा? पाली को ब्याहना चाहिए? उत्तर दो!'

एक सम्मिलित स्वर सुनाई दिया—'पाली किसी एक की कदापि नही हो सकती!'

'तब?' चिल्लाकर चिरंजीव ने पूछा।

'पाली सबों की होगी!' दूर से आवाज़ आई।

पुनः सबो के मुँह मुख्य द्वार की ओर घूमे—सबो ने वैशाली के संरक्षक और भक्षक अभय को अपने सदैव के विषमय स्मित के साथ खड़ा हुआ देखा। वह बोला—'पाली को अपने कौमार्य का बलिदान करना होगा! पाली, एक लिच्छवी की नहीं, समस्त वैशाली की होगी'....

सारी सभा वयोवृद्ध अभय को मान देने के लिए खड़ी हो गई और कुछ समय बाद सब, अपने-अपने स्थान पर बैठ गये।....'पाली सबों की बनेगी' यह बात सुनकर सुधीर पुनः सुधबुध खो बैठा; वह कूदकर अभय से भिड़ गया! ठीक हुआ कि चिरंजीव ने स्फूर्तिपूर्वक सुधीर को दूर हटा दिया, नहीं तो अभयराज की गर्दन ही मुड़ गई होती। ज़रा भी क्रोधित न होकर अभय ने सभा की गड़बड़ी को शांत किया और मुस्कराकर, धरती पर लोटते हुए सुधीर

की ओर देख कर बोला—‘मूर्ख लड़का !’ ठीक इसी समय, पाली के पीछे पागल होने वाले रुदनमूर्ति भट्टी का भीषण अट्टहास सुनाई दिया। दो युवक उसे पकड़े हुए थे। उसके लिए भी, अभय ने पुनः वे ही शब्द उपयुक्त किये—‘मूर्ख लड़का....!’

इसके बाद, स्तब्ध सभा के बीच खड़े हो कर सदैव की विषमय मुस्कान से जैसे कुछ भी न हुआ हो उस शांति से अभय कहने लगा—

‘चिरंजीव ने जो कुछ कहा, वही आज प्रत्येक समझदार लिच्छवी दूसरे लिच्छवी से कहता है ! यदि सभा आज्ञा दे और इच्छा प्रदर्शित करे तो मैं पाली के बारे में दो शब्द आप लोगों से कहूँ !’

तत्क्षण सारी सभा, ये दो शब्द सुनने के लिए उद्यत हो गई; और पाली का भीषण भविष्य इस सभा में निर्मित होने लगा।

(१५)

‘पर अचानक कल ही वैशाली चल देने का कारण क्या है ?’

‘मेरी इच्छा !’

‘किन्तु दो दिन रह कर जायँ....’

‘ना, कल ही जाना होगा !’ पाली ने संक्षिप्त और दृढ़ उत्तर विनोदी आनन्द को कह सुनाया। वृद्ध अभिराम एक ताड़पत्र देखने में तल्लीन था; भाई बहन की झकझक से ऊब कर उसने ताड़पत्र एक ओर रख कर कहा—‘अरी, वाह री लड़की ! कल ही जब जाने की बात निकली तब तो साफ़ ‘ना’ कर दी, और आज सब लोग इन्कार कर रहे हैं तो तू जाने को तैयार हो गई ? किसलिए जाने का निश्चय कर बैठी, इसका कुछ झूठ सच तो होगा ! क्या बात है बेटी....?’

‘कुछ नहीं, दादा !’ पाली ने पूर्ववत् क्रोध से कहा।

‘तुम भी क्या बात करते हो दादा ! किसी दिन भी पाली सकारण क्रोधित हुई है, जो आज उसके क्रोध का कारण पूछ रहे हो ?’

‘यों ही कहिए न भाई साहब, कि मैं पगली हूँ....हाँ पगली हूँ बस ! अब तो न मुझे खिजाओ ! मैं जाऊँगी, और कल सवेरे ही...!’ उद्विग्न पाली बोल उठी।

'पर...' अभिराम पाली को शांत करने के लिए कहने लगा—'तू पचास से अधिक लडकियो को कल के लिए आमन्त्रण दे आई है! तुम सबों को लेकर वह गिरजा ब्राह्मणी...भूल गया, कहाँ ले जाएगी बेटी...!'

'मिनाक्षी के मन्दिर में...' मुँह घुमाए बिना ही पाली ने उत्तर दिया। 'हाँ, हाँ...उस पर्वतवाली मीनाक्षी के मंदिर में ले जाएगी, आज से ही लड़कियाँ भोजन, नृत्य और कई तरह की वनक्रीड़ाओं की कल्पना में उत्साहित होकर गाँव में घूम रही है, और तू...'

'रहने दो दादा! स्त्रियों को, वचन देकर बदल जाने में कोई दोष नही लगता; इसलिए कल ही पाली के चले जाने मे कोई बुराई नही है !....'

'वचन देकर विश्वासघात करने में स्त्री अधिक निपुण है या पुरुष, यह तो ईश्वर ही जानता है, मै इस विषय में वादविवाद करना भी नही चाहती....मुझे कल ले जाओगे या नही ?...'

'दादा, अपनी इस बुद्धिमान और विश्वासमयी प्यारी बेटी को क्या उत्तर देना चाहिए यह तुम ही जानो; मुझमें इतनी समझ नही है ! ...'

'याने कल मुझे ले जाना नही चाहते यही न ?'

'कैसे भी हों, नटराज हमारे अतिथि है, वे कल ही चले जाने को कह रहे है! हमारा कर्त्तव्य क्या है दादा, उनके जाने के बाद ही मुझे, जजमान का घर से निकलना चाहिए न ?....'

'अतिथि कोई चक्रवर्ती सम्राट तो नही है, जो उसकी इच्छानुसार व्यवहार किया जाय ! आज्ञा दो कि आज, अभी इसी समय यहाँ से चला जाए...!

'दादा, एक लिच्छवी कन्या, एक लिच्छवी युवक को अपने कर्त्तव्य से विमुख करना चाहती है ! मुझे बचाओ दादा, मै धर्म-संकट मे हूँ ! ...'

'मेरी भूल हुई...' पाली बोल उठी—'भाई साहब, अपने उस अतिथि को सिर पर चढ़ा कर पूजिए और यहाँ नदीग्राम में ही पड़े रहिए'! देखना, कही वैशाली न पहुँच जाना, नही तो कर्त्तव्यच्युत हो जाओगे ! दादा मालूम होता है रथ भी आगे नही बढ़ सकेगा, क्यों ? और घोड़ों को

चरने के लिए छोड़ दिया गया है, इसलिए सारे गाँव मे कही भी वाहन नही, मिलना दुर्लभ है; सच है न ? मै जानती हूँ !...कोई बात नही, मै पैदल ही वैशाली पहुँच जाऊँगी !...'

'सुन लिया दादा ! सिंहराज महानाम की इकलौती बेटी, पैदल जाएगी तो कलंक तो मुझे ही लगेगा न ! नही बाबा, अपने राम तो इस बात में राज़ी नही !'

'...भैया !' पाली ने रोष भरे स्वर में कहा—'मैं कल सुबह चल जाऊँगी...'

इतना कहकर, तीव्र वेग से, पाली किसी के भी उत्तर से निरपेक्ष होकर वहाँ से चली गई। आनन्द पाली को देखता रह गया; उसे शका हुई कि पाली की आँखों मे आँसू भी थे। अभिराम पाली को देखे बिना ही विश्वास कर चुका था कि पाली की आँखें आँसुओं से उमड़ रही है !

'अचानक दोनो में क्या बात हो गई दादा ?' पाली के चले जाने के बाद आनन्द ने धीमे स्वर में अभिराम से पूछा।

'मेरा सिर !...' ताड़पत्र एक ओर रखकर अभिराम बोल उठा—

'आज सवेरे तुझसे क्या कहा था ? कल सुबह क्या कहा था ? प्रतिदिन सुबह-शाम क्या कहा करता हूँ ? पर तू भी तो पाली का भाई ही है न ! अतिथि से पूछा क्यों नही कि वह कहा का राजकुमार है ? अभी ही इस लडकी की समझ ठीक कर सकता हूँ !..पर न तो तू ही यह बात पूछता है, और न मुझे ही पूछने देता है !..'

'पर दादा, दोनों में तो...'

'हाँ, बाबा हाँ ! दोनो मे झगड़ा हो गया है होना ही चाहिए ! नही तो पुन. और अधिक प्रेम से कैसे मिला जा सकता है ? निस्सीम प्रेम को सीमित करने के लिए परस्पर एक दूसरे के लिए आँसू क्यों बहाये जायँ ?....बेटा ये सब बहाने है....कुछ क्रोध कुछ अनबन, कुछ बहानेभरा क्रोध या रोष, ये सब दोनों को मिलाने के आवश्यक साधन है ! मेरे लिए यह बात कुछ नई नही है; तेरे पिता को भी मैंने ऐसे ही झगडते हुए देखा है, तेरे काका और मामा को भी !...पर अब जरा सोच समझ कर सुन—अतिथि राज-

कुमार हैं, इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है ! तेरा भी विश्वास है कि वह सर्वगुण सम्पन्न है, और वेदांती को भी सन्देह नहीं कि उसके लिए चक्रवर्ती सम्राट् बनने का योग है ! तब फिर विलम्ब किस बात का ? उसे बुलाओ, हम अभी पूछ लेते हैं ! महानाम को मैं समझा दूँगा ! चल-उठ, एक-दूसरे के लि' व्याकुल बने हुए इन दोनों का निर्णय कर दें ! फिर तुम तुम्हारे रास्ते हो और मैं मेरे--!'

इतना कहकर अभिराम उठा खड़ा हुआ, और आनन्द का हाथ पकडकर खींचता हुआ बिम्बसार के कक्ष में आ पहुँचा।...

पर वहाँ तो मध्याह्न की धूप में तपकर दूर से आया हुआ, शुष्क-मुख ब्रह्मदत्त सामने खडा था, आनन्द उसे घूर-घूर कर देखने लगा। अभिराम ने कोई सहायक नट समझकर ब्रह्मदत्त से पूछा---'नटराज कहाँ है ?'

एक प्रकार का कंपन ब्रह्मदत्त के सूखे ओटों को हिलाने लगा, उसका मुँह बन्द हो गया। कुछ देर बाद एकाएक हँस पडा और बोला 'यँ...यँ...यँ.. याँ...यहाँ...हाँ ..'

अभिराम और आनन्द विस्फारित नेत्रों से ब्रह्मदत्त को देखने लगे। गूँगे का अभिनय करते हुए ब्रह्मदत्त ने हाथ और आँख के संकेतों से उन्हे समझाया कि बिम्बसार कही बाहर गया है, थोडी देर में आयेगा। इस नई मूर्ति को अभिराम कौतूहलपूर्वक देखने लगा।

इस डर से कि कहीं बात-चीत करने में पकड़ा न जाय, ब्रह्मदत्त को उसी समय गूँगे बनने की युक्ति सूझ गई थी। अभिराम उसे यों ही छोड़नेवाला न था, उसने कुछ सोचकर आनन्द का हाथ पकड़ा और एक रेशमाच्छादित आसनपर जा बैठा। ब्रह्मदत्तके चेहरे पर हवाइयाँ उडने लगीं। बिम्बसार प्रासाद में तो क्या नन्दीग्राम में भी नहीं था !

बिम्बसार तेज़ी से दौड़कर गङ्गा तट की टेकरी तक आ पहुँचा था। उसकी दृष्टि तट के उस पार जा पहुँची, देखते ही उसका मन बैठने लगा। जो दृश्य उसने देखा, उसे देखकर वह काँप गया। घोड़े से उछलकर वह नीचे आया, और चीखकर तट के उस ओर के वटवृक्ष की ओर दौड़ा।

वटवृक्ष के नीचे, राजगृह के वृद्ध महामात्य रक्त से लथपथ होकर पड़े थे; उनकी दाहिनी भुजा कटकर दूर पड़ी हुई थी। सजय और दूसरे योद्धा महामात्य के आस-पास खड़े थे, उनके शरीर रक्त की बूंदों से छिट गये थे। संजय, महामात्य के आहत कंधे से रक्तस्राव रोकने की व्यर्थ चेष्टा कर रहा था।

'यह किस दुष्ट की करतूत है? कौन है वह दैत्य?' बिम्बसार ने, आहत महामात्य के पास बैठते हुए चीखकर पूछा।

'कोई भी नही महाराज, कोई नहीं!....' महामात्य ने उत्तर दिया।

मरते समय भी धैर्यमय महामात्य को हँसते देखकर बिम्बसार का वक्ष फटने लगा। गरजकर वह बोल उठा—

'संजय, किस कापुरुष की तलवार ने महामात्य के कंधे को छुआ है?...'

'कापुरुष नही, महाराज, वीर कहिए, निर्भय कहिए! एक निर्भय लिच्छवी युवक की तलवार इस वृद्ध सैनिक के कंधे पर लगी है।...'

'लिच्छवी'...बिम्बसार ने दाँत भींचकर कहा—'पितृ तुल्य महामात्य! इस चमकते सूर्य के शपथ लेकर कहता हूँ कि...'

'महाराज...' महामात्य, बिम्बसार को रोकने के लिए, सिर उठाकर चीख पड़े,—'शांत हों, महाराज! मै जो कहूँ वही शपथ लेने की प्रार्थना करता हूँ... मै कहूँ वही....'

'आपकी क्या इच्छा है, वयोवृद्ध? मै उसे मरकर भी पूर्ण करूंगा!'

'मै अपने वीरमूर्ति कहाँ नहीं पहचानता?...मुझे आपके वचनो में अपने से भी अधिक विश्वास है। सब से पहिले एक काम करने की कृपा कीजिए; मेरी मृत्यु निकट है। नदी के सामने की ओर वैशाली की सीमा समाप्त होती है। मुझे वैशाली की पृथ्वी पर सुला दीजिए! संजय, मेरा कटा हुआ हाथ भी ले, ले। शीघ्रता कर!...'

बिम्बसार ने, क्षणभर भी विलंब किए बिना, महामात्य के मना करते हुए भी उन्हें अपने हाथों में उठाया, और संजय की सहायता से, नदी के उस पार एक वृक्ष के नीचे उन्हें लिटाया। उनकी शिराएँ टूटने लगी थी। बिम्बसार के हाथ को, दृढ़ता से अपने हाथ में लेकर भीष्मपितामह की तरह उन्होंने बोलना

प्रारम्भ किया— आजानबाहु! मुझे शीघ्र ही सब कुछ बता देना चाहिए—कुछ नामसझ लिच्छवियों ने, आशंकित होकर हम पर अचानक आक्रमण कर दिया; सब से प्रथम वार मैंने ही झेला, मेरा हाथ कट गया, किंतु मैंने सबों को घातकों का सामने करने से मना कर दिया। सभी मागधियों के आवेश को मैंने रोक दिया। जानते हैं, इसका परिणाम क्या हुआ? सौ से भी अधिक एक दूसरे को मार डालने को तत्पर लिच्छवियों और मागधियों का युद्ध रुक गया। शत्रु मुझे देखकर, शत्रुता छोड़कर चले गये। लिच्छवियों के सामने सब से पहिले मैं ही आया था महाराज! क्योंकि मैं वैशाली का हूँ। जब मेरा हाथ कटकर नीचे जा पड़ा तब आपके उस राजसंन्यासी मित्र गौतम बुद्ध के शब्द याद आये; उसमें मुझे सत्यता दिखाई दी। लिच्छवियों पर आक्रमण न करने में ही मुझे उस सत्य का साक्षात्कार हुआ। वही सत्य सुन लें महाराज! लिच्छवीगण वीर क्षत्रिय हैं; यदि आप उन पर शस्त्र न उठाएँ तो वे भी नहीं उठाएँगे। प्रेम करें तो वे लोग भी प्रेम करेंगे। यदि आप उनसे वर्षों पुरानी शत्रुता रखना छोड़ देंगे तो वे सम्पूर्ण रूप से आपके हो जाएँगे। महाराज, मेरे जीवन की दो ही प्रमुख आकांक्षाएँ थीं—मृत्यु से पहिले मागधियों और लिच्छवियों को एकत्रित देखूँ, और दूसरी यह कि अपनी इसी जन्मभूमि पर मेरे प्राण जाएँ! दूसरी आकांक्षा तो अभी पूरी हो रही है, पर पहली बात रह गई!...चमकते सूर्य की, इस गंगा की, इस वृद्ध की प्रामाणिक सेवा की शपथ लो, महाराज!—कि लिच्छवियों को प्रेम द्वारा जीतने का शक्ति भर प्रयास करेंगे!'...

महामात्य की नेत्र-ज्योति डूबती देखकर बिम्बसार अपनी शक्ति एकत्रित करके बोला—'वृद्ध, मैं वचन देता हूँ कि लिच्छवियों को प्रेम से जीतने का मैं सम्पूर्ण प्रयत्न करूँगा....आपकी जन्मभूमि को अपनी बनाने, और मेरे राज्य को लिच्छवियों का बनाने....'

किंतु बिम्बसार के वाक्य पूरा करने के पहिले ही, बिम्बसार की प्रतिज्ञा का पूर्वार्ध सुनकर पुलकित वृद्ध महामात्य की आत्मा परलोक के मार्ग को प्रयाण कर चुकी थी। द्रवित हृदय को वशीभूत करके बिम्बसार ने वृद्ध के सम्मान में पूज्य भाव से अपना सिर झुका दिया। एक हिचकी, चीख, थोड़ा क्रन्दन—

कुछ भी सुनाई नहीं दिया। पुण्यात्मा के शब्दों और महाराज के अंतिम वचन ने मागधियों को संयमित खड़ा रहने दिया था, वे आज्ञा और आज्ञा-पालन के महत्व को समझते थे। संजय ने आँसुओं के बहाते हुए भी हृदय को कठोर बनाया; महामात्य की वियुक्त भुजा और करवाल उनके पास रख दिये तब अन्य योद्धाओं को चिता तैयार करने की आज्ञा दी।

एक प्रहर में ही अग्निदेव ने महामात्य को भस्म कर दिया। चिता की गगन-गामी ज्वालाओं में बिम्बसार, वृद्ध का सस्मित मुख देखता रहा। आँसू की एक बूँद उसकी आँखों से ढुलक गई! तब वह धीरे-धीरे बोलने लगा—'मैं लिच्छवियों को जीतने का शक्ति भर प्रयत्न करूँगा....'

संजय और अन्य योद्धा नतमस्तक खड़े थे। लौटने में अत्यधिक विलंब हो जाने का ध्यान आते ही बिम्बसार ने एक बार अग्निशैया को अंतिम नमस्कार किया, संजय को तीन दिन बाद राजधानी लौट आने का वचन दिया और घोड़े पर जा बैठा।

घोड़ा आम्रपाली के प्रासाद की ओर दौड़ा जा रहा था। वृद्ध के 'प्रेम से जीतना' इन शब्दों ने उसके हृदय मे एक नए उत्साह का संचार किया था; उसे इस बात से नया मार्ग मिल गया था और इसीलिए वह शीघ्रता-पूर्वक प्रासाद की ओर दौड़ा जा रहा था।

प्रायः दो प्रहर तक अभिराम ने गूँगे ब्रह्मदत्त के साथ सिरपच्ची की; नटराज के बारे में, चुपके से, इस गूंगे के द्वारा सच्ची बातें जान लेनेका अभिराम ने लाख प्रयत्न किया पर ब्राह्मण नहीं बोला तो नहीं ही। अंत में थक कर अभिराम, आनन्द को साथ लेकर वहाँ से चला गया। उसके जाते ही वहाँ बिम्बसार ने प्रवेश किया। उसे देखते ही ब्रह्मदत्त की तालु से चिपकी जिह्वा कुछ हिली-डुली तथा घबराहट और मानसिक दुविधा से व्यथित ब्रह्मदत्त निचेष्ट होकर बिम्बसार के पैरों से लिपट गया।

ब्रह्मदत्त को महामात्य की मृत्यु के समाचार सुनकर कुछ भी आश्चर्य न हुआ। जब वह संजय के पास से आहत महामात्य के समाचार लेकर निकला था तभी उसे आभास हो चुका था कि महामात्य की अंतिम घड़ियाँ गिनी जा

रही है; फिर भी ब्रह्मदत्त भावाविष्ठ होकर कहीं कुछ कर न बैठे इसलिए बिम्बसार ने उसे शीघ्र ही वहाँ से जाने की आज्ञा दी और स्वयं एक आसन पर बैठ कर गहन विचारों में निमग्न हो गया।

उसी समय, आनन्द के शयन-गृह में, आशंकाओं के चक्र में पड़ कर आनन्द, अभिराम से प्रश्न पर प्रश्न पूछे जा रहा था।

'जिस पुरुष के पास ऐसे मूर्ख मनुष्य भी हों, उसे कैसा समझना चाहिए?'

'महान धूर्त बेटा, यह नट ऐसा वैसा नहीं है, और राजा होगा, तब भी साधारण नहीं होगा!'

'मुझे शंका हो रही है दादा, मैं बहुत आशंकित हो रहा हूँ!'

'होगा, आशंकित क्यों न होगा? तू मनुष्यों को पहिचानना कब सीखेगा आनन्द?'

'दादा, यह कोई रहस्यमय राजदूत मालूम होता है!'

'क्यों न हो?'

'कोई भेदिया है'

'होने दे!'

'दादा मैं विनोद नहीं कर रहा हूँ, इसे शीघ्र निकाल देना चाहिए, यदि यह अपना भेद नहीं खोले तो!'

'तब ही न?....ठीक, यदि यह शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेमी होगा तो तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालने पर भी यहाँ से नहीं हटेगा!'

'दादा मैं, सचमुच भयभीत हो रहा हूँ, पाली में कल्पनातीत परिवर्तन दिखाई देता है! कहाँ यह नदीग्राम की पाली और कहाँ वह वैशाली की पाली थी! दादा, सूर्य चन्द्रमा बन गया, और आग पानी हो गया!...यह परदेशी विचित्र है!'

'परदेशी, सचमुच अद्भुत है, नहीं तो तुम्हीं सब लोग मानते थे कि पाली के मन को मनाना, हिमालय को पिघलाने जैसा असम्भव है!'

'परदेशी का स्थान ज्ञात होने पर ही दूसरी बात की जा सकती है दादा! मैं कल प्रातःकाल ही पाली को यहाँ से ले जाता हूँ!'

'नहीं...' किसी का निषेध सुनाई दिया, आनन्द ने चौंक कर द्वार की ओर देखा वहाँ नतमस्तक रेवा खड़ी थी !

'रेवा ?...' अभिराम ने कहा, 'आ, भीतर आ !...'नहीं' क्यों कहती है ? इतनी रात में यहाँ....सब कुशलक्षेम तो है न ?'

'नहीं, दादा ! पिताजी ने अकेले आनन्दराज को वैशाली चले आने की आज्ञा दी है ! देवी को यहीं रहने देने को कहा है !...'

'क्या हुआ रेवा ! कोई अशुभ घटना घटी है क्या ?...'

आनन्द उद्विग्न हो कर प्रश्न पर प्रश्न करने लगा। रेवा ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाकर 'हाँ' कहा और तब पाली के लिए कट मरने को तैयार लिच्छवी राजपुत्रों, अभय के आश्रय में प्रोत्साहित लिच्छवी युवकों और अभय द्वारा संथागार में आमन्त्रित लिच्छवी परिषद आदि की सब घटनाएँ उसने संक्षेप में समझा दीं। उसने महानाम की साग्रह सूचना भी कही जिसमें पाली को नंदीग्राम में ही सम्भल कर रहने देने की बात थी !

अभिराम और आनन्द एक दूसरे को देखने लगे। रेवा सन्देश सुनाने के बाद पाली के शयन-गृह की ओर चली गई। अभिराम की इच्छा हुई कि वे भी आनन्द के साथ महानाम से मिलने वैशाली चले जाएँ—किसी महान आपत्ति के आए बिना महानाम कभी ऐसी आज्ञा नहीं करते। किन्तु पाली की रक्षा के लिए आनन्द ने उसे रोक दिया।

उसी समय बिम्बसार ने कक्ष में प्रवेश किया; दोनों ने चौंक कर उसकी ओर देखा। धीरे-धीरे बिम्बसार आनन्द के पास आकर बैठ गया और गंभीर स्वर में बोला—'यजमान, तुम लिच्छवी हो, पराक्रमी हो! वचन दो कि जो कुछ मैं कहूँगा उसे तुम शांतिपूर्वक सुन लोगे! और मेरी बातें सुनने के बाद यदि तुम्हें तलवार उठाना आवश्यक ही हो तो आघात करने के पहले और बाद में इतना अवश्य याद रखना कि मैं तुम्हारे शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम में आसक्त होकर, तुम्हें अपना बनाने की अकांक्षा रखने वाला परदेशी था!'

इतना कहकर उसने झट द्वार बन्द कर दिए। मुँह पर चतुराई से चिपकाए हुए बाल और रंग आदि को अलग किया और दोनों के निकट आ कर, दोनों के हाथ अपने हाथ में लेकर बोलना प्रारम्भ किया—'मैं कौन हूँ, यही कहने यहाँ

आया हूँ !'

आनन्द और अभिराम विस्मित हो, उसकी ओर देखते ही रह गए।

(१६)

स्थानीय और लिच्छवी-प्रदेश के अन्य स्थानों से आए हुए सभासदों से वैशाली का संथागार उमड़ा जा रहा था। इसी महीने में लगातार तीन बार परिषद की सभा हो जाने के कारण इस बार कुछ अधिक चंचलता दिखाई दे रही थी। प्रत्येक सभासद, और प्रायः सभी प्रेक्षक जानते थे कि आज का प्रस्ताव पाली के विषय में रखा जाएगा, किन्तु यह बात बहुत कम लोग जानते थे कि इस प्रस्ताव के पीछे अभय का कूटनीतिक हाथ भी है; परिणाम स्वरूप लिच्छवी नेताओं ने पाली के विषय में अनेक अफवाहें उड़ाना प्रारम्भ किया जिससे प्रत्येक व्यक्ति कौतुहलपूर्वक किसी भयंकर उल्कापात की प्रतिक्षा करने लगा।

युद्धप्रिय लिच्छवियों के लिए यह बात स्वाभाविक थी कि हठपूर्वक किसी वस्तु की इच्छा करने पर, उसे प्राण देकर या प्राण लेकर प्राप्त करें; अपनी इस हठ के कारण वे कभी-कभी अपनी शक्ति की सीमा भी लाँघ जाते थे। आज भी संथागार में ऐसे एक दो नहीं पांच सौ लिच्छवी युवक थे, जिनके हृदय की वह ज्वाला अभय के प्रज्वलित करने पर, अब ज़ोरों से भड़क उठी थी—प्रत्येक युवक पाली के लिए अपने प्राण देने को प्रस्तुत था! उन बुद्धिशून्य भावुकों को अभय ने, अपने जन्मसिद्ध अधिकारों के लिए, और स्वयं महानाम को ललकारने के लिए, इस चालाकी से प्रोत्साहित किया था कि अब उन्हें समझाने के लिए यदि अभय भी जाता तो वे उससे द्वन्द्व करने को तैयार हो जाते। संथागार में, एक सुन्दरी के लिए लिच्छवियों का लड़ मरना कोई नई बात न थी, आज से तीस वर्ष पूर्व अभय ने स्वयं, वर्तमान देश नर्तकी रेणुका के लिए परिषद का विरोध किया था, और जीता भी वही।...आज भी उसीकी विजय थी।

चित्रा नक्षत्र के तीव्र उत्ताप ने युवकों को तपा दिया था, इसलिए सभासदों में आम्र, जामुन और द्राक्ष आदि के आसव वितरित किए जाने लगे।

संथागार ठसाठस भर चुका था, केवल महानाम की देरी थी; और इसी विषय को लेकर एक ओर युवक, तथा दूसरी ओर वृद्ध लोग तरह-तरह के तर्क

वितर्क कर रहे थे।...वहाँ, उन सभासदों में कई ऐसे भी व्यक्ति थे जिनके हृदय में इस प्रस्ताव को लेकर, दुःख था। चाहे महानाम से इन लोगों का किसी दूसरे विषय में मतभेद हो पर इतना तो निश्चित था कि महानाम की शूरता, नीति और न्यायपरायणता के आगे सबों के मस्तक झुक जाते थे; इन बातों में उनके शत्रु भी उनकी प्रशंसा करते थे। एक आदर्श लिच्छवी का नाम लेने पर सारी वैशाली की आँखें उन्हीं की ओर जा लगती थीं। उन्हीं वैशाली के देशनेता की पुत्री का भविष्य आज मंथागार में निर्मित होने जा रहा था; उसीके निर्णय के लिए आज यहाँ राजा उपराजा और गण एकत्रित हुए थे। यह एक प्रबल मानसिक संघर्ष था जिसमें घबराहट अधिक और दुःख गहरा होने पर भी लज्जा बहुत कम थी।

'सभापति अभी तक पधारे नहीं!' एक युवक ने संकेत किया।

'आते होंगे, आयेंगे नहीं तो जायँगे कहाँ?'

'यह तो पुत्री के जीवन का प्रश्न है भाई।'

'जैसे मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं!'

'तुझे कैसे मालूम होगा प्रद्योत! तू तो कल ही पाली से विवाह करने को तैयार हुआ है! पुत्री के पिता की मनोवेदना तू नहीं समझ सकता!'

'अम्बट्ठ सच कहता है!' तीसरे ने कहा; 'हम तो पति बनने की कामना करके यहाँ आये हैं, पिता बनने नहीं!'

'मालूम होता है सभापति नहीं आयेंगे!'

'मुझे लगता है तू सूर्यदेव के पश्चिम में निकलने की बात कह रहा है।'

'अरे रहने भी दे! उनके नहीं आने से क्या परिषद् यों ही उठ जायेगी? सभी के एकत्रित होने पर उसे कुछ करके ही उठना चाहिए नहीं तो देश को युद्ध, अकाल या किसी भयंकर कष्ट का सामना करना होगा!'

'अम्बट्ठ सच कहता है, आख़िर बात तो पाली की ही है न! निर्णय करने का काम हम सभासदों का है, और प्रवेणी-पुस्तक की आज्ञानुसार अंतिम निर्णय करने के लिए अभयराज भी यहीं उपस्थित हैं! सभापति भले ही न आएँ!'

'बसु ! मुँह सँभालकर बोल ! पाली किसी के बाप की नहीं है ! अभयराज ने ज़रा भी आगा पीछा किया तो मै उसे भी कच्चा चबा जाऊँगा, मै इसलिए यहाँ आया हूँ, समझा !' सुधीर चिल्लाया। सदा की तरह, वह एक-एक शब्द चबा चबा कर, अंतिम टीका करनेवाले बसु को ललकार रहा था ! पाली की बात सुनकर, सचमुच उसका मुँह भीषण हो रहा था। उसी समय महानाम आते दिखाई दिये; सभासद और प्रेक्षक उनकी जयघोषणा करके स्वागत के लिए खडे हो गये।

सभापति, बिना किसी ओर देखे, नतशिर अपने स्थान पर बैठ गये। सभा मे सर्वत्र शांति फैल गई। सब से पहले प्रस्ताव रखने का काम नगरश्रेष्ठी का था किंतु वह तो शातिपूर्वक, दृष्टि नीची किये बैठा था। अपने हाथो से देवतुल्य वयोवृद्ध सभापति की पुत्री का सत्यानाश प्रारम्भ करने के लिए वह तैयार न था; उसने यह पाप महाजेट्ठक के सिर डाला। चतुर महाजेट्ठक ने संस्थाध्यक्ष से प्रस्ताव रखने के लिए कहा। संस्थाध्यक्ष ने यह भार शुल्काध्यक्ष को, शुल्काध्यक्ष ने सुराध्यक्ष को, और सुराध्यक्ष ने गुनाध्यक्ष को सौपा। किन्तु लिच्छवियो मे हृदयहीनता के लिए प्रसिद्ध गुनाध्यक्ष वीरभद्र भी यह प्रस्ताव सभा के सम्मुख रखने का साहस न कर सका। महानाम शातिपूर्वक प्रस्ताव की प्रतीक्षा कर रहे थे; प्रत्येक के मन की दुविधा और संकोच को वे समझते थे। धीरे-धीरे लोगो की गुनगुनाहट ने सभाकी वह नीरव शांति भंग की। तब भी प्रस्ताव सम्मुख रखने के लिए कोई खडा न हुआ था। अंत में स्वयं महानाम खड़े हुए; सभा जैसे भयभीत हो गई। वे गंभीर स्वर मे बोले—'बन्धुओं, बीती तीन दशाब्दियों में, मेरे लिए यह पहिला ही अवसर है जब मैं देख रहा हूँ कि आज सभा के सम्मुख प्रस्ताव रखने में लिच्छवी गणतंत्र इतना विलम्ब कर रहा है। लिच्छवी वीरो ! संसार भर में हमारा गणतन्त्र अद्वितीय माना जाता है; लिच्छवी संथागार, प्रत्येक सामूहिक न्याय का सत्कार करता आया है। हमारे संथागार ने कभी एक व्यक्ति की आज्ञा इच्छा अथवा शक्ति को अपने में स्थान नही दिया और न देगा। कुलीन वीरो ! यह याद रहे कि यही एक ऐसा संथागार है जिसमें आने के बाद, भाई भाई को, शिष्य गुरु को, पुत्र पिता को और प्रजा राजा को आज्ञा में अपने से ऊँचा नही मानती ! लिच्छवी संथागार में पैर रखने से पहिले प्रत्येक लिच्छवी अपनी वय,

सत्ता और महत्त्व को संथागार के बाहर रख आता है। यहाँ तो सभी लिच्छवी है, एक है, समान है इसलिए यहाँ का प्रत्येक सभासद निडर, सत्यवादी, पक्षपातरहित और मृत्यु से भी टक्कर लेने वाला होता है ! यहाँ के सभी सभासद वैसे ही आदर्श लिच्छवी है, फिर भी आज लिच्छवी संथागार शांत क्यों है, कोई इसका उत्तर देगा ? क्या निडर लिच्छवी किसी बात से भयभीत हो गया ? या मृत्यु से लोहा लेने वाले लिच्छवी को आज मैं कायर होता देख रहा हूँ !

'महारथियो और वयोवृद्धों ! शपथ है तुम्हें, जो निरीभावुकता के वश होकर तुम अपना कर्त्तव्य भुला बैठो। वैशाली के इस अद्वितीय संथागार में किसी लिच्छवी के व्यक्तिगत जीवन अथवा सुख की अपेक्षा समस्त लिच्छवियों के लाभ के प्रश्न को सदा से अधिक महत्व दिया गया है, और भविष्य में दिया जाएगा ! यदि परिषद अनुमति दे तो मेरी आज्ञा है कि प्रस्ताव शीघ्रातिशीघ्र सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाय !'

सभा बिल्कुल शांत थी। नियमानुसार सबों ने मौन रह कर प्रस्ताव रखने के लिए अपनी-अपनी अनुमति दे दी, किसी ने भी विरोध न किया। अब तो प्रस्ताव रखने का काम नगरश्रेष्ठी के लिए अनिवार्य हो गया। वह अपनी तालु से चिपकी हुई जीभ को हिलाने का प्रयत्न करने लगा।....इतने में अभयराज खड़ा हुआ, जिस से श्रेष्ठी के जी में आया ! अभयराज, युवक सभासदों की ओर एक दृष्टि डाल कर कहने लगा—'परिषद के माननीय सभासद आज्ञा दें तो मैं आज का प्रस्ताव कह सुनाऊँ...।'

'नहीं, नहीं, नहीं !' दूर से किसी की पुकार सुनाई दी; वह सुधीर था। वह अभयराज से, यौवन-सुलभ कुछ और कड़वी बातें कहता उसके पहले चिरंजीव ने बलात् उसका मुँह बंद कर दिया।

'युवक ! केवल संथागार का प्रतिनिधि ही समर्थन या विरोध कर सकता है, तू प्रेक्षक है !' अभय ने हँसते-हँसते सुधीर को सुनाकर, जैसे कोई बात नहीं हुई हो, बोला—

'तो परिषद मुझे अनुमति देती है ?...'

किसी ने कुछ न कहा; अर्थात् परिषद ने अनुमति दे दी।

'सभापति और लिच्छवी गणतंत्र !' अभय ने संथागार के नियमानुसार सभापति महानाम को वन्दन करके कहना शुरू किया—'आपकी आज्ञानुसार मैं सब के सम्मुख यह प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूँ ! इस वर्ष के नगर-महोत्सव और वसंतोत्सव में रूप और गुण में पाली ने सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है। सभापति, आपकी इस सर्वगुण-सम्पन्न सुन्दरी पुत्री आम्रपाली के लिए देश में अनेक वितंडावाद उत्पन्न हो रहे हैं, कितने ही युवक उसे पाने के लिए अपने प्राणों से हाथ धो बैठे हैं। इस प्रकृति-प्रदत्त असीम सौंदर्य ने लिच्छवी युवकों में ईर्ष्या, अनैक्य और उन्माद का प्रादुर्भाव किया है। आज की इस परिषद में भी सैकड़ों युवक पाली से विवाह करने को उत्सुक हैं और उनमें परस्पर शत्रुता और कलह की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी है। लिच्छवियों की एकता और देश-प्रेम भय और आतंक के झूले में झूल रहे हैं। देश की इस भयंकर परिस्थित के विषय में आज की परिषद से मेरी प्रार्थना है कि वह अपना मत देकर इस समस्या का अंतिम निर्णय कर दे !'

इतना कह कर अभय इस विषय में निरपेक्ष और निर्लिप्त-सा होकर अपने आसन पर बैठ गया। प्रस्ताव सुन कर सभासदों के श्वासोच्छ्वास जोरों से चलने लगे; इस विषय में और विवाद होने की अब बहुत कम संभावना थी। सभासद केवल सभापति का ही वक्तव्य सुनने की आतुरता से प्रतीक्षा करने लगे, क्योंकि प्रस्ताव का विषय प्रायः सभी को अवगत था। अभय तथा उसके अनुगामियों का विश्वास था कि इतनी देर में व्यवहार-कुशल महानाम ने पाली के लिए अवश्य कोई-न-कोई मार्ग ढूंढ़ निकाला होगा। इधर अभय के सिखाकर तैयार किये हुए युवकों में से बहुतों की आंतरिक इच्छा थी कि पाली का प्रश्न यों ही बिना किसी निर्णय के उड़ जाये, जिस से उन्हें पाली से किसी भी तरह विवाह करने की संधि मिले ! ....किंतु एक प्रकार की कठोरता महानाम के मुख पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी; उन्होंने खड़े होकर बोलना प्रारम्भ किया—

'यह बात परिषद को ज्ञात है कि किसी भी एक लिच्छवी पुरुष के कारण यदि अनेक लिच्छवीगण एकता और साम्य भूल कर एक दूसरे से द्वेष

करने लगें तो उस पुरुष को मार डालना चाहिए, और किसी एक स्त्री के सौन्दर्य के कारण ऐसा कुछ हो तो उस सुन्दरी को स्वदेश के लिए अपने कौमार्य का बलिदान करके नर्तकी बन जाना चाहिए ! पाली को देश-नर्तकी बनना होगा ! ....मैं परिषद से प्रार्थना करता हूँ, परिषद अपनी अनुमति दे !'

इस बार सभा पूर्ववत् शांत न रही । परिषद के दोनों ओर से विरोधी स्वर सुनाई दिये; प्रत्येक युवक सभासद पाली से ब्याहने के लिए खुले शब्दों मे चिल्लाने लगा । इस अव्यवस्थित विरोध के कारण प्रौढ़ पुरुष और अधिक चिढ़ गये । युवकों और उनमें होनेवाला वादविवाद उग्र स्वरूप धारण करने लगा ! तब महानाम ने सबों को शांत किया, और सत्तापूर्ण स्वर में नगरश्रेष्ठी को प्रवेणी-पुस्तक पढ़ने की आज्ञा दी । नगरश्रेष्ठी डगमगाते पैरों से, सभा के बीचोंबीच रत्नजटित चौकी पर सुनहरी जाली में लपेटे हुए ताड़पत्रों वाली प्रवेणी-पुस्तक के पास पहुँचा; काँपती अंगुलियों से ताड़पत्र उठाया और ऊँचे नीचे स्वर में पढ़ना शुरू किया । पूरी सभा स्तब्ध हो गई । नगरश्रेष्ठी बोला—'देववाणी अपने चतुर्थ खंड की नवमी ऋचा में बताती है...और हे सशक्त प्रजा, तुम में यदि कोई कुमारी अति सुन्दरी हो कि जिसका सौंदर्य तुम्हारे ही बंधुओं में परस्पर द्वेष प्रेरित करे; जिसके कारण तुम्हारे युवक एक दूसरे के प्राण लेने को प्रस्तुत हो जाएँ उसका विवाह नहीं करना चाहिए; उसे देशनिकाला भी न दे क्योंकि लिच्छवी कन्या, लिच्छवियों में जन्म लेकर लिच्छवियों में ही मृत्यु को प्राप्त होती है। स्त्री की हत्या करना निवीर्य पुरुष का कार्य है, इसलिए उस सुन्दरी कुमारी के सौन्दर्य का उपयोग देशसेवा के लिए ले ! वह कुमारी विवाह न करे; द्वेषपूर्वक लड़ने-वालों में प्रेम उत्पन्न करे और स्वदेशहित प्राणोत्सर्ग करने वाले लिच्छवी को विश्राम और आनन्द प्रदान करने के लिए नृत्य, संगीत इत्यादि कलाओं मे पारंगत हो, और उन कलाओं से पुरुषों को आनंदित करके उन्हें रण-क्षेत्र में जाने के लिए प्रोत्साहित करे ! प्रजा उस स्त्री के लिए सम्मान प्रदर्शित करे, क्योंकि शक्तिशाली प्रजा के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले पुरुष की अपेक्षा उस रूपकुमारी का बलिदान उच्चतर है !' नगरश्रेष्ठी तोते की तरह

यह पाठ पढ़कर अपने आसन पर जा बैठा। संथागार में पुनः विरोध का स्वर सुनाई देने लगा; कोई जोरों से चिल्लाया—'देखूँ तो सही, पाली को कौन हाथ लगाता है !'....यह सुधीर की चीख थी। एक मित्र ने फिर उसका मुँह बन्द किया। सभा में बैठे हुए चिरंजीव ने सुधीर की ओर ध्यान न दिया, आज वही पाली का कट्टर शत्रु था।

सबों को पूर्ववत् शांत होते देखकर, महानाम स्वयं खड़े हुए। अभय सूक्ष्म दृष्टि से उनकी ओर देख रहा था, किन्तु महानाम का ध्यान उनकी ओर नहीं था। सदा की तरह शांत स्वर में उन्होंने बोलना प्रारंभ किया; उनके स्वर में न कम्पन था, न निर्बलता और न द्वेष ही। सभा निस्तब्ध थी।

'माननीय सभासदों, इस संथागार के इतिहास में आज तक किसी सभापति के सम्मुख ऐसा प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए मेरी एक ही प्रार्थना है कि पाली मेरी पुत्री होनें के कारण यदि कोई सभासद अपना सच्चा मत व्यक्त करने में हिचकिचाएगा तो वह अपने कर्त्तव्य से च्युत होगा ! और जो लिच्छवी कर्त्तव्यच्युत हो जाये, उसमें लिच्छवीरक्त होगा यह बात मैं नहीं मानता ! बंधुओ, हमारे लिए प्रवेणी-पुस्तक ही अंतिम निर्णय है। यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि आप सबों को यह प्रस्ताव मान्य नहीं। मेरी प्रार्थना है कि शलाका द्वारा परिषद का मत लिया जाय; यदि परिषद मत देगी कि आम्रपाली ही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है तो आम्रपाली को देश-नर्तकी बनना होगा !'

'नहीं...नहीं !' सुधीर की एक कारुणिक पुकार सुनाई दी; इस बार उसके पीछे खड़े हुए मित्र ने केवल उसका मुँह ही बंद नहीं किया बल्कि चिरंजीव का संकेत पाकर उसे एक थप्पड़ भी लगा दी।

नगरश्रेष्ठी के पैर फिर ढीले हुए, अभयराज उसकी ओर एकटक देख रहा था जिससे उसे कुछ दृढ़ता मिली। उसने शलाकाएँ वितरित करने का प्रबन्ध किया। शलाकाओं के वितरण और मतदान के रिक्त समय में सभा शांतिपूर्वक कई प्रकार के तर्कवितर्क करती रही। अन्त मे नगरश्रेष्ठी ने पसीने से लथपथ होकर बोलना प्रारम्भ किया—'पूज्य सभापति और लिच्छवी गण-संघ की अाज्ञानुसार सब सभासद परिषद का मत सुनने की कृपा करें—

'परिषद...परिषद सर्वानुमति से आम्रपाली को सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानती है।'

'धन्य परिषद! धन्य हैं लिच्छवीगण और उनका गणतन्त्र!!' महानाम ने गंभीर शांति का अनुभव करते हुए ऊँचे स्वर में कहा—'लिच्छवी संथागार में ऐसा ही न्याय होना चाहिए! आपने मुझे देखे बिना, इन पत्थर की शलाकाओं द्वारा अपने-अपने हृदय की सच्ची बात सभा के सम्मुख रख दी। आप सर्वानुमति से स्वीकार करते हैं कि पाली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी लिच्छवी कन्या है। अब मैं प्रवेणी-पुस्तक के आदेशानुसार यह प्रस्ताव रखता हूँ कि पाली आगामी पूर्णिमा से देशनर्तकी बन जाय! परिषद को यह प्रस्ताव मान्य हो!'

पूरी सभा में सनसनी फैल गई। सब से बड़ा आघात तो अभय को लगा; उसे विश्वास था कि महानाम किसी भी तरह पालीको बचा लेंगे, किंतु महानामकी न्यायप्रियता देखकर वह भी स्तब्ध रह गया।....किन्तु वृद्ध सभासदों की आँखे आँसुओं से भर गईं; पुत्रियों के पिताओं के हृदय पर वज्राघात हुआ। पाली के लिए मरमिटने वाले युवक जो अभय की बातों से उन्मत्त हो उठे थे, दिग्मूढ़ होकर शांत बैठे रहे।

कुछ समय सभा बिलकुल शांत रही, कोई भी न बोला। प्रत्येक सभासद का सिर, महानाम की कर्त्तव्य-भावना और आत्मसमर्पण के सम्मुख झुक गया। परिषद पूर्ववत् शांत थी।

परिषद ने निस्तब्ध रहकर प्रस्ताव मान्य किया; सभापति ने उसी शांतिमय स्वरमें कहा—'किसीका भी विरोध नहीं है; पूजनीय परिषद! वंदनीय परिषदकी अनुमति से मैं लिच्छवी गणतंत्र के सम्मुख नगर, प्रांत, ग्राम और अन्यत्रवासी लिच्छवी प्रजाकी सूचनानिमित्त आज्ञा देता हूँ कि आगामी पूर्णिमाको आम्रपाली देशनर्तकी बनेगी! वैशाली की जय हो! लिच्छवियों की जय हो!' साथ ही साथ सभामंडप में गगनभेदी जयजयकार हुआ—

'महानाम सिंहराज की जय! सर्वश्रेष्ठ लिच्छवी की जय! लिच्छवी गणतंत्र की जय! गणतंत्र अमर हो!'

इसी जय जयकार के बीच सभा विसर्जित हुई और महानाम सभासदों का

नमस्कार लेते हुए धीरे-धीरे संथागार से बाहर निकले। बाहर आते ही यकायक सुधीर उनके पास झपट आया; उसकी मुखमुद्रा भीषण और आँखें लाल थीं; उन्माद उसके चेहरे से बरस रहा था। महानाम के सम्मुख आकर चिल्लाया—

'निर्दय ! मूर्ख वृद्ध, थू है तुझपर, थू !!'

सुधीर ने पशु बनकर उस श्रेष्ठ लिच्छवी के मुँह पर थूक दिया। वृद्ध महानाम रुके; सुधीर की ओर मुस्कान भरी दृष्टि डालकर उन्होंने हाथों से मुँह पोंछ लिया। सुधीर वह दृष्टि न झेल सका; मुँह फेर लिया। इतने में किसी ने सुधीर का मुँह पकड़कर उसे ज़ोरों का झटका दिया; महानाम ने देखा कि वह आनन्द था; आँसूभरी आँखों से उन्होंने पूछा—तू आ गया आनन्द ?—

'हाँ पिताजी, परिषद प्रारम्भ होते ही मैं आ गया था !'

पिता-पुत्र लिच्छवी नेताओं के बीच खड़े रहकर केवल इतना ही बोल सके थे। दोनों में कोई भी आगे न बोल सका। दोनों के हृदय असह्य वेदना से व्यथित थे। आनन्द का हृदय कट रहा था, किन्तु वृद्ध का हृदय कट चुका था। आनन्द ने पिता को सहारा देकर रथ में बिठाया।

महानाम के मुँहपर थूकनेके बाद भी सुधीर चिल्ला रहा था। चिरंजीव ने उसे अपनी लोह-भुजाओं मे जकड़ रखा फिर भी वह हँस रहा था। उसने अपना मस्तिष्क पूर्णरूपेण गँवा दिया था। इसी बीच भीड़ में से. मैले वस्त्रोंवाला दूसरा युवक निकल आया और सुधीर के सामने आकर चिल्लाया, हँसकर कहने लगा—'पागल, मूर्ख, अरे मैं पाली हूँ, मैं !' सुधीर की ओर देखकर वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा; वह रुदनमूर्ति भट्टी था।

महानाम का रथ चलने लगा; उसके पीछे जयजयकार और उस जय-जयकारों को दबाती हुई सुधीर की चीख और भट्टी का हास्य सुनाई दे रहे थे.... उन दोनों पागलों के पीछे पराजित, अपमानित, तिरस्कृत अभय खड़ा था; जिसके मुख पर अभी भी वही विषमय हास्य था।

शयन-गृह में पहुँचने तक महानाम ने अद्भुत धैर्य रखा। किन्तु शय्या पर बैठते ही थकावट, तीव्र मानसिक व्यथा, दुःख और घृणा की तीव्र भावना से व्यथित होकर वे गिर पड़े। आनन्द ने परिषद की सम्पूर्ण कार्यवाही अपनी

आँखों से देखी थी। लिच्छवियों में उसकी जोड़ के योद्धा इने गिने ही थे, फिर भी वह वहाँ मौन ही रहा; उस समय उसने अद्‌भुत सहनशीलता दिखाई थी। अनेक मान्यताओं में पिता से विरुद्ध होते हुए भी उसने पिता के सिखाए हुए अनुशासन और आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया। आज वह स्वयं पिता के कष्ट का अनुभव कर रहा था। महानाम सोच रहे थे—यह उनकी विजय थी या पराजय ?

मौरपंख से हवा करते हुए आनन्द ने धीरे से कहा—'पिताजी!' महानाम ने आँखें बन्द ही रखी, आनन्द का हाथ अपने वक्ष पर रख कर कहा—'बेटा, कह कि मैंने पाली को मार डाला!'

'आज आपने वैशाली को नवजीवन दिया है, आज वैशाली गौरवमयी होकर सारे संसार से कहेगी कि हँसते-हँसते पुत्री का बलिदान कर देनेवाला पिता केवल लिच्छवी ही उत्पन्न कर सकते हैं! किन्तु पिताजी....'

'क्या बात है बेटा ?'

'कुछ नहीं!'

'तुझे अपने पिता की शपथ है, बोल।'

'पिताजी, अविनय के लिए क्षमा चाहता हूँ...' आनन्द इतना बोल कर रुक गया, मानों मन में उठते हुए तूफ़ान को शांत करने का प्रयास कर रहा हो। अन्तमें मन की बात बहुत छुपाने पर भी बाहर निकलही आई, बोला—'पिताजी सामुदायिक आज्ञाओं को मानने में ही लिच्छवियों का गौरव और हमारे देश का कल्याण है किन्तु....किन्तु परिषद ने जो आज्ञा मेरी बहिन के लिए दी, वह अनुचित है, अनीतिपूर्ण है, धर्म के विरुद्ध है। मैं देश के लिए बलिदान दे देने में सहमत हूँ पर मेरी बहिन को मेरी ही आँखों के आगे किसी अपराध के बिना वारांगना होना मैं नहीं देख सकता, पिताजी!....'

'बस, आनन्द! बस, बेटा! जिस दिन लिच्छवी के जीवन से न्याय, निस्पृहता और पूर्वजोनुपालित कर्त्तव्य नष्ट हो जाएगा, उस दिन यह वैशाली नगरी रसातल को चली जाएगी। संथागार में जो कुछ हुआ, और परिषद ने जो कुछ किया वह प्रत्येक लिच्छवी ने लिच्छवियों के लिए किया है और वही निर्णय प्रत्येक लिच्छवियों को निर्विरोध रूप से शिरोधार्य है। परम पवित्र प्रवेणी-

नमस्कार लेते हुए धीरे-धीरे संथागार से बाहर निकले। बाहर आते ही यकायक सुधीर उनके पास झपट आया; उसकी मुखमुद्रा भीषण और आँखें लाल थीं; उन्माद उसके चेहरे से बरस रहा था। महानाम के सम्मुख आकर चिल्लाया—

'निर्दय ! मूर्ख वृद्ध, थू है तुझपर, थू !!'

सुधीर ने पशु बनकर उस श्रेष्ठ लिच्छवी के मुँह पर थूक दिया। वृद्ध महानाम रुके; सुधीर की ओर मुस्कान भरी दृष्टि डालकर उन्होंने हाथों से मुँह पोंछ लिया। सुधीर वह दृष्टि न झेल सका; मुँह फेर लिया। इतने में किसी ने सुधीर का मुँह पकड़कर उसे जोरों का झटका दिया; महानाम ने देखा कि वह आनन्द था; आँसूभरी आँखों से उन्होंने पूछा—तू आ गया आनन्द ?—

'हाँ पिताजी, परिषद प्रारम्भ होते ही मैं आ गया था !'

पिता-पुत्र लिच्छवी नेताओं के बीच खड़े रहकर केवल इतना ही बोल सके थे। दोनों में कोई भी आगे न बोल सका। दोनों के हृदय असह्य वेदना से व्यथित थे। आनन्द का हृदय कट रहा था, किन्तु वृद्ध का हृदय कट चुका था। आनन्द ने पिता को सहारा देकर रथ में बिठाया।

महानाम के मुँहपर थूकनेके बाद भी सुधीर चिल्ला रहा था। चिरंजीव ने उसे अपनी लोह-भुजाओं मे जकड़ रखा फिर भी वह हँस रहा था। उसने अपना मस्तिष्क पूर्णरूपेण गँवा दिया था। इसी बीच भीड़ में से. मैले वस्त्रोंवाला दूसरा युवक निकल आया और सुधीर के सामने आकर चिल्लाया, हँसकर कहने लगा—'पागल, मूर्ख, अरे मैं पागी हूँ, मैं !' सुधीर की ओर देखकर वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा; वह रुदनमूर्ति भट्टी था।

महानाम का रथ चलने लगा; उसके पीछे जयजयकार और उस जय-जयकारों को दबाती हुई सुधीर की चीख और भट्टी का हास्य सुनाई दे रहे थे.... उन दोनों पागलो के पीछे पराजित, अपमानित, तिरस्कृत अभय खड़ा था: जिसके मुख पर अभी भी वही विषमय हास्य था।

शयन-गृह मे पहुँचने तक महानाम ने अद्भुत धैर्य रखा। किन्तु शय्या पर बैठते ही थकावट, तीव्र मानसिक व्यथा, दुःख और घृणा की तीव्र भावना से व्यथित होकर वे गिर पड़े। आनन्द ने परिषद की सम्पूर्ण कार्यवाही अपनी

आँखों से देखी थी। लिच्छवियों में उसकी जोड़ के योद्धा इने गिने ही थे, फिर भी वह वहाँ मौन ही रहा; उस समय उसने अद्‌भुत सहनशीलता दिखाई थी। अनेक मान्यताओं में पिता से विरुद्ध होते हुए भी उसने पिता के सिखाए हुए अनुशासन और आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया। आज वह स्वयं पिता के कष्ट का अनुभव कर रहा था। महानाम सोच रहे थे—यह उनकी विजय थी या पराजय ?

मोरपंख से हवा करते हुए आनन्द ने धीरे से कहा—'पिताजी !' महानाम ने आँखें बन्द ही रखी, आनन्द का हाथ अपने वक्ष पर रख कर कहा—'बेटा, कह कि मैंने पाली को मार डाला !'

'आज आपने वैशाली को नवजीवन दिया है, आज वैशाली गौरवमयी होकर सारे संसार से कहेगी कि हँसते-हँसते पुत्री का बलिदान कर देनेवाला पिता केवल लिच्छवी ही उत्पन्न कर सकते हैं! किन्तु पिताजी....'

'क्या बात है बेटा ?'

'कुछ नहीं !'

'तुझे अपने पिता की शपथ है, बोल।'

'पिताजी, अविनय के लिए क्षमा चाहता हूँ...' आनन्द इतना बोल कर रुक गया, मानों मन में उठते हुए तूफ़ान को शांत करने का प्रयास कर रहा हो। अन्तमें मन की बात बहुत छुपाने पर भी बाहर निकलही आई, बोला—'पिताजी सामुदायिक आज्ञाओं को मानने में ही लिच्छवियों का गौरव और हमारे देश का कल्याण है किन्तु....किन्तु परिषद ने जो आज्ञा मेरी बहिन के लिए दी, वह अनुचित है, अनीतिपूर्ण है, धर्म के विरुद्ध है। मैं देश के लिए बलिदान दे देने में सहमत हूँ पर मेरी बहिन को मेरी ही आँखों के आगे किसी अपराध के बिना वारांगना होना मैं नहीं देख सकता, पिताजी !....'

'बस, आनन्द ! बस, बेटा ! जिस दिन लिच्छवी के जीवन से न्याय, निस्पृहता और पूर्वजोनुपालित कर्त्तव्य नष्ट हो जाएगा, उस दिन यह वैशाली नगरी रसातल को चली जाएगी। संथागार में जो कुछ हुआ, और परिषद ने जो कुछ किया वह प्रत्येक लिच्छवी ने लिच्छवियों के लिए किया है और वही निर्णय प्रत्येक लिच्छवियों को निर्विरोध रूप से शिरोधार्य है। परम पवित्र प्रवेणी-

नमस्कार लेते हुए धीरे-धीरे संथागार से बाहर निकले। बाहर आते ही यकायक सुधीर उनके पास झपट आया; उसकी मुखमुद्रा भीषण और आँखें लाल थीं; उन्माद उसके चेहरे से बरस रहा था। महानाम के सम्मुख आकर चिल्लाया—

'निर्दय ! मूर्ख वृद्ध, थू है तुझपर, थू !!'

सुधीर ने पशु बनकर उस श्रेष्ठ लिच्छवी के मुँह पर थूक दिया। वृद्ध महानाम रुके; सुधीर की ओर मुस्कान भरी दृष्टि डालकर उन्होंने हाथों से मुँह पोंछ लिया। सुधीर वह दृष्टि न झेल सका; मुँह फेर लिया। इतने में किसी ने सुधीर का मुँह पकड़कर उसे जोरों का झटका दिया; महानाम ने देखा कि वह आनन्द था; आँसूभरी आँखों से उन्होंने पूछा—तू आ गया आनन्द ?—

'हाँ पिताजी, परिषद प्रारम्भ होते ही मैं आ गया था !'

पिता-पुत्र लिच्छवी नेताओं के बीच खड़े रहकर केवल इतना ही बोल सके थे। दोनों में कोई भी आगे न बोल सका। दोनों के हृदय असह्य वेदना से व्यथित थे। आनन्द का हृदय कट रहा था, किन्तु वृद्ध का हृदय कट चुका था। आनन्द ने पिता को सहारा देकर रथ में बिठाया।

महानाम के मुँहपर थूकनेके बाद भी सुधीर चिल्ला रहा था। चिरंजीव ने उसे अपनी लोह-भुजाओं में जकड़ रखा फिर भी वह हँस रहा था। उसने अपना मस्तिष्क पूर्णरूपेण गँवा दिया था। इसी बीच भीड़ में से. मैले वस्त्रोंवाला दूसरा युवक निकल आया और सुधीर के सामने आकर चिल्लाया, हँसकर कहने लगा—'पागल, मूर्ख, अरे मैं पाली हूँ, मैं !' सुधीर की ओर देखकर वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा; वह रुदनमूर्ति भट्टी था।

महानाम का रथ चलने लगा; उसके पीछे जयजयकार और उस जय-जयकारों को दबाती हुई सुधीर की चीख और भट्टी का हास्य सुनाई दे रहे थे.... उन दोनों पागलों के पीछे पराजित, अपमानित, तिरस्कृत अभय खड़ा था; जिसके मुख पर अभी भी वही विषमय हास्य था।

शयन-गृह में पहुँचने तक महानाम ने अद्‌भुत धैर्य रखा। किन्तु शय्या पर बैठते ही थकावट, तीव्र मानसिक व्यथा, दुःख और घृणा की तीव्र भावना से व्यथित होकर वे गिर पड़े। आनन्द ने परिषद की सम्पूर्ण कार्यवाही अपनी

पुस्तक के विरुद्ध बोलने का साहस न कर बेटा, नहीं तो आत्मद्रोही, देशद्रोही, घोर अपराधी बनेगा ....'

आनन्द मौन रहा। वृद्ध के ललाट पर स्वेदबिंदु निखर आए थे; आनन्द ने धीरे-धीरे उन्हें पोछा और प्रेमपूर्ण किन्तु गदगद कण्ठ से बोला— 'अब क्या आज्ञा है, बापू !'

'पाली को यहाँ ले आ बेटा, जितनी शीघ्र हो सके !'

'जो आज्ञा, बापू ! पर आपने तो उसे अभी वहीं....'

'मुझे संथागार में रखे जाने वाले प्रस्ताव की बात मालूम हो गई थी इसलिए मैंने उसे वहीं रहने देने को कहा था;...आनन्द ! विलम्ब न कर बेटा, पाली को शीघ्र ले आ !'

'जैसी आज्ञा ! क्या अभी ही जाऊँ ?'

'हाँ !'

अपनी मृत्यु समीप आती देख कर महानाम ने पाली को शीघ्र ले आने को कहा, किन्तु यह कारण उन्होंने आनन्द से गुप्त रखा। आनन्द को डर था कि पाली और वह नटराज भावुकता में आकर कहीं कोई अनुचित बात न कर बैठे, इसीलिए वह भी शीघ्र जाना चाहता था किन्तु यह कारण उसने भी पिता से छुपा रखा था।

आनन्द, नन्दीग्राम जाने के लिए पिता की शैय्या पर से उठ खड़ा हुआ; तब ही मार्ग में दूर से उन्मत्त सुधीर की चिल्लाहट सुनाई देनी लगी—'मूर्ख ! धूर्त ! कापुरुष ! ....'

खुली हुई आँखें महानाम ने फिर बन्द कर ली, उनके वक्ष पर जैसे कोई बरछी से आघात कर रहा था। धीरे-धीरे सुधीर की चिल्लाहट समीप आने लगी, स्पष्ट सुनाई दी, और कुछ देर में धीरे-धीरे दूर चली गई। उसकी चीख के साथ लोगों की तरह-तरह की टीका-टिप्पणी भी सुनाई दे रही थी। बहुत कठिनाई से आनन्द, यह सब, दाँत पीसते हुए सुन रहा था।

(१७)

वेदांती के पैरों मे झुक कर जब पाली और बिम्बसार आशीर्वाद माँग रहे थे तब बिम्बसार का ध्यान आशीर्वाद को छोड़ किसी दूसरी ओर था ! वह दिग्मूढ़-सा सोच रहा था कि पाली ने उसके साथ विवाह करना स्वीकार कैसे किया ? वह पुनः शीघ्रातिशीघ्र बीती हुई घटनाओं को याद करने लगा—

'वृद्ध अभिराम ने प्रातःकाल के पहिले आकर अचानक उसे जगाया। सूर्योदय के पूर्व ही ग्राम के बाहर वेदांती के समक्ष विवाह-विधि सम्पन्न हुई। सूर्योदय होते ही पाली और बिम्बसार पति-पत्नी के रूप मे, वेदांती के पैरों में झुककर आशीर्वाद माँग रहे थे...।' ये सब घटनाएँ इतनी शीघ्रता से एक के बाद एक घटती गई कि बिम्बसार विमूढ़ बन गया। वेदांती ने उन्हें आशीर्वाद दिया और तब वे दोनों पास खड़े अभिराम के पैरों में गिर पड़े। अभिराम की आँखें आँसुओं से डबडबा रही थीं, एक बार ज़ोर से सिसक कर उसने दोनों को अपनी छाती से लगा लिया।

सच पूछो तो अभिराम ने ही इतनी शीघ्रता से इतना बड़ा काम सम्पन्न किया था। किसी को भी बिम्बसार का परिचय कहे बिना, दोनों देशों के हित के लिए पाली-बिम्बसार का विवाह होना ही चाहिए यह निश्चय वेदांती के साथ करके अभिराम ने दोनों को वेदांती के समक्ष विवाहित बना दिया। इन चार व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था कि पाली का विवाह हो गया !

रात हुई; वही चाँद-तारों वाली रात। आज पालीके सुखका समय था, सीमा थी। जिस विवाह की पहिली स्वर्गरात्रि के लिए इन्द्र भी मनुष्य बनना चाहता है, तब मनुष्य की तो बात ही क्या ? रेवा से यह गुप्त विवाह छुपा न रहा। शयन-गृह की शोभा परिवर्तित हो गई; रात के लिए अद्भुत और अननुभूत शृंगार तैयार हुए। बिम्बसार ने शयन-गृह में पैर रखा और पाली उसके चरणों से लिपट गई तब तो इस संसार ने कोई नया ही स्वाँग रच लिया था। पाली को उठाकर बिम्बसार ने अपनी ओर खींचा; वह काँप गई। बिम्बसार ने उसे बाहुपाश में जकड़ लिया; ओठों ने ओठों को छुआ, हृदय ने हृदय को। तब बिम्बसार ने पाली को भुजाओं में उठा लिया,—उस दिन गंगावाली टेकरी पर चढ़ते हुए

उठाया था, उसी तरह। पाली ने आँखें बन्द कर लीं, मानो उसका सारा संसार मदमस्ती में परिव्याप्त हो गया है और वह बिना देखे ही उसका अनुभव करना चाहती है! कुछ क्षण उसकी ओर एक टक देख कर बिम्बसार शय्या की ओर गया।

पाली की आँखें खुलीं तो देखा—उसका संसार बदल चुका था। मुँह फेर कर उसने अपने पीछे की ओर बिम्बसार को निद्रामग्न देखा! देखने लगी—कितना सुन्दर मुख, कितना उज्ज्वल! धीरे-धीरे उसने स्वामी के वक्षःस्थल में अपना सिर छुपा दिया और आँखें बन्द करके चुपचाप लेटी रही। बिम्बसार सुबह की मीठी नींद में निमग्न था, उसका एक हाथ पाली के गले से लिपट गया; पाली निःश्चेष्ट बन कर लेटी रही, सोचती रही।

...वृद्ध अभिराम ने मुहूर्त चूक जाने का बहाना कर विवाह करने के लिए इतना अधिक आग्रह क्यों किया? वह भी उसे सच क्यों मान बैठी? अनजान परदेशी से विवाह करने लिए इतनी शीघ्र तैयार कैसे हो गई? विवाह कर भी लिया! भाई और पिता से पूछे बिना ही? अभिराम के इन शब्दों पर उसे विश्वास ही कैसे हुआ कि 'बिना पूछे झटपट विवाह कर ले!'...उसका क्रोध कहाँ गया? और निश्चय?....इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ने के लिए पाली व्यर्थ प्रयास करने लगी। दाढ़ी मूँछ रहित सोये हुए बिम्बसार की कमनीयता रात ही रात में कई गुनी बढ़ गई थी—उसे देखते ही पाली ने पुनः आँखें मूँद लीं।

प्रातःकाल हो गया। नित्य की तरह दोनों गंगावाली टेकरी पर बैठ पुनः बातें करने लगे; पाली बोली—'अब कहो, तुम कौन हो?' बिम्बसार चौंक उठा; विस्मित दृष्टि से पाली की ओर देख कर उसने कहा—'दादा ने तुझे नहीं कहा?'....पाली और अधिक आश्चर्यान्वित होकर बोली—'दादा जानते हैं?'

'हाँ, और आनन्दराज भी जानते हैं कि मैं कौन हूँ!'

'और मैं अकेली ही अनजान रह गई! मुझसे क्यों छुपाया?'

'जब मैंने तुझसे कहने का निश्चय किया तो दादा और आनन्दराज ने मुझे रोक दिया था।'

'विवाह के पहिले न कहने में क्या कुछ रहस्य था?'

'हाँ, वह दो राष्ट्रों की समस्या थी!'

'अर्थात ?....' पाली बोलते-बोलते रुक गई, उसकी दृष्टि कठोर हो गई, वह आशंकित हुई, आशंका सच निकली; बोली—'तुम मागधी हो ! बोलो, कहो—तुम मागधी हो ?'

'हाँ, पाली, मैं मागधी हूँ, मागधियों का स्वामी बिम्बसार !'

'बिम्ब...वज्जियों और लिच्छवियों के कट्टर शत्रु !'

'अब लिच्छवियों का परम मित्र, सम्बन्धी....'

'बस, एक शब्द भी अधिक न कहो !' कह कर पाली खड़ी हो गई; मन की भीषण ज्वाला ने शरीर को भी प्रज्वलित कर दिया। जैसे किसी ने अपमानित करके उसे स्वर्ग के उन्नत शृंग से नरक के गर्त में गिरा दिया हो !

'पाली, मेरी बस एक ही बात सुन ले ! उसके बाद जो दण्ड देगी उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा...!'

'मैं शत्रु के साथ बोलना नहीं चाहती !' पाली ने मूँह फेरकर बोलना शुरू किया—'द्रोही,....कपटी, स्वार्थी, कायर...' कहते-कहते उसकी आँखें आँसुओं से उभरने लगीं।

उसके समीप आकर बिम्बसार बोला—'एक बार तो मेरी बात सुन ले ! वैशाली और राजगृह, लिच्छवी और मागधी को एक करने का एक ही मार्ग था—एक दूसरे को प्रेम विजित करना ! मेरे महामात्य ने लिच्छवियों और मागधियों के छोटे से संघर्ष में अकस्मात् प्राणोत्सर्ग कर दिया, किन्तु मरने के पहले वे मुझे एक मन्त्र दे गए थे, वही मन्त्र मैंने आनन्दराज को समझाया और वृद्ध अभिराम और तपस्वी वेदांती ने उसी मन्त्र का साक्षात् प्रयोग किया। पाली, आज से मैं तेरे बिना निर्जीव हूँ—हम दोनों एक हैं ! तू राजगृह की पट्टरानी बन कर लिच्छवियों को प्रेम करना सिखा सकेगी। वैर अपने आप भूल जाएगा; स्नेह प्रकट होगा और कुछ ही समय में कटुता और संघर्ष सदा के लिए नष्ट हो जाएगा। मुझे अपने राज्य और अपने आपको बचाने का एक ही मार्ग दिखाई दिया और वह था हमारा विवाह ! तेरे लिए भी, लिच्छवियों के साथ साथ मुझे भी सुरक्षित रखने का एक ही मार्ग था कि तू मुझसे विवाह-ग्रंथि में बँध जाती ! यह तेरी इच्छा है कि इसे स्वीकार करे या न करे !...'

आनन्द से कही थी, फलस्वरूप आनन्द के आते ही तत्काल दोनों को नन्दीग्राम से विदा करने की तैयारी हो चुकी थी। संभवतः पिताजी नही आये! कदाचित भाई का विचार बदल गया है अथवा वह सदा के लिए सबों को छोड़कर चली जाएगी इसलिए तो भाई की इतनी कठोर मुखमुद्रा नहीं है ?

'भैया ! वैशाली में क्या हुआ ? पिताजी क्यों नही आये ? मुझसे कुछ अपराध तो नही हुआ ?'

'हाँ, बड़ा भारी, अक्षम्य अपराध हुआ है ! तू स्त्री बनकर पैदा क्यो हुई, और स्त्री वनी तो इतनी सुन्दर क्यों बनी ?'

'भैया !' पाली आनन्द की ओर दौड़ी, उसके मुँह पर हाथ रख दिया; किन्तु आनन्द ने उसी कठोरता से उसके हाथ दृढ़तापूर्वक पकड़ कर उसे खींचा और बलपूर्वक नीचे बैठा कर दाँत पीसता हुआ बोला—'अभागिनी ! तूने वैशाली में जन्म क्यों लिया ? तू एक लिच्छवी की पुत्री क्यों बनी ?'

कठोरता और क्रोध की तीव्रता के कारण आनंद की आँखो से आँसू बहने लगे थे। चीखकर पाली उसके गले से लिपटकर बोली—'भैया, अपने अपराध के लिए प्राण दे देने में मैं ज़रा भी नहीं हिचकिचाऊँगी स्पष्ट कहो, क्या हुआ है ?'

'मैं तुझे मार डालने आया हूँ, तेरा गला घोंटने के लिए ! नही, नहीं.... तुझे ऐसी मौत मारने आया हूँ कि हज़ार बार जीकर हज़ार बार मर जाने पर भी तू उस मौत की बराबरी नहीं कर सकती ! पाली, बहन ! आज से समझ ले कि तू जीवित नहीं मर गई है !'

'मुझे मरना आता है भैया ! समय आने पर प्राण दे देने में मै डरूँगी नहीं ! पर इतना तो समझाओ कि वैशाली में सब के सब मुझे मार डालने के लिए इतने आतुर क्यों हो रहे हैं ? अभी तक मै मरी नही हूँ, कह दो भैया, रुको मत ! मैं भी लिच्छिवी हूँ !!'

'इसीलिए तुझे कह सकूँगा ! कल से तू महानाम की नहीं, पूरी वैशाली की, समस्त लिच्छवियों की बन चुकी है ! और पिताजी ने निःसंकोच होकर अपने हाथों तुझे परिषद को अर्पण कर दिया है !

पाली विमूढ़-सी होकर सुन रही थी—प्रेम के साथ राष्ट्रों के उद्धार की बात सुनकर वह निस्तब्ध हो गई; किन्तु रोष इतनी शीघ्रता से शाँत न हुआ। उसका हाथ पकड़ कर बिम्बसार धीरे-धीरे कान में कहने लगा—यह कोप मगध की महारानी को ही शोभा देता है! भूले हुए को क्षमा करना महारानी का कर्त्त-व्य है। साथ ही साथ महारानी से यह भी प्रार्थना है कि वे कल ही यहाँ से प्रस्थान करने की आज्ञा दें,—क्योंकि मगध की प्रजा महारानी के दर्शन के लिए अतीव आतुर हो रही है!'

'मैं महारानी नहीं हूँ!'

'मागधी प्रजा यह नहीं मानती!'

'मैंने मगध की प्रजा को देखा तक नहीं!'

'प्रजा के प्रतिनिधि को देख रही हो न!'

'मुझे हँसाने का प्रयत्न न करो!'

'ठीक है, रुलाने का प्रयत्न करूँगा, कल तक आनन्दराज के आने भर की देर है!'

'मैं निरर्थक बाते सुनना नही चाहती!'

'मैं बहुत गूढ़ार्थ बात कह रहा हूँ; अब तक आनन्दराज ने पिताजी से हमारे विवाह की बात की होगी। वे कल यहाँ आशीर्वाद देने आएँगे। उसके बाद हम दोनों यहाँ से चले जाएँगे। भाई, पिताजी और देश को छोड़ते समय मगध की महारानी अवश्य रो पड़ेगी, मुझे रुलाने का जरा भी प्रयत्न न करना पड़ेगा! अब कहें, महारानी क्या आज्ञा देती हैं?'

आँसू भरी आँखों से पाली उसकी ओर देखती रही, क्रोध में भी वह सुन्दर मालूम होती थी और रोते हुए भी। बिम्बसार ने भावाविष्ट होकर उसे हृदय से लगा लिया...बिम्बसार के स्पर्श-भर ने पाली के क्रोध और शक्ति को शिथिल कर दिया—वह अपना सर्वस्व समर्पण करके उसी तरह बिम्बसार के वक्ष से चिपकी रही।

'पाली, कल ही प्रस्थान करें?'

'हाँ!'

'तू पट्टरानी बनेगी?'

'क्या वहाँ दूसरी रानियाँ भी हैं ?'

'रानियाँ होंगी, महारानी तो एक ही है, आम्रपाली !'

'मैं महारानी नहीं बनूँगी !'

'क्या अभी रोष शांत नहीं हुआ ? देवी अपराध क्षमा नहीं करेंगी ?'

'शत्रु को क्षमा ?'

'मागधी तो शत्रु को क्षमा कर देते है, मागधियों की महारानी क्या एक मागधी को क्षमा नहीं करेंगी ?'

पाली की आँखें फिर भींग उठीं। बिम्बसार ने स्वयं झुककर उसे जीत लिया; पाली उस पर न्योछावर हो गई। किन्तु बाहर से उसी प्रकार रुष्ट होकर बिम्बसार की भुजाओं में बँधी रही बोली—

'महारानी क्षमा नहीं करती, दंड देती है।'

'जैसी आज्ञा ! कौन से दंड का विधान है ?'

'उचित समय पर उचित दंड मिलेगा !' इतना कहकर उसने आँखें मूँद लीं; यह आह्वाहन था !

'जैसी महारानी की आज्ञा...' कहकर बिम्बसार ने पाली को चूम लिया।

साँझ हुई; मार्गश्रम मे अतीव थककर आनन्द नन्दीग्राम पहुँचा। सर्वप्रथम वह अभिराम से मिला किन्तु जब उसने उसे गुप्त विवाह की बात कही तो वह जहाँ खड़ा था वहीं बैठ गया। अतिशय मानसिक कष्ट के कारण उसे चक्कर आ गये।

'दादा, हमारी पाली मर गई....' कहकर आनन्द ने पूरी बात अभिराम को कह सुनाई। वृद्ध विस्मय से विमूढ़ हो गया !

प्रासाद में पैर रखते ही आनन्द ने पाली और बिम्बसार को देखा। बहन को देखते ही अपार वेदना ने उसके हृदय को व्यथित कर दिया। तब वह उस अकेली का हाथ पकड़कर अपने कक्ष मे ले गया, और द्वार बन्द करके ओठों को चबाता हुआ वह पाली को देखने लगा।

पाली जीवन में प्रथम बार अपने भाई से भयभीत हुई। लिच्छवियों और मागधियों के राजकीय सम्बन्धों को ध्यान में रखकर, पाली को तत्काल राजगृह ले जाने और इस तरह दोनों राज्यों की शत्रुता दूर करने की बात बिम्बसार ने

आनन्द से कही थी, फलस्वरूप आनन्द के आते ही तत्काल दोनों को नन्दीग्राम से विदा करने की तैयारी हो चुकी थी। संभवत: पिताजी नही आये! कदाचित भाई का विचार बदल गया है अथवा वह सदा के लिए सबों को छोड़कर चली जाएगी इसलिए तो भाई की इतनी कठोर मुखमुद्रा नहीं है?

'भैया! वैशाली में क्या हुआ? पिताजी क्यों नही आये? मुझसे कुछ अपराध तो नही हुआ?'

'हाँ, बड़ा भारी, अक्षम्य अपराध हुआ है! तू स्त्री बनकर पैदा क्यों हुई, और स्त्री बनी तो इतनी सुन्दर क्यों बनी?'

'भैया!' पाली आनन्द की ओर दौड़ी, उसके मुँह पर हाथ रख दिया; किन्तु आनन्द ने उसी कठोरता से उसके हाथ दृढ़तापूर्वक पकड़ कर उसे खीचा और बलपूर्वक नीचे बैठा कर दाँत पीसता हुआ बोला—'अभागिनी! तूने वैशाली में जन्म क्यों लिया? तू एक लिच्छवी की पुत्री क्यों बनी?'

कठोरता और क्रोध की तीव्रता के कारण आनंद की आँखों से आँसू बहने लगे थे। चीखकर पाली उसके गले से लिपटकर बोली—'भैया, अपने अपराध के लिए प्राण दे देने में मैं जरा भी नहीं हिचकिचाऊँगी स्पष्ट कहो, क्या हुआ है?'

'मैं तुझे मार डालने आया हूँ, तेरा गला घोंटने के लिए! नहीं, नहीं.... तुझे ऐसी मौत मारने आया हूँ कि हज़ार बार जीकर हज़ार बार मर जाने पर भी तू उस मौत की बराबरी नहीं कर सकती! पाली, बहन! आज से समझ ले कि तू जीवित नहीं मर गई है!'

'मुझे मरना आता है भैया! समय आने पर प्राण दे देने मे मैं डरूँगी नहीं! पर इतना तो समझाओ कि वैशाली में सब के सब मुझे मार डालने के लिए इतने आतुर क्यों हो रहे हैं? अभी तक मैं मरी नही हूँ, कह दो भैया, रुको मत! मैं भी लिच्छिवी हूँ!!'

'इसीलिए तुझे कह सकूँगा! कल से तू महानाम की नही, पूरी वैशाली की, समस्त लिच्छवियों की बन चुकी है! और पिताजी ने नि:संकोच होकर अपने हाथों तुझे परिषद को अर्पण कर दिया है!

जैसे पाली की हृदयगति रुक गई। आनंद के ओंठ काँपने लगे, स्वर तीक्ष्ण हुआ, चिल्लाकर वह बोला—'सुन लिया पाली ? तू, मेरी बहन, महान महानाम लिच्छवी की पुत्री अब वेश्या बन गई है ! लिच्छवियों का यह आदर्श बलिदान है। यह वैशाली का गौरवमय कलंक है !'

इस समय पाली मर जाती तो अधिक अच्छा होता; किन्तु मरी नहीं क्योंकि वह लिच्छवी थी ! एकाएक मानसिक आघात से उसका समस्त शरीर शिथिल होकर पुनः चेतन हुआ। अँधेरे गड्ढे में अचानक गिर जाने के बाद उठकर धीरे-धीरे प्रकाश में आ रही हो वैसे धीमे-धीमे पाली को बाह्य जगत की सुध हुई। वह अंधकार से प्रकाश में आने का प्रयत्न करने लगी और बहुत दूर किसी धुंधले प्रकाश की रेखा की ओर देखकर अपने आस-पास का अंधकार भूल गई। गंभीर और संयत स्वर में उसने पूछा—'क्या आज्ञा है भैया ?'

आनन्द का कठोर हृदय पिघल गया; वारांगना बनने के पहले उसने अपनी बहन को वीरांगना बनते देखा; उसका हृदय टूक-टूक हो रहा था। भविष्य सुन लेने के बाद तत्क्षण पाली ने अपने जीवन के महत् ऐश्वर्य, सुख और प्रसन्नता को मनसे निकाल दिया। पिताकी आज्ञा और वंशगत नियमोंके आगे उसने महारानी का पद छोड़ दिया, शरीर को तिरस्कृत कर दिया, अपनेपन को दबा दिया, किंतु केवल हृदय से वह कुछ न कह सकी; उस आवेश में उसने उसे भी कुचल दिया ! आनन्द ने बहन का त्याग और निश्चय देखा; उसने वहाँ बिना आतंक के बलिदान की स्वीकृति देखी। गर्व, आनद और वेदना से उसका हृदय भर आया ! भावाविष्ट होकर उसने बहन को हृदय से लगा लिया; आँखों से अश्रुधारा बही जा रही थी !

'बहिन, सुन, यदि तू राजगृह जायेगी तो लिच्छविगण अपनी राजकुमारी को एक मागधी से पराजित देखकर बिम्बसार का वध किये बिना न रहेंगे, और पूरे राष्ट्र पर आपत्ति के बादल मँडरा जाएँगे ! यदि तू आत्महत्या करेगी तो पिताजी का वचन निष्फल जायेगा, और बिम्बसार यह जानकर कि एक मागधी से विवाह करने के कारण तूने आत्महत्या की है, लिच्छवियों से वैर का बदला लेगा। बहन, न तू उसके साथ जा सकती है, न प्रेम कर सकती है और न आत्महत्या ही। तेरा पहला काम बिम्बसारको समझाना है। हमें शीघ्र ही पिताजी

के पास पहुँचना है'...इतना कहकर वह वहाँ से चला गया; उस विशाल कक्ष में पाली ही रह गई। उस समय निर्दोष और निरपराधिनी पाली एकाकी और निःसहाय थी। रात समाप्त हुई। दूसरा दिन भी बीत गया; वह अर्धरात्रि थी। ब्रह्मदत्त और संजय पूर्णरूपेण प्रस्तुत होकर अपनी महारानी को ले जानेके लिए आये थे। आनंद के आते ही बिम्बसार ने शीघ्रतापूर्वक जाने की व्यवस्था करना प्रारंभ कर दिया; उसका हृदय आनंद से पुलकित हो रहा था। प्रेमपरीक्षा में हृदय हारकर उसने बड़ी भारी विजय प्राप्त की थी। उसने अपनी प्रेयसी के साथ-साथ एक महान राष्ट्र को अपना बना लिया था। उसका हृदय, राजगृह में पहुँचकर बहुत ही धूम-धाम से ध्वजा पताका के बीच भैरवीनाद से संसार को यह सुनाने को तरस रहा था कि संसार में उसके समान सुखी राजा और कोई नहीं। अपने प्रबंध की शीघ्रता में वह पाली से मिल भी न सका, पाली ने स्वय अपनेको उसकी दृष्टि में न पड़ने दिया था। रेवा ने बहुत चतुराई से इस काम में मदद दी थी। किंतु बिम्बसार का मन पाली से मिलने के लिए व्याकुल हो रहा था। उन्हें अर्धरात्रि में चुपचाप वहाँ से चले जाना था जिसकी व्यवस्था दो दिन पहले ही हो चुकी थी। रेवा कह गई थी कि–'समय होते ही, महल मे देवी को लेने पधारना।' बाहर रथ प्रस्तुत हो रहे थे। अभिराम, चुपचाप कभी यहाँ और कभी वहाँ जाकर काम में लीन होने का दिखावा कर रहा था। पाली से मिलने के लिए बिम्बसार के पैर धरती पर टिकते न थे। ब्रह्मदत्त ने जाने का मुहूर्त भी निकाल रखा था; ज्योतिषी ने कहा था कि यह घड़ी दोनों के जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन लाएगी। ठीक मध्यरात्रि के समय, बिम्बसार ने पोशाक धारण की; देवपुरुषों की तरह मस्तक पर मुकुट था और हाथों में रत्नजटित तलवार !

उसी समय द्वार खुलने की ध्वनि हुई, बिम्बसार ने आँखे उठाकर देखा, वहाँ पाली खड़ी थी।

'पाली !' बिम्बसार विस्मय के कारण और अधिक न बोल सका, वह विमूढ़ बन पाली को देखता रहा। पाली ने सादे वस्त्र पहन रखे थे; वह बिम्बसार को देख रही थी। आज बिम्बसार को राजसी पोशाक में देखकर वह स्तम्भित हो गई—उस समय बिम्बसार मनुष्य नहीं, तावतिस* का शक्र

* बौद्ध शास्त्रों में वर्णित इन्द्र का साम्राज्य, शक्र अर्थात इन्द्र।

दिखाई दे रहा था। हृदय फिर कल्लोलित होकर काँपने लगा किन्तु पाली ने निर्दयतापूर्वक उसे कुचल दिया। ओठों पर बलात् घृणा लाने का प्रयत्न किया; आँखों में कृत्रिम क्रोध और धिक्कार का भाव लाने में वह कृतकार्य हुई। वह वहीं स्थिर बनकर खड़ी थी। बिम्बसार के हृदय पर जैसे किसी ने वज्रप्रहार किया; उसका स्वर बदल गया, सहसा पाली की ओर दौड़कर बोला—'ये वस्त्र क्यों पहिने पाली ? नन्दीग्राम छोड़ देने का समय हो गया है।'

'हाँ, तुम्हारे लिए...और मेरे लिए भी !'

बिम्बसार, पाली के अप्रत्याशित स्वर से विस्मित होकर दो डग पीछे हट गया।

'मगध के महाराजा को नन्दीग्राम छोड़कर जाना होगा क्योंकि उसने मन ही मन जो आशाएँ कल्पित की थीं, वे आकाशकुसुम की तरह मिथ्या है, झूठी हैं !'

बिम्बसार ने गम्भीर बनकर पूछा—'क्या कोई नया शत्रु पैदा हुआ है पाली ?'

'हाँ, तुम्हारे सम्मुख ही खड़ा है।' अपनी समस्त शक्ति लगाकर पाली ने अपने आपको, अपनी आँखों और कण्ठ को घृणा और धिक्कारपूर्ण बनाकर पुन: बोलना प्रारम्भ किया—'मगधपति ! एक लिच्छवी कन्या से प्रेम करने से पहिले यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए था कि जिससे तुम प्रेम करना चाहते हो वह एक लिच्छवी कुमारी है। भविष्य में अब कभी किसी लिच्छवी कुमारी को प्रेम-पराजित करने का झूठा दम्भ न करना...। राजगृह पहुँचने पर अपने कुलदेवता को अर्घ्य चढ़ाकर उनका उपकार मानना कि लिच्छवी भूमि से सुरक्षित रहकर स्वदेश लौट पाये हो। इस प्रासाद में और प्रासाद के बाहर कई महारथी योद्धा अभी खड़े हैं; यदि वे चाहें तो मगधराज को इच्छानुसार दण्ड दे सकते हैं। सौभाग्य से तुम एक महान लिच्छवी के अतिथि हो, उसके संरक्षण में हो !...तुम हमारे शत्रु हो, और लिच्छवी ही शत्रु का सम्मान अच्छी तरह करना जानते है।...भले ही हम भेष बदलकर

नाटक करना न जानते हों, पर विशुद्ध मन से क्षमा करना अवश्य जानते हैं। अब शीघ्र यहाँ से चले जाओ....'

बिम्बसार वैसे ही खड़ा रहा; उसे विश्वास न हुआ कि यह वही पाली है, जो उसकी थी। उसे पाली से बोलने की जो भी इच्छा थी वह उसकी बातें सुनकर विलीन हो गई। वह कुछ न बोला किन्तु उसने जिस दृष्टि से पाली को देखा, लगता था कि वह दृष्टि पत्थर को भी टूक-टूक कर देगी !

उस समय यदि पाली के स्थान पर कोई दूसरी होती तो वहाँ ठहर भी न सकती। बिम्बसार ने कुछ भी कहना व्यर्थ समझा। फर्श पर फेंकी हुई तलवार उसने पुनः उठा ली और मूर्ति के समान स्थिर पाली के पास से तेज़ी से निकल गया। पाली को सुनाई दिया कि एक रथ प्रस्थान कर रहा है, और किसी ने अश्वों को इतने बलपूर्वक चाबुक लगाया, कि उनकी खाल ही फट गई होगी। पाली काँप उठी; उसने अपने हृदय में चाबुक की वेदना का अनुभव किया। रथ चला गया, और पाली बेसुध होकर वहीं गिर पड़ी।

आनन्द एकदम भीतर दौड़ आया, वह बाहर खड़ा होकर चुपके से पाली की बातें सुन रहा था। वह अपनी बहन के अपूर्व त्याग को, हृदय को निकाल कर बाहर फेंक देनेवाले धैर्य को देख रहा था। पाली और बिम्बसार की बातें सुनते-सुनते वह समस्त संसार के प्रति घृणा से भर गया। वह जानता था कि उसकी अभागिनी बहिन् के हृदय में बिम्बसार के लिए कितना प्रेम भरा था! नीरभरे नयनों से बहिन को गोद में उठाकर उसने हृदय से लगाया। और चिल्ला उठा—'बहन, मेरी बहन !...'

बाहर खड़े हुए अश्व हिनहिना उठे। कहीं दूर एक रथ वायुवेग से दौड़ा जा रहा था।

(१८)

वृद्ध महानाम की शिराएँ खिंची जा रही थीं। उनकी शय्या के आस-पास वैशाली के गणमान्य नेता, महाजेट्ठक और नगरश्रेष्ठी बैठे हुए थे। वैद्यराज़, उन्हें हिमालय की एक जड़ी घीसकर पिला रहे थे; औषधि पीते ही उनके शरीर में जैसे विद्युत का संचार हो गया। धीरे-धीरे उन्हें शक्ति आने लगी; तत्क्षण

वे नगरश्रेष्ठी को पास बुलाकर आवश्यक सूचना देने लगे।

आनन्द का रथ उसी समय महानाम के प्रासाद के सम्मुख आकर रुका: प्रासाद के आगे प्रजाजनों की एक भीड़ खड़ी थी। वे अपने नेता लिच्छवी वयोवृद्ध की अस्वस्थता की बात सुनकर उनके दर्शन के लिए दौड़े आए थे। प्रासाद के सम्मुख असंख्य लोगों को खड़े देखकर पाली आशंका से भयभीत होकर आनन्द के साथ पिता के पास दौड़ गई।

महानाम आँखें मूँदकर लेटे थे। वैद्यराज के कहने से नगरश्रेष्ठी को छोड़कर सभी नेता बाहर चले गये थे। नगरश्रेष्ठी ही महानाम के पास बैठकर, प्रवेणी-पुस्तक के सूत्र धीरे-धीरे पढ़ रहे थे। पाली ने आकर महानाम के पैरों में सिर रख दिया, महानाम ने आँखे खोलीं। पाली ने अपना सिर धीरे से महानाम के वक्ष पर गिरा दिया; वृद्ध मुस्कराए। अपना दुर्बल हाथ पाली के सिर पर फेरकर अतीव स्नेहपूर्वक वे बोले—'आ गई बेटी?' उत्तर में पाली ने सिर हिलाया; वह बोल न सकी क्योंकि उसका गला हिचकियों से भर गया था। महानाम ने संकेत से आनन्द को द्वार बन्द कर देने के लिए कहा; वह तुरंत द्वार बन्द कर पिता के पास आकर बैठ गया। महानाम, पाली और वैद्यराज की सहायता से तकिए के सहारे बैठ गये। पाली एक हाथ पिता के सिर नीचे रखकर, दूसरे हाथ से उनकी छाती सहलाने लगी। नगरश्रेष्ठी मंत्रोच्चार करना छोड़ महानाम के पैरों के पास बैठ गये।

महानाम मंद स्वर में बोले—'कई तरह के पाप संसार में होते हैं, मैंने भी अपने जीवन में एक पाप किया है किन्तु उसे अपने साथ लेकर मरना नही चाहता। बेटा! तुम मानोगे नहीं कि मै जीवन में एक ही महान असत्य बोला हूँ जिसे केवल एक ही व्यक्ति जानता है, और वह है हमारा अभिराम। अठारह वर्ष पहिले मैं मल्लों से होने वाले युद्ध को रोककर, वैशाली लौट रहा था। अति श्रम से थक जाने के कारण मै महाउद्यान में बैठ गया, उसी समय मुझे किसी बालक का क्रन्दन सुनाई दिया। उन दिनों महाउद्यान का रक्षक अभिराम था, वह मेरी सेवा भी करता था। वह उस ओर दौड़ा और लौटने पर एक अप्सरा जैसी बच्ची को अपने साथ लेता आया। उसे कोई

महाउद्यान के सब से बड़े आम्रवृक्ष के नीचे छोड़ गया था। बच्ची को रोती देख कर मेरा हृदय पिघल गया; मुझे पुत्रियाँ होती थी पर वे जन्म लेते ही मर जाती थीं! आनंद, तेरी माँ पुत्रियों को बहुत चाहती थी। मैं बच्ची को उठाकर अभिराम के साथ गुप्तद्वार से महल में ले गया। आनंद, उसी समय तेरी माँ ने भी एक बच्ची को जन्म दिया; थोड़ी देर बाद जब उस बच्ची को मुझे दिखाने लाये तो मेरे हाथों में ही उसके प्राण निकल गये। मुझे भय हुआ कि तेरी माँ को उसकी मृत्यु से बहुत आघात पहुँचेगा, इसलिए मैंने मृत पुत्री को अभिराम के हाथोंमें दिया और जीवित बालिका को अन्तःपुर में पहुँचा दिया। वही आम्रपाली थी! आश्चर्य तो इस बात का था कि किसी को ज़रा भी आशंका न हुई। मैंने इस घटना को दैवी संकेत मान लिया। आम्रवृक्ष के नीचे पाई जाने के कारण अभिराम ने उसका नाम आम्रपाली रखा, मैंने उसे मान लिया। अभिराम मेरा बहुत पुराना मित्र है, मैंने उससे यह रहस्य किसी से भी न कहने की शपथ ले ली थी इसलिए मेरे मरने के बाद भी यह सत्य अप्रकट ही रह जाता, और किसी दूसरे विकृत स्वरूप में प्रकट होता, इसलिए यह बात मैं अपने मुँह से कहना चाहता था....पर पाली! तू हृदय और मन से मेरी ही पुत्री है। आनंद कई बार मुझपर यही आक्षेप करता था कि मैं और तुम्हारी माँ पाली से अधिक स्नेह करते हैं!....मेरी आधी सम्पत्ति का स्वामी आनन्द, आधी की तू है, पाली! इन सब बातों का प्रबन्ध मैंने नगरश्रेष्ठी से करने को कह दिया है। अब तक तू मेरी पुत्री थी, और आगे भी मेरी ही पुत्री रहेगी....! बेटी, नगरश्रेष्ठी और वैद्यराज मेरे परम मित्र हैं, ये लोग कभी भी इस रहस्य को प्रकट न करेंगे! अब मुझे वचन दे कि जीवनपर्यंत तू मेरी ही पुत्री रहेगी। क्षमा करना बेटी, पर मुझे वचन:...' बोलते-बोलते उन्होने पाली का हाथ अपने वक्ष की ओर खींच लिया, उनकी आँखे फैलने लगीं।

पाली के सिर पहाड़ टूट पड़ा था। महानाम के मुख की ओर देखकर वह करुणार्द्र होकर चिल्ला उठी—'पिताजी....पिताजी!' किंतु यह सब कुछ न सुनकर नगरश्रेष्ठी के पवित्र मंत्रोच्चार के बीच वृद्ध ने देह त्याग किया। आनंद ने आँसू से मृत पिता का पदप्रक्षालन किया और विवश मन को बलात् वश करके बाहर आया तथा विशाल जनसमूह को संबोधित कर के बोला—'लिच्छवियों!

बज्जियों की इस विशाल भूमि से, बलवान लिच्छवियों के वयोवृद्ध ...मेरे पिता ने पितृभूमि को प्रयाण किया है ....

पाली स्तब्ध बैठी थी; उसने कुछ खाया न था, न वह किसी से बोली थी। महानाम के वचन सुनकर कदाचित वह अन्यमनस्क हो गई या उन वचनों को ही भूल बैठी थी! रेवा ने लाख प्रयत्न किए—रोकर, डरा धमका कर, मनाकर उसे शयन-गृह से बाहर आनेको कहा किन्तु सारे दिन पाली वहीं बैठी रही, शयन-गृहसे बाहर पैर न रखा! रेवा को भय था कि यदि पाली ऐसी ही रही तो कहीं पागल न हो जाए!

महानाम की अंतिम क्रिया पूर्ण हुई। सारी वैशाली शोकमग्न थी। सैकड़ों नर-नारी समवेदना के लिए महानाम के महल में आ चुके थे, पर पाली की वह स्थित न बदली! स्त्रियाँ समझीं कि उसे पिता की मृत्यु से आघात पहुँचता है, पुरुष समझे कि देशनर्तकी बनने के भय से मस्तिष्क अव्यवस्थित हो गया है। कुछ भी समझें पर प्रत्येक व्यक्ति की सहानुभूति पाली के साथ थी। सबों का हृदय दुखी था; उनके सर्वप्रिय देश-भक्त के घर पर महान आपत्ति के बादल घिर आए थे। यद्यपि प्रत्येक लिच्छवी, आबालवृद्ध स्त्री पुरुष सब कोई परिषद की आज्ञा चुपचाप मान लेते थे तथापि इस देशनर्तकी की प्रथाने कइयों के हृदय में असन्तोष उत्पन्न कर दिया था। उनकी अन्तर्भावना की दृष्टि में यह प्रथा बलिदान ही नहीं, भीषण क्रूरता थी; एक घातक प्रणाली थी। इस समय उनके असंतोष का सब से बड़ा कारण मृत महानाम की सज्जनता थी जिसे अभय भी मानता था। किन्तु लिच्छवियों ने, ये सब अन्याय अनुशासित सैनिकों की तरह बिना किसी विवाद के चुपचाप सहन कर लिये थे!

अभिराम रोता कलपता नन्दीग्राम से आ पहुँचा; उसने और नगरश्रेष्ठी ने मिलकर महानाम के महल की आंतरिक और बाह्य व्यवस्था करने के लिए बहुत दौड़-धूप की थी। रात होने पर जब नगरश्रेष्ठी आनन्द के पास आकर बैठे तो वृद्ध अभिराम पाली के पास गया; उसके आते ही रेवा बाहर चली गई। वृद्ध धीरे-धीरे पाली के पास बैठा और उसकी पीठ पर हाथ फेरकर कान में बोला—'बेटी!' पाली कुछ न बोली; उसी प्रकार नीचे देखती रही। वृद्ध ने पीठ पर से

हाथ उठा कर सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'बेटी, आँसुओं को न रोक ! इन्हें बाहर बह जाने दे !'...

किंतु अभिराम की लाड़ली ने आज उसे आँख उठाकर भी न देखा। अभिराम पाली के हृदय की हलचल से अवगत था; वह बाहर आया और महानाम का वह मुकुट, जिसे उन्होंने अंतिम क्रिया के समय स्मरण-चिन्ह के लिए रख लिया था, लेकर पाली के पास आया। पाली का मस्तक उसी प्रकार नीचे झुका हुआ था। अभिराम ने वह मुकुट धीरे-से उसकी गोद में रख दिया, पाली चौंक उठी, कुछ देर रुककर सहसा उसने मुकुट को बल-पूर्वक छाती से लगा लिया; उसे भ्रम हुआ मानों वह सचमुच महानाम के मस्तक को हृदय से लगा रही है ! अश्रु-प्रवाह, जो भीतर ही भीतर अब तक स्तम्भित था, पूरे वेग से बाहर निकल आया—'नहीं, नहीं...आप ही मेरे पिता हैं !...पिताजी... मेरे बापू !'

और अधिक न बोलकर पाली सिसक-सिसक कर रोने लगी। अभिराम यही चाहता था; उसे विश्वास हो गया कि पाली अब पागल न हो सकेगी। पाली के इस क्रन्दन से उसकी आँखें भी भींग चलीं। वह जानता था कि पाली के हृदय में महानाम के प्रति असीम प्रेम है। पुनः पाली की पीठ पर हाथ फेर कर अभिराभ बोला—'पाली ! वीर पुरुष के उत्तराधिकारी भी वीर ही होते हैं ! तू यह न भूल, कि तू भी एक वीर पुरुष की उत्तराधिकारिणी है ! वीरांगना है ! अब इस उत्तराधिकार का प्रयोग 'स्व' को भूलकर 'पर' को अपनाने के लिए करना होगा। तेरे प्रत्येक संस्कार में नेतृत्व व्याप्त है ! तू साधारण लिच्छवी की उत्तराधिकारिणी नहीं, महानाम की 'पुत्री' है इसलिए तुझसे कुछ महान बातें होंगी और होकर रहेंगी। बेटी, उठ ! हृदय की उस चोट को छुपा कर अपना कर्तव्य सम्भाल ले!' रोते रोते पालीने वृद्ध के वक्षःस्थल में अपना सिर छुपा दिया; वृद्ध उसका सिर सहलाने लगा और दूसरे हाथ से पाली न देख सके इस तरह अपनी आँखों के आँसू पोंछ लिए। धीरे-धीरे रात गहरी हो चली। रात के बाद दिन और दिन के बाद रात बीतने लगी और पूर्णिमा को एक ही दिन रह गया। महानाम की अन्त्येष्टि क्रियाएं समाप्त हो चुकी थीं।

इतने दिनों तक आनन्द बिल्कुल मौन रहा था; अत्यावश्यक होने पर वह कभी कुछ बोला भी हो, पर नहीं के बराबर। नगरश्रेष्ठी आनन्द को समझा रहे थे कि महानाम के रिक्तस्थान पर उसे क्या क्या करना होगा.... किन्तु आनन्द का ध्यान इन सब बातों को छोड़कर किसी दूसरी ओर ही था। वह दिन पर दिन खोया-सा रहने लगा जैसे उसमें का आनन्द कहीं अदृश्य होकर वहाँ केवल जीता जागता शरीर रह गया हो। अन्तिम क्रिया सम्पूर्ण हो जाने के बाद आज दिन भर वह किसी से एक शब्द भी न बोला था। यह सुनकर पाली और दुखी हुई। पिता की मृत्यु के बाद आनंद तीन बार नंदीग्राम हो आया था। तीन-चार दिनों से पाली पिता की मृत्यु का सब दुःख भूलकर प्राणपण से आनन्द की सेवा में लगी रही थी, किन्तु इन सब बातों से आनन्द जल में कमल की तरह अलिप्त था। किन्तु आज अन्तिम क्रियाओं के सम्पूर्ण होने के बाद पाली का धैर्य टूट ही गया; भाई की गोद में मुँह रखकर वह ज़ोरों से रोने लगी।

और तब ही आनन्द का वह अखण्ड मौन टूट सका, उसने बहन को स्नेहपूर्वक बैठाया; बोला—'पाली, रो मत ! सचमुच तू ही पिताजी की सच्ची उत्तराधिकारिणी है; उनका धैर्य और स्थिरता तुझमें अधिक है; यदि तू इसी तरह रोती रहेगी तो दिन को भी रात कहना पड़ेगा ! मै सोच नहीं सकता कि तुझ जैसा कष्ट किसी और को भी हुआ होगा, पाली !'

'मुझे कुछ भी दुःख नही ! भाई जैसा भाई, सामर्थ्यवान भाई मेरे पीछे है, मुझे दुःख किस बात का ? मै बिल्कुल दुःखी नही हूँ।'

'पाली, तेरा दुःख मैं जानता हूँ; भाई और पिता सब कहने भर के लिए है, उस स्वामी को जिसे तूने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था, देश के लिए अपने हृदय से सदा के लिए तुझे दूर करना पड़ा है ! भाग्य-देवी इतने से भी सन्तुष्ट न हुई. उसने तुझे मरने का भी अधिकार नहीं दिया। अब तुझे मृत्युपर्यन्त ऐसा जीवन व्यतीत करना होगा जिसमे पग-पग पर अधःपतन का प्रलोभन है ! नहीं, नही ! बहन, संसार का अंत समीप है, प्रकृति मनुष्य पर कुपित है, जगत के

विनाश का बीज लिच्छिवियों मे ही बोया गया है ! देखना, वह फूलेगा, फलेगा और किसी शुभ दिन यह जगत सबों को अपनी विषमयी शाखा प्रशाखाओं से आच्छादित करके घोट घोटकर मार डालेगा ! तब ही इस संसार का अन्त होगा, अन्यथा नहीं ! बहिन ! अब इस संसार का अन्त होना ही चाहिए !'

'भैया. मेरे भैया ! इतनी घृणा, इतना विषाद किस लिए ? तुम, तुम नहीं रहे भैया....'

'हाँ, पाली मैं बहुत सोचता हूँ; किन्तु ज्यों-ज्यों सोचता जाता हूँ त्यों-त्यों मुझे विश्वास होता जाता है कि ये लिच्छवी लिच्छवी की तरह न रहें तो अच्छा ! लिच्छवी का जीवन जंबू-द्वीप के किसी अन्य साधारण मनुष्य की तरह नहीं है। वह शस्त्रों को लेकर जन्म लेता है, शस्त्रों से जीता है और मरता भी है तो शस्त्रों के साथ ! संथागार को छोड़कर तो वह कहीं भी बुद्धि अथवा समझ की बात नही करता। संथागार के बाहर वह केवल प्रेम करने और प्राण लेने की ही बातें कर सकता है। वह हर समय मरने और मारने के लिए स्वच्छन्द रहता है, और इन दोनों घातक कर्मो में प्रवृत्त होने के लिए उसे ज़रा भी संकोच नहीं होता ! पगली, तू लिच्छवी है, और एक श्रेष्ठ लिच्छवी की सच्ची उत्तराधिकारिणी है; लिच्छवी के सभी गुण तुझ में हैं; किन्तु मुझ में नहीं ! प्रत्येक लिच्छवी स्वाभाविक रूप से जो बात सोच सकता है, वह मैं नही सोच सकता; मैं जो कुछ सीखा हूँ वह आज मुझे व्यर्थ लगता हे, जो कुछ करता हूँ निरर्थक मालूम होता है, जो जो विचार करता हूँ वे भी व्यर्थ ही हैं !.... नहीं, पाली ! मै लिच्छवी नहीं हूँ, मै महानाम का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता; उनका गौरव तू ही निबाह सकेगी ! ईश्वर तेरा रक्षण करें !'

'ईश्वर ?'...

आनन्द खड़ा हो गया; पाली 'ईश्वर' का नाम बोल कर विस्मित हो उसे देखने लगी—सचमुच आनन्द हाथ से निकल चुका था। पूर्णिमा आ गई।

आज संथागार उमड़ पड़ा था। आज पाली देशनर्तकी बनेगी। वैसें तो वैशाली में अनेक नर्तकियाँ थी, किन्तु परिषद की आज्ञानुसार सर्वमान्य सुन्दरी आम्रपाली, नर्तकी कैसे बनेगी यह देखने के लिए सब लोग आतुर हो रहे थे।

उन दिनों वैशाली की देशनर्तकी दूर तक प्रसिद्ध थी। कई बार वैशाली की प्रतिष्ठा का प्रश्न भी देशनर्तकी के नृत्य पर ही निर्भर करता था। तत्कालीन देशनर्तकी अब बूढ़ी होने आई थी, फिर भी वह वैशाली की वारांगनाओं में सर्वश्रेष्ठ थी। आज आम्रपाली उसे ही सौंपी जानेवाली थी इसलिए अपनी दासियों के दल सहित समय पर वह संथागार में आ पहुँची। ऐसा दिन प्रतिवर्ष नहीं आता इसलिए इसका महत्व भी साधारण न था। महानाम की मृत्यु का आघात अभी ताजा ही था फिर भी न जाने क्यों आज श्रोताओं और प्रेक्षकों की असाधारण भीड़ इकट्ठी हो गई थी। लिच्छवी नेतागण, राजा और उपराजा तथा प्रत्येक प्रांत के नायक भी आ पहुँचे थे। महानाम की मृत्यु के पश्चात सभापति होकर अभय आज गिरिराज की तरह शांति धारण करके बैठा था; वह बहुत चतुराई से सभा को वश में रख रहा था।

ठीक समय पर आनंद, बहन का हाथ पकड़कर संथागार में प्रविष्ट हुआ। सभा इन दोनों के सम्मान में खड़ी हो गई। दुःख शोक से दुर्बल होते हुए भी आनंद और पाली केशरिया वस्त्रों में सुन्दर लग रहे थे। सभापति अभयराज ने आगे बढ़कर कृत्रिम वात्सल्यमयी आँखों से दोनों का सत्कार किया।

प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। आनंद ने खड़े होकर कहना प्रारंभ किया—'वयोवृद्ध, और वंदनीय परिषद! मेरे पिता की मृत्यु के कारण उनके स्थान पर मैं आज अपनी बहन को परिषद को सौंपने आया हूँ। पूजनीय परिषद इसे स्वीकार करे!'

नगरश्रेष्ठी, वैद्यराज, अम्बलक जेठ्ठक तथा अन्य श्रेणियों के महाजेठ्ठक लोग, प्रायः सब ही प्रौढ़ और वृद्ध पुरुष नीची आँखें किये बैठे थे। उनके हृदय व्यथित थे जिनमें अभी तक महानाम की मैत्री और प्रेम गूँज रहे थे। अंत में सभापति अभय खड़ा हुआ और बोला—'पूजनीय परिषद! स्वर्गीय लिच्छवी वीर की पुत्री आपके सम्मुख उपस्थित हुई है। यह है लिच्छवी परिषद के स्वातंत्र्य का प्रतीक! स्त्री हो या पुरुष यदि वह लिच्छवी है तो वह लिच्छवीगण और अपने गौरव को प्राण से भी अधिक मानता है और यह है

इस बात ज्वलंत उदाहरण ! लिच्छवी को वन्दन हो ! वन्दन हो, आत्मबलि देनेवाली आज की लिच्छवी कुमारी को—!' कहकर अभय व्यासपीठ से नीचे उतरा, और पाली के पास आया। नगरश्रेष्ठी ने भींगी पलकों और हँसते मुँह से विधिपूर्वक बोलने के लिए कुछ सूत्र पढ़े; किन्तु उससे और अधिक न बोला गया। तब अंतिम वाक्य अभय बोला—'पाली ! परिषद पूछती है कि तेरा मन अभी भी विचलित होता हो तो वैशाली छोड़ कर वनवास कर सकती है !'

'प्रवेणी-पुस्तक की आज्ञा है कि विचिलित मनवाला लिच्छवी नहीं माना जाता, मैं लिच्छवी हूँ।' पाली ने शांतिपूर्वक कहा।

'परिवर्तन के पहिले यदि कोई इच्छा अधूरी रह गई हो तो परिषद उसे पूर्ण करने देने के लिए प्रस्तुत है !' चोट खाने के समान अपमानित भाव का अनुभव करके अभय ने फिर कहा।

पाली कुछ रुकी, किन्तु कुछ सोच कर बोली—'मेरी कोई इच्छा अधूरी नहीं है !'

'तुम प्रसन्नतापूर्वक परिषद का निर्णय स्वीकार करती हो या दुःखी होकर ?'

'प्रत्येक लिच्छवी परिषद के निर्णय का अनुकरण करना ही जानता है; इसमें आंतरिक सुख-दुःख का प्रश्न ही नहीं।'

अंत में अभय ने इधर-उधर दृष्टि डाल कर राजाओं, उपराजाओं तथा अनुभवी योद्धाओं की ओर दृष्टि करके पूछा—

'परिषद इस विषय में और कुछ कहना चाहती है ? परिषद को संतोष है ?'

उपर्युक्त प्रश्न अभय ने तीन बार पूछा और परिषद को निरुत्तर देखकर आम्रपाली को देशनर्तकी घोषित की। शंखनाद हुआ और परिषद ने खड़े होकर पाली को सम्मानित किया।

पुनः अभय व्यास पीठ से उतर कर पाली के पास आया, उसका हाथ पकड़ कर रेणुका को बुलाया और बोला—'हे, वैशाली नगरी की श्रेष्ठ वारांगना ! पवित्र प्रवेणी-पुस्तक की आज्ञानुसार पूजनीय, वंदनीय परिषद आज से आम्रपाली को तुझे सौंपती है। तेरे बाद वैशाली की देशनर्तकी का पद इसे

मिले। इसे तू अपनी सब कलाओं में निपुण बना कि जिससे यह लिच्छवी योद्धाओं की प्रेरणामूर्ति बनकर, स्वदेश की सेवा करते हुए अंत में पितृलोक में विलीन हो जाय!'

इतना कहकर अभय ने आम्रपाली का हाथ रेणुका के हाथ में रखा, रेणुका ने पाली को अपनी ओर खींचा। सभा में नीरव शांति फैल गई। उस समय इधर-उधर देखने पर पाली को ज्ञात हुआ कि आनन्द वहाँ न था!

सभा के मनोरंजन के लिए वृद्ध रेणुका नृत्य के लिए खड़ी हुई, और वे सब प्रेक्षक, क्या हो गया, इसका विचार करने की अपेक्षा, क्या हो रहा है इस ओर ध्यान देने को उत्सुक हुए।

सभा विसर्जित होते ही पाली रेणुका को लेकर अपने प्रासाद में आई; उस समय रात हो गई थी। द्वार में प्रवेश करते ही व्याकुल-सी होकर रेवा से पूछा—'भैया कहाँ है रेवा? शयन-गृह में?....' इतना कहते ही रेणुका का हाथ छोड़कर पाली शयनगृह की ओर दौड़ गई। शयन-गृह में नगरश्रेष्ठी और अभिराम खड़े थे।

'दादा, भैया कहाँ है?'

'धीरज रख बेटी!....'

'दादा, भैया कहाँ गये, क्या हुआ? झट बोलो दादा!'

'तेरे भैया यहाँ नहीं है। और कभी लौटेंगे भी नहीं!'

'क्यों?....मैं इस महल में आई हूँ इसलिए?...दादा, मैं तो उनसे और आप सब लोगों के आशीर्वाद लेने आई हूँ...उसके बाद मैं यहाँ एक क्षण भी खड़ी न रहूँगी,...पर वे गये कहाँ?'

'बेटी...' नगरश्रेष्ठी कठिनाई से बोले—'आनन्द ने अपनी सारी स्थावर-जंगम सम्पत्ति तुझे सौंप दी है, यह महल अब तेरा है।'

'दादा, मुझे कुछ भी समझ में नहीं आता, मैं मूर्ख हूँ, दुःखी हूँ; मुझसे सच बात कह दो।

'बेटी, आनन्द ने संसार का त्याग किया है।'

'दादा!' पाली करुणार्द्र होकर चीख उठी, उससे खड़ा न रहा गया।

अभिराम उसके पास बैठकर कहने लगा—'बेटी, वह वेदांती के साथ गोतम-बुद्ध के संघ में श्रमण बनने के लिए चला गया है, उसका पीछा करना, या रोकना निरर्थक है; यह भोजपत्र पढ़ ले !'

पाली वृद्ध के हाथ से भोजपत्र लेकर पढ़ने लगी; उसमें पाली के लिए अंतिम आशीर्वाद था; उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

अभिराम और नगरश्रेष्ठी बाहर चले गये; केवल रेवा पाली के पैरों के पास जा बैठी; आज वह भी रो रही थी। वहाँ न रोनेवाला एक ही व्यक्ति था; वह थी दासी भद्रा।

(१६)

'महाराज तो खिलखिलाकर हँस पड़े ! तू कहे उसकी सौगन्ध लेने को तैयार हूँ संजय, तू कहे उसकी ! इतने हँसे, इतने हँसे कि मुझे भय हुआ कि महाराज समझ खो बैठेंगे ! किन्तु नहीं, कुछ भी नहीं, वे तो वैसे ही रहे.... संजय ! महाराज अब ठीक हो गये हैं।'

'महाराज यदि सचमुच समझ खो बैठते तो और अच्छा होता।....' संजय ने ब्रह्मदत्त की ओर देखे बिना कहा।

'संजय, मालूम होता है तू भी पागल हो गया है, मुझे तो पहले से ही विश्वास था कि तुझे महामंत्री का पद मिलते ही मस्तिष्क का रोग अवश्य लग जाएगा, और हुआ भी ऐसा ही, तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है !....'

'ब्रह्मदत्त, तेरी एक बात सच है।'

'मेरी तो सभी बातें सच होती हैं, पर तुम लोग तो मुझे हँसी में ही उड़ा देते हो !'

'मुझे इसी बात का भय है कि महाराज अभी तक वैसे ही हैं....ब्रह्मदत्त, आम्रपाली को हराने जाकर वे स्वयं हार गये हैं, अब वही हार उनकी घृणा का कारण हो रही है !'

'संजय, मैं तो यही सीधी गिनती जानता हूँ कि एक और एक दो होते हैं। महाराज को यहाँ आये दो महीने हो गये, ये दो महीने उन्होंने मदिरा के

नशे में ही बिता दिये हैं! रानियों और नर्तकियों ने उन्हें रिझाने का भरसक प्रयत्न किया पर वे अपनी बात से न डिगे! उनके धर्मगुरु गोतममुनि भी उनका मन आम्रपाली की ओर से फिरा न सके! किन्तु इस ब्रह्मदत्त ने, जिसके प्रत्येक शब्द में तुम्हें व्यर्थ प्रलाप और भीरुता की गन्ध आती है, आज एक ही शब्द से महाराज को हँसा दिया! सुना संजय? दो महीने के बाद पहली बार मैंने उनका सब दुःख, क्लेश, नीरसता और शोक मिटाकर हँसाया है! पूछ, किस तरह?'

'सदा की तरह आज भी रेवा की बात ही निकाली होगी।'

'मैं जानता हूँ मरते समय स्वर्गीय महामन्त्री अपनी सर्वज्ञता तुझे सौंप गये थे। अस्तु, उन्हें हँसाया तो सही न!'

'ब्रह्मदत्त, महाराज का हँसना हमारे लिए प्रसन्नता की बात नहीं, भय की बात है! उनकी उस हँसी के पीछे गहरा आघात छुपा हुआ है, जो मिटाया नहीं जा सकता। दिन-रात उन्हें वैशाली, लिच्छवी और आम्रपाली के नामों की रट लगी रहती है! उस आघात ने यदि क्रोध का स्वरूप धारण किया होता तो ठीक था, किंतु अब वह घृणा में परिवर्तित हो चुका है! शत्रुता घृणा में परिवर्तित होकर अपनी अंतिम अवस्था को पहुँच चुकी है! मैं महाराज को अच्छी तरह पहिचानता हूँ। ब्रह्मदत्त, उनका स्वस्थ होना कठिन है!'

'संजय, एक बात मुझे हमेशा विस्मय में डाल देती है!—मैं पूछता हूँ पाली में रूप के अतिरिक्त और है क्या? कुछ नही! तू कहे तो राजगृह में से ही उससे बुद्धिमान स्त्री जब चाहे ला सकता हूँ!'

'तू यही मानता है?'

'मैं तो मानता ही हूँ, पर एक दिन मेरी यह बात तुम सबों को माननी होगी! कुछ सोच तो सही; एक ओर सम्राज्ञी का पद, नरश्रेष्ठ पति और सारे देश का उद्धार है, और दूसरी ओर लिच्छवी समाज का निकृष्ट बंधन, निकृष्ट चाटुकारी और अत्याचारग्रस्त जीवन होते हुए भी पाली ने दूसरी बात ही अधिक पसंद की, इससे क्या ज्ञात होता है?...मैं तो एक और एक दो वाली गिनती में पूछ रहा हूँ!'

'मै भी दो महीनो मे यही प्रश्न पूछ रहा हूँ, उत्तर नही मिलता !'

'मिलेगा कैसे ? मुझसे पूछे तब न ! बाबा, एक बात हमेशा याद रखना कि प्रकृति ने जहाँ खुले हाथों सौंदर्य लुटाया है, बुद्धि को वहाँ से बहुत दूर रखा है; यही कारण है कि संसार में दिखाई देने वाली सभी सुदर वस्तुएँ मूर्खता-पूर्ण और घृणास्पद दिखाई देती है । संजय, पाली सुन्दर होते हुए भी बुद्धि-मान नहीं है, इसका अर्थ ही यह है कि वह घृणामयी है ! ....पाली ने जो मार्ग अपनाया है, वह यही बताता है ।....'

'मेरा मन यह बात नही मानता !'

'तेरा मन तो मेरी सभी बातो का निषेध करता है !....क्या सोच रहा है ?...सच कहता हूँ पाली बुद्धिमान नहीं है ।....'

'भले ही वह विदुषी न हो, भावुक ही सही, पर इतना तो कहना पड़ेगा कि पाली अद्भुत है: नही, वीरांगना है !'

'वैशाली की प्रत्येक वस्तु पर तू इतना रीझ गया है कि वहाँ का काला कुत्ता भी तुझे सुन्दर मालूम होगा ! पाली वीरांगना है ? क्या उसे डूब मरने के लिए कुआ न मिला, गंगा दिखाई न दी ? उस वीरागना से, शस्त्रास्त्र में पारंगत होते हुए अपने हाथ से अपना वध न किया गया, जो लाचार होकर नर्तकी बनी ?....पर सच तो यह है महामन्त्रीजी ! ये लिच्छवीगण अधर्मी हैं और इन अधर्मियों में पैदा होने वाली कन्या कभी भी अद्भुत वीरांगना नही हो सकती, समझे !....'

'नहीं, ब्रह्मदत्त नहीं....मेरा मन यह बात नही मान सकता ।...'

'हाँ, महाशय ! मै कब मना करता हूँ ! आपका मन मेरी बात मानने को कभी तैयार हुआ भी ?...पर सुन ले, आज महाराज के हँसने से मुझे शांति मिली है। यह बात निश्चित समझ कि वे पाली के साथ-साथ वैशाली को भी भूल चुके हैं ! और यह भी सुन ले कि कल महाराज स्वयं जीवककुमार भृत्य के साथ गोतममुनि के आश्रम में उनसे मिलने जाएँगे, अब तो विश्वास हुआ ?'

'नही ।'...संजय ने कहा ।

ब्रह्मदत्त खीझ कर वहाँ से जाने लगा, संजय कुछ सोचता हुआ उसे देखता रह गया—उसकी बुद्धि इसी दुविधा में थी कि महाराज आज हँसे क्यों? यही सोचता हुआ वह रंगमहल की ओर चला, दूर से ही उसे सुनाई दिया कि महाराज बिम्बसार हँस रहे थे। गाँधार के उस ओर से आई हुई नर्तकियों ने नृत्य आरम्भ किया। राजविदूषक बकुल उन विदेशी नर्तकियों के हाव-भाव को अँगुलीसे संकेत करके महाराज को हँसा रहा था। नर्तकियों का नृत्य, संगीत, यौवन मद और अभिनय मिलकर रंगमहल के वातावरण को उन्मत्त बना रहे थे। आज पुनः महीनों बाद रंगमहल का वातावरण जाग्रत हुआ। इतने पर भी संजय को विश्वास न हुआ; वह रंगमहल में न जाकर, बाहर ही खड़ा रहा। उसे लग रहा था कि रंगमहल की इन रँगरेलियों में भी महाराज का हृदय व्यथित है। अचानक पीछे से ब्रह्मदत्त ने उसे पकड़ कर, घबराहट में कान के पास मुँह ले जाकर जाने क्या बड़बड़ाया। खीझ कर संजय ने झटपट उसे एक थप्पड़ लगा दी, और खींच कर उसे अपने भवन की ओर ले गया। अपनी देहरी में पैर रखते ही संजय को ज्ञात हुआ कि ब्रह्मदत्त का कहना अक्षरशः सत्य था—रेवा आई थी।

संजय को देखते ही रेवा ने उठ कर नमस्कार किया, ब्रह्मदत्त को बाहर ही रख कर संजय ने द्वार बंद कर दिया और श्वास रोक कर पूछा;...'तू क्यों आई रेवा?'

इतने लम्बे समय के बाद रेवा राजगृह आई थी; आते ही सहसा संजय के साथ एकांत में बातें करते देख कर ब्रह्मदत्त ईर्ष्या से जल उठा। रेवा के इस व्यवहार से वह पहले उस पर जितना मोहित था, उतना ही चिढ़ गया। उसने पाँच क्षणों में, दाँत भींच कर और मुट्ठियाँ बाँध कर दस बार निश्चय कर लिया कि पहली दृष्टि में ही वह रेवा और संजय को मार डालेगा!

भीतर संजय शांतिपूर्वक रेवा से प्रश्न कर रहा था और रेवा उसी स्थिरता से, उसके प्रश्नों का उत्तर दे रही थी—

'अब मेरा वहाँ कुछ काम नहीं है....अब मैं वहाँ रह भी न सकूँगी!'

'रेवा, तू राष्ट्र के प्रति अपना कर्त्तव्य निवाहने के लिए गई थी!'

'पर इसके साथ मै मनुष्य भी हूँ, आप भूल रहे है कि मै एक स्त्री हूँ, अब महानाम ने प्रासाद में रहना मेरा कर्त्तव्य नही !'

'क्यों ? क्या पाली कुछ समझ गई ? क्या....'

'नहीं, ऐसी कोई बात नही है !'

'तब ?'

'पाली अब नर्तकी है। नर्तकी के घर मे दूसरे गुप्तचर भी अपना स्थान बना लेने की तैयारी कर रहे हैं इसलिए अब मेरा वहाँ रहना व्यर्थ है !'

'रेवा, सच कह पाली कैसी है ?'

'यह न पूछो; पाली अद्भुत है, इसके अतिरिक्त और कुछ कहने को नही रहता ! महाराज, मगधराज की गुप्तचर बनकर मै देश-विदेश में घूमी हूँ, असख्य स्त्रियों के सम्पर्क में आई हूँ पर आज तक मैने. पाली जैसी कोई स्त्री न देखी; पाली अनूप है, अपूर्व है ! वह प्रातःकाल के पहिले उठती है और कुछ पवित्र सूत्रों का स्मरण करके नृत्य और संगीत में विभोर हो जाती है ! प्रहर पर प्रहर बीतते जाते हैं; सूर्य और चन्द्रमा उसे विश्रांति लेने का आग्रह करते हैं पर उसे तो समय की कुछ सुध ही नही रहती; जब तक आँखें अपने आप मुँद न जाएँ वह नृत्य के अध्ययन और अभ्यास में लगी रहती है। महाराज, पिता के वचनों को सिद्ध करने के लिए, देश के लिए किया हुआ पाली का बलिदान देवताओ को भी लज्जित करता है। पाली के लिए आप जो कुछ भी सोचेगे वह झूठा होगा। पाली के हृदय में, उसके अणु-अणु में महाराज के लिए अपरिमित प्रेम है। उसने एक लिच्छवी कन्या के रूप में, वैशाली की आज्ञा के सम्मान भर के लिए, अपने पिता और देश की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपना हृदय कुचल डाला है; उस कुचले हुए हृदय को देखने का धैर्य मुझमें नही रहा, इसीलिए मैं यहाँ चली आई हूँ !'

'तू क्या कहती है रेवा ? तब पाली का वह धिक्कारना ? जो जो घटनाएँ हुई वे...'

'वे सब झूठी हैं महाराज, सब झूठी! वह केवल दिखावा था, कठपुतलियों की तरह झूठा ! महाराज को अभिमान था कि उनके शब्द और भाव कोई समझ

नहीं सकता, पर पाली ने हृदय के भावों को छुपाकर, मुख पर कुछ दूसरा ही भाव दिखाने के अभिनय में महाराज को बुरी तरह हराया है। पाली महान नटी है, महाराज नहीं !...उसने जो कुछ महाराज से कहा वह बिलकुल झूठा है, मिथ्या है !...महाराज, अब मुझे क्षमा करें ! इन राजकीय दावपेचों से दूर रहकर अब कुछ दिन अपने भोले ब्राह्मण के साथ रहने की मुझे आज्ञा दीजिए।

संजय ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया; वह रेवा के इस खेद का कारण समझ गया था ! पाली और बिम्बसार के विषय में जो आशंकाएँ उसके मस्तिष्क में घूम रही थीं वे सब सच निकलीं। महामन्त्री ने उत्तराधिकार के रूप में जो दूरदर्शिता और कल्पना दी थी वह आज इस कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। जाते-जाते रेवा ने फिर कहा—'महाराज, एक बात न भूलें, कि महाराजा यह बात बिल्कुल जान ने न पायें, उनका हृदय पाली की ओर जरा भी न खिंचे ! पाली के लिए उनके हृदय में जितनी घृणा है उसे और न बढ़ने देना चाहिए ! पाली यह नहीं चाहती कि उसका पति पाली के पीछे पागल होकर प्रेम की निराशा में अपना जीवन बिताये, और पीछे से इसके लिए उसके वंशजों को लज्जित होना पड़े !'

'वही होगा रेवा, अब तू अपने ब्रह्मदत्त से क्षमा माँग ले ! संजय ने द्वार खोलते हुए रेवा से कहा। ब्रह्मदत्त ने इतनी देर क्रोध में और खीझ कर लाल-पीला हो जाने के बाद रेवा को फटकार ने के लिए जो कुछ सोच रखा था, वह उसे देखने पर बोल नहीं सका। वह इतना ही कह सका—मुझे किसी की क्षमा की आवश्यकता नहीं, मुझे किसी को क्षमा करना भी नहीं है, मैं होता कौन हूँ ? कोई नहीं !'...इतना कह कर उसने संजय की ओर से मुँह फिरा लिया।

किंतु रेवा तो बिलकुल समीप आकर खड़ी थी, उसकी दृष्टि से दृष्टि मिलाते ही वह ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध सब कुछ जाने कहाँ विलीन हो गये। रेवा का प्रेम हृदय में ज़ोरों से हिलोरें लेने लगा। बेचारा भोला ब्रह्मदत्त यह नहीं जानता था कि संजय ने रेवा को वैशाली की किसी गुप्त बात का पता लगाने के

लिए वहाँ भेजा था। रेवा चतुर स्त्री थी और अब तक उसने गुप्तचर बनकर राज्य की बहुत सेवा की थी। बच्चे को धमकाने के ढँग से नेत्र विस्फारित करके रेवा ने ब्रह्मदत्त से कहा—'चलो, घर चलो !' वहाँ मुझे मार डालने के लिए तलवार मिल जायगी !'

'मार डालने की बात कौन करता है !'...इतना कहते-कहते तो ब्रह्मदत्त मूसलाधार वर्षा मे मिट्टी के ढेले की तरह गल गया, क्योकि अब रेवा ने उसका हाथ पकड़ लिया था। वह रेवा की अँगुली पकड़ कर बच्चे की तरह उसके साथ-साथ चलने लगा। संजय अपने भोले मित्र को देख रहा था, वह धीरे से बोला—'ब्रह्मदत्त कहे या बिम्बसार, प्रेम के साम्राज्य में तो सब बराबर है....'

'संजय, संजय ! भूल हुई, महामंत्री कुछ सुना ?'

संजय ने चौंककर पीछे देखा कि बिम्बसार एक सुन्दरी परिचारिका के कंधे-पर हाथ रखे उसके भवन मे प्रविष्ट हो रहा था। संजय ने झट वहाँ जाकर अपने कंधे पर महाराज का हाथ रखा; परिचारिका बाहर चली गई। बिम्बसार मदिरा के मद में चकचूर था, शय्या पर गिरते ही बड़बड़ाने लगा—'सुना संजय रंगमहल मे अभी ही एक दूत आया है, उत्तर कुरु से मँगनी आई है ! कहते हैं, कहते हैं...'

कहते-कहते तो वह इतनी जोर से हँसा कि संजय भी घबरा गया।

'कहते हैं, संजय, हमारी राजकुमारी का पाणिग्रहण करो, नहीं तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, सुना संजय ! विवाह करने के लिए भी बलात्कार...'

कह कर वह फिर हँसने लगा, किंतु संजय को चुप देखकर, चुप हो गया और बच्चे की तरह जैसे अपना दोष मानते हुए बोला—'बुरा लगा महामंत्री ? तुम आज्ञा दो तो विवाह करूँ, न दो न करूँ....हम तो बस विवाह करना जानते है, यह तो तुम अधिक जानते हो कि महाराज को क्या करना चाहिए ! पर इस तरह मुँह उतार कर तुम्हारा बैठना मुझे नहीं सुहाता !'

'महाराज, मुझे दुःख किस बात का ? आपने कही यह तो बहुत प्रसन्नता की बात है, आज सम्राट कितने प्रसन्न है....मागधी प्रजा महाराज की यह हँसी देखने के लिए कितनी तरस रही है ? मैं क्यों दुःखी बनूँ प्रभु ?'

'मैं मानता हूँ तेरे मुँह पर एक बात होती है और मन में दूसरी ही. महामन्त्री है न ! तू निराशा से ही जीता है ! जी; उसीमें सुखी रह !'

संजय ने बात सुनने का बहाना करके एक रेशमी तकिया उसके सिर के नीचे रख दिया और पास ही एक नीची बैठक पर बैठ कर शान्तिपूर्वक बोला—'क्या आज्ञा है ?'

संजय के इस प्रश्न में इतना अर्थ भरा था, इतना मर्म था कि नशे में होते हुए भी बिम्बसार का मुँह उतर गया। संजय उसका महामन्त्री होने के साथ ही साथ बचपन का मित्र भी था। वह जान गया कि संजय उसके मन की बात समझ गया है, वह उसके हृदय की वेदना और निराशा को अच्छी तरह समझता है। क्या दूत रंगमहल में महामन्त्री की आज्ञा बिना पहुँच गया होगा ?...यह जानते हुए भी वह संजय के पास हँसी की बात निकाल कर नशे में ही वहाँ से क्यों चला आया, यह बात संजय सकारण जानता था। बिम्बसार ने हृदय की भावनाओं को और अधिक छुपाना व्यर्थ समझा। निराशा की ठंडी साँस रोकते हुए भी मुँह से निकल ही गई। उसने पूछना चाहा कि पाली के बारे में कुछ सुना है ?...पर बोला नहीं गया। सिर झुका लिया और मद्यपात्र हाथ में से धीरे से नीचे गिरा दिया। तब रेशमी तकिए पर सिर डाल कर थके हुए स्वर में बोला—'क्या आज्ञा है महामन्त्री ?....'

'प्रभु, आप बहुत ही...'

'मेरी प्रशंसा करना चाहता हो तो बोलना बंद कर दे !'

'देव, दुर्बलता सब के हृदय में होती है, पर आप जैसे सम्राट के लिए उसे नष्ट करना असम्भव नहीं !....'

'मैं दो महीने से अपने मन को यही बात समझाता रहा हूँ, संजय !'

'अन्त में यही समझ आपके लिए सुखदायी होगी !'

'होगी भी ?'

'होनी ही चाहिए....'

'संजय, स्त्री जैसी विश्वासघातिनी...'

'महाराज !'

'क्या है ?'

संजय जान गया था कि बिम्बसार किस स्त्री के बारे में बोलना चाहता है, पाली का नाम न आ जाय इसलिए उसने मुस्कराकर कहा—'आपने कल मुझे वचन दिया था कि आप स्त्री के विषय में कुछ न कहेंगे ?...'

'संजय, अब मैं समझा, मैं महान नहीं हूँ, तू मुझे महान बनाना चाहता है ! कल मैंने मदिरा के नशे में कह दिया होगा कि मै स्त्री के विषय मे कुछ न कहूँगा, यही बात आज मदिरा के नशे में तू मुझसे मनाना चाहता है ! अच्छा, मान लेता हूँ ! पर कल क्या मानूँगा ! कल मै....'

'महाराज, इतनी निराशा आपको शोभा नही देती !' संजय आवेश मे बोल उठा ।

बिम्बसार ने उसकी ओर ध्यान न दिया वह कहता ही गया—

'संजय, जानता है मदिरा में एक महान गुण है ! नहीं, तू नहीं जान सकता, पिये तब न ? जो पीनेवाला निर्धन भी हो तो पीने के बाद वह समझता है कि 'मैं महाराजा हूँ,' और मुझ जैसा राजा पीता तो समझता है—'मै कुछ नहीं हूँ, उसे मार्ग पर चलनेवाला साधारण मागधी बनना अच्छा लगता है ! वह रानियाँ नही चाहता, ऐश्वर्य नही चाहता, रूप और यौवन नहीं चाहता; चाहता है एक साधारण मागधी को उपलब्ध स्वाभाविक सुख। मदिरा पी कर स्वप्न-लोक में विचरण करता है, और कुछ समय तक वह स्वप्न उसके लिए सत्य बन जाता है !'

'महाराज, स्वप्न को मिटते देर नही लगती ! आप जो शांति चाहते हैं वह स्वप्न में नहीं मिलेगी, जेतवनाराम मे प्राप्त होगी !'

'तू शाक्य-मुनि की बात करता है ?'

'हाँ महाराज, गोतम बुद्ध यहाँ पधारे है, कल आप वहाँ चलिए; उनके सानिध्य से आपको शांति मिलेगी ! वे आपके मित्र और सम्बन्धी हैं !'

'और मुझसे पाँच वर्ष बड़े हैं यह कहना क्यों भूल गया ?'

'हाँ महाराज, तथागत वर्षावास यहीं बिता रहे हैं; इन दिनों आप उनसे एक बार भी नहीं मिले !'

'नहीं मिला ?'

'एक बार भी नही, महाराज !'

'क्या कह रहा है ?'

'हाँ महाराज दो महीनों के बाद आप आज ही रंगमहल से बाहर निकले हैं !'

'ऐं !'

'कल उनका वर्षावास समाप्त होगा और तथागत अवन्ती की ओर प्रयाण करेंगे।'

'कल मैं शाक्य-मुनि से मिलूँगा, उन्हें रोकूँगा और कहूँगा कि, संजय कहता है—शाक्य-मुनि मदिरा से अधिक प्रभावशाली हैं....तब शाक्य-मुनि कहेंगे....कि....'

नशे में गिरते हुए महाराज के पैरों को संजय ने शय्या पर रखा। महाराज निद्रामग्न हो रहे थे; संजय का संकेत पाकर परिचारिका भीतर आई और रत्नजटित मोर पंखे से महाराज को हवा करने लगी।

संजय जब शयन-गृह से बाहर आया तो उसकी आँखे आँसुओं से छलछला रही थीं। बहुत प्रयत्न करने के बाद महामन्त्री हृदय की दुर्बलता को दूर कर सके। शयन-गृह से बाहर आकर उसने द्वार बन्द किये और आँसू पोंछकर वही बैठ गया।

आम्रपाली

[दूसरा भाग]

(१)

आज सारी वैशाली नगरी आनन्द में नृत्य कर रही थी. आश्विनी पूर्णिमा होने के कारण आज वैशाली का वार्षिक-महोत्सव था। यह केवल लिच्छवियों के लिए ही नहीं, बल्कि वज्जिभूमि के समस्त निवासियों के लिए शुभ दिन था, जिसे मनाने के लिए मुख्य लिच्छवियों के अतिरिक्त दूसरे वज्जि भी वैशाली में आते थे। आज देश की समस्त प्रथम श्रेणी की नर्तकियाँ, नट संगीतज्ञ और योद्धागण वहाँ एकत्रित हुए।

किन्तु आज वैशाली के लिच्छवियों में सदा से अधिक चंचलता दिखाई दे रही थी, क्योंकि आज पाली संथागार में अपना सर्वप्रथम नृत्य दिखाएगी और उसके बाद समस्त वज्जियों के सम्मुख महाउद्यान में अपना नृत्यमय अभिनय प्रदर्शित करेगी।

आज सदा की तरह संथागार राजनेताओं और समाजनेताओं से भरा हुआ नहीं, वहाँ केवल युवकों की सभा थी। प्रातःकाल से ही वैशाली के रसिक नवयुवक संथागार में आसन पाने का प्रयास करने लगे।

सूर्योदय के ठीक दो घड़ी पश्चात नृत्य प्रारम्भ करना निश्चित हुआ था। पाली पाँच महीनों के बाद जनसमूह के सम्मुख पुनः आनेवाली थी। प्रारम्भ से कुछ ही पहिले अभयराज वृद्ध रेणुका से कह रहा था—'एक सहस्र

कहापण* और एक सहस्र पाद से तुझे अभी पुरस्कृत कर दूंगा'...कहते-कहते उसने पास खड़े हुए दास की ओर आँखें घुमाई और बोला—'इसके अतिरिक्त इतनी ही रकम कल और भेज दूंगा...पर आज की रात मेरी होगी !'

रेणुका कुछ देर तक अभय की ओर एकटक देखती रही, तब ओठों पर मृदुहास्य लाकर बोली—'अभयराज ! याद है, मेरी प्रथमरात्रि को तुमने पाँच सहस्र कहापण दिये थे ।'

'आज वह समय याद करने की आवश्यकता नहीं है !'

'मुझसे भूल हुई ! उस समय आप युवक थे, आज आपका 'मन' युवक है !....'

'रेणु, मै अपना निश्चय पूरा किये बिना नहीं रहता; आज तू उसे पूरा करेगी !'

'जी नहीं; उसका पूरा होना पाली पर निर्भर है ।'

'सब से पहले मेरा अधिकार है क्योंकि मुझसे पहले यहाँ कोई नहीं आया और किसी ने अभी तक मुझसे अधिक मूल्य नहीं दिया ! रेणुका यह न भूलना कि अभी मैं वही योद्धा हूँ और अभी तक मैंने शस्त्रों का त्याग नहीं किया है !...'

इतना कह कर दास को थैली वहीं रख देने का संकेत करके वह जाने लगा; रेणुका ओंठ चबाती रह गई । उसकी प्रबल इच्छा हुई कि अभय के पीछे दौड़कर वह उसकी पीठ में कटार भोंक दे; किन्तु इस शुभ दिन को यह कार्य आपत्तिजनक समझकर मुट्ठियाँ बाँधे वह घर में चली गई । वह जानती थी कि कोई भी योद्धा देशनर्तकी के द्वार से अकारण ही लौटकर नहीं जाता।

संथागार की सभा की घड़ी आ पहुँची । प्रत्येक प्रेक्षक श्वास ऊँचा करके

---

* कहापण, पाद, और मास ये तीन उस समय में चलनेवाले सिक्के थे; पाद, कहापण का चतुर्थांश होता था । सुवर्ण और निष्क स्वर्णनिर्मित थे। इसके अतिरिक्त 'कंस' और 'काकणिका' नाम के सिक्के भी प्रचलित थे।

विस्फारित नेत्रों से एकटक द्वार की ओर देख रहा था। शंख, मृदंग, वीणा, भेरी, वंशी इत्यादि से सुसज्जित वाद्यसमूह 'तूरीय' तैयार था। सभापति अभयराज आज युवकों के बीच में बैठा था; इतनी देर चुप रहने के बाद अब वह प्रसन्नता से खिल उठा था, क्योंकि उसने जो कुछ सोचा था वह आज पूरा होने जा रहा था। अपनी सफलता के गर्व से वह अभिमत्त हो रहा था; केवल प्रतिस्पर्द्धी युवकों का भय था; इसके लिए भी उसने कुछ निर्णय कर लिया।

कई दर्शकों को शंका थी कि पाली इतने दिनों में म्लान और दुर्बल हो गई होगी; कई लोग इसके विपरीत अनुमान कर रहे थे। पाली के लिए दो तरह के मत न थे किन्तु उसके नृत्य के बारे में लोग अलग-अलग अनुमान लगा रहे थे। सब ही व्यक्ति पाली पर सब से प्रथम दृष्टि डालने को लालायित हो रहे थे कि पाली वहाँ आ गई। आते ही उसने प्रत्येक को विमूढ़ बना दिया।

उस समय पाली मानुषी नहीं, अप्सरा ज्ञात होती थी। मानों उसके सौन्दर्य की कल्पना करके ही वे वस्त्राभूषण तैयार किये गये थे। पुष्पाच्छादित और सुव्यवस्थित घूँघरवाली अलकें, काजल से अंजित आँखें, और तरह-तरह के सुगंधित प्रलेपों से महकती हुई उसकी देहलता ने प्रथम-दृष्टि में ही दर्शकों को मदमत्त करना चाहा। नागिनी की कुंडली की तरह बँधा हुआ जूड़ा और ललाट पर की तिलकबिंदी ने दर्शकों को इतना विमुग्ध बना दिया कि अभय की वह अतृप्त पाशविकता भी निमिष भर के लिए कुंठित हो गई और उस विशुद्ध सौन्दर्य को निहारने में वह अपनी सुध-बुध खो बैठा !...पाली की आँखों या ओठों पर प्रसन्नता अथवा उत्साह परिलक्षित नहीं हो रहा था, केवल उसका देवोपम सौन्दर्य अपने सोलहों शृंगार में सज्जित होकर दर्शकों की आँखों को अतिरंजित कर रहा था। उसके मुख पर पूर्ववत् गर्व था, वही मद और निर्भयता थी। संगीत प्रारम्भ हुआ और जब पाली के चरणों में लिपटे हुए स्वर्ण-घुँघुरुओं ने मृदग की ताल पर थिरकना शुरू किया तो सभा सब से अधिक स्तब्ध हुई।

नाचते-नाचते पाली ने अपने कुँकुमरंजित पदों की विशिष्ट कला के द्वारा लिच्छवियोंकी विजयध्वजा पर चिह्नित, लिच्छवियों का प्रतीक-चिह्न धरती पर चित्रित कर दिया। पाली के ताल, हाव-भाव और अंगपरिचालन के साथ संगीतविशारद संगीतज्ञ भी अपना सिर हिलाने लगे। पाली के इस चमत्कार में किस शक्ति का हाथ था यह तो कोई नहीं जान सका पर इतना निश्चत था कि वह नृत्य श्रेष्ठ कोटि का था; मानों पाली ने नृत्य ही के लिए जन्म लिया हो! धीरे-धीरे नृत्य की गति तेज़ होने लगी और उसने स्थान की मर्यादा को तोड़ दिया, एक के बाद दूसरी पंक्ति के क्रम से पाली प्रत्येक प्रेक्षक के पास से नाचती हुई निकल गई। वे दर्शक भी साधारण न थे, उन्होंने अनेकों नृत्य अब तक देख डाले थे, किन्तु यह नृत्य सब से अद्भुत था। प्रेक्षक जान न सके कि नृत्य समाप्त कब हुआ; अपने प्रथम नृत्य मे ही पाली ने उन्हें इतना विमूढ बना दिया था कि जब रेणुका को लेकर पाली का रथ महाउद्यान की ओर अदृश्य हो गया तब प्रेक्षकों को ज्ञात हुआ कि पाली सभामंडप में न थी।

'बेटी, प्रथम उपहार लेने के लिए भी खड़ी न रही ?' रेणुका ने चलते हुए रथ में बोलना प्रारम्भ किया।

'माँ, उपहार लेने के लिए मुझे खड़ी न रहना होगा, उपहार देनेवाले खड़े रहेगे !'

'तू झूठ नही कहती, पर बेटी, आज का नृत्य तुझे किसने सिखाया ? मै तो इसे जानती भी नहीं !'

'लिच्छवियों की सभा मे पैर रखने के बाद देशनर्तकी को सीखने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता; अपने आप उसे नये-नये नृत्यों की प्रेरणा होती रहती है !'

'झूठ कहती है, तू !'

'हाँ, आंधा झूठ, और आधा सच है ! इसलिए तो यहाँ आई हूँ।'

'यहाँ ? अरे, तू जा कहाँ रही है ? महाउद्यान तो दाहिनी ओर रह गया !'

'वनविहार करने जा रही हूँ !'

'वन विहा.... र, बेटी, नर्तकी के लिए शरीर की रक्षा

मैं जानती हूँ मा ! जानती हूँ कि यह शरीर देश का है पर क्या करूँ !'

बीते पाँच महीनों में अनुभवी रेणुका ने पाली को देशनर्तकी के जीवन की अनेक रहस्य-कुंजियाँ बता दी थीं, जिससे कि उसके जीवन में घटने वाली निराशा, घृणा, और विराग अधिक समय तक टिक न सके। रेणुका ने पाली को उन स्थानों से सावधान कर दिया, जहाँ उसने अपने बीते जीवन में ठोकरें खाई थीं। उसने पाली को समय और संयोगों में तद्रूप हो जाने में निपुण कर दिया था। वृद्ध रेणुका ही पाँच महीने पहिले की नीरस पाली और आज की पाली में परिवर्तन कर पाई थी। पति, पिता और बंधु के जाने के बाद यदि रेणुका न मिली तो बहुत संभव था कि पाली भी इस संसार से प्रयाण कर देती; रेणुका ने ही उसे सहसा आये हुए दुःखों का सामना दृढ़ता से करना सिखाया; वह पाली की नस-नस से अवगत थी। सचमुच वह पाली की माँ थी। किन्तु उसने सोचा न था कि पाली संथागार के नृत्य में इतना उत्साह दिखाएगी। पाली ने वहाँ इतनी प्रचण्ड स्फूर्ति से नृत्य किया मानों कोई भैरव या वैताल उसके शरीर में संचरित हो गया हो और वही अब उसे बलात् वनविहार के लिए खींच लाया हो। रथ सहसा रुक गया।

पाली रथ में से उतर कर एक आम्रवृक्ष की ओर बढ़ी, तब ही रेणुका को सुध आई कि पाली उसे लिच्छवियों की श्मशान भूमि में ले आई थी। पाली जिस वृक्ष की ओर जा रही थी, आज से पाँच मास पूर्व उसीके नीचे महानाम की मृत देह सुलाई गई थी और वन के गोचर और अगोचर प्राणियों ने उसका भक्षण किया था। उसी वृक्ष की जड़ में महानाम की खोपड़ी और अन्य अस्थियाँ गाड़ी गई थीं। पाली ने फूल चढ़ा कर प्रणाम किया और आकाश की ओर मुँह करके आँखे मूँद कर बोली—

'स्वर्गीय पिता ! आज आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई है। जिस संथागार में आपका प्रत्येक शब्द सत्य हो कर रहता था, वहीं अब आपके अंतिम शब्द भी सत्य हुए हैं ! पिता, आप निश्चिन्त रहें, पाली जीवन भर लिच्छवियों की सेवा करेगी ! पितृआत्मा तृप्त हो, स्वस्थ हो; मेरा पुण्य तेरे उर्ध्वगामी पथ को प्रशस्त करे ! जय हो, पुरुषसिंह ! लिच्छवियों के पिता, जय हो !'

अंतिम शब्द ऊँचे स्वर में बोले जाने के कारण रेणुका ने सुन लिये; पाली के निकट जा कर वह चकित हो गई। पाली के कपोलों पर आँसू की धारा बही जा रही थी; स्वयं महानाम की तनुजा न होने का ज्ञान होते हुए भी, आज उसके वंशज होने का कर्तव्य सफल हुआ। उसका मुख, सारी देह पुलकित हो गई, मानों उसकी आत्मा को घोटने वाला बन्धन सदा के लिए दूर हो गया हो। अब रेणुका ने जाना कि संथागार के उस नृत्य के पीछे कौन-सी प्रेरणा थी। पाली ने आँखें खोली, रेणुका ने बहुत स्नेह से उसके आँसू पोछे। पाली बोली—'माँ, अब तू यहाँ से निश्चित होकर चली जा, अपना जीवन सार्थक कर आज से मैं तेरा स्थान ग्रहण करती हूँ, मैं उसे अच्छी तरह सम्हाल लूंगी!'

'नहीं बेटी, अभी मेरे जाने का समय नहीं हुआ, पाँच महिने बाद होगा!'

'पाँच महीने!' पाली ने सिर झुका लिया; रेणुका उसका हाथ पकड़ कर रथ की ओर ले गई।

महाउद्यान वज्जियों से भर गया था। अपने-अपने विविध शृंगारों में सज कर कन्याएँ, युवतियाँ और वृद्धाएँ वहाँ आ पहुँची थी। मद्यप्रिय युवक और यौवन-प्रिय वृद्ध लोग मस्त हाथियों की तरह झूम रहे थे। महाउद्यान आज भोग विलास की भूमि बन गया था। वहाँ वज्जियों का ऐश्वर्य और आनन्द अपनी चमक से संसार को चकाचौंध कर रहा था क्योंकि संसार की एक श्रेष्ठ वस्तु वे आज अवश्य देखने वाले थे, चाहे वह उन्हें प्राप्त न हो!

सहसा पाली उस नन्दन-वन में प्रविष्ठ हुई; कुछ समय के लिए वहाँ का कोलाहल बहुत बढ़ गया। आज पाली को देखने के लिए दूर-दूर से रसिक वज्जि और लिच्छवीगण आए थे। पाली आकर एक आम्रवृक्ष के नीचे खड़ी हो गई; वृक्ष के आस-पास पत्थर की गोल बैठकें सजाई गई थी। यह वही आम्रवृक्ष था जिसके नीचे वर्षों पहले अभिराम ने पाली को पाया था!

संगीत प्रारम्भ हुआ; तत्क्षण कोलाहल शान्त हो गया। पाली के प्रथम अंग परिचालन ने ही दर्शकों को विमुग्ध कर लिया। पाली के कलापूर्ण अंगों का संचालन, देहसुषमा का आकर्षक दर्शन, आँखें, ओठ, हाथ और पैर सब उस नृत्यमय अभिनय को उच्चतर बना रहे थे। धीरे-धीरे दर्शक लोग नृत्य

के साथ-साथ ताल देने लगे, उसके सम विषम पर हर्षनाद होने लगा; इस तरह एक नृत्य पूरा हुआ।

नृत्य के समाप्त होते ही प्रशंसा की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। रेणुका घबरा गई, क्योंकि पाली को तत्क्षण दूसरा नृत्य प्रारम्भ करना पड़ा; समूह के आमन्त्रण को अस्वीकार करना गिरते हुए आकाश को रोकने जैसा था। दूसरा नृत्य प्रारम्भ हुआ; उसके बाद भी उसी आनन्द-ध्वनि की गूँज हुई। पाली को तीसरी बार नृत्य प्रारम्भ करना पड़ा; दूसरा उपाय न था। रेणुका व्याकुल हो कर इधर-उधर दौड़ने लगी और दर्शकों को समझाने लगी। तीसरा नृत्य भी समाप्त हुआ। पुनः एक बार प्रशंसा और प्रसन्नता की मिश्रित ध्वनि गूँज उठी।

पाली के अंग-प्रत्यंग अतीव परिश्रम से शिथिल हो गये थे; उसकी कोमल देह पर पसीने की धाराएँ बहने लगी थी। उस हर्षध्वनि में पाली चौथी बार फिर खड़ी हुई, किन्तु नृत्य के प्रारम्भ में ही पहली चाल पूरी होते न होते वह नीचे गिर गई।

सहसा महाउद्यान में हाहाकार मच उठा। रेणुका चीखी और दौड़कर पाली को अपनी गोद में ले लिया। आज का महोत्सव पाली के अनुपम नृत्य से प्रारम्भ होकर, नृत्य के बाद इस अंतिम घटना से मंद हो गया, किन्तु पाली आज से वज्जियों की दृष्टि में भूत और भविष्य के लिए अद्वितीय नर्तकी बन गई।

कुछ देर बाद पाली सुध में आई और सब से पहिले उसकी दृष्टि अभय पर पड़ी—वह अपने सदा के विषमय हास्य के साथ पाली के पैरों के पास खड़ा था।

महाउद्यान से अपने प्रासाद में आने के बाद भी पाली बहुत देर तक यों ही निश्चेष्ट पड़ी रही। अभय साथ ही था, रेणुका ने उसे शयन-गृह से बाहर आने का संकेत किया, और शयन-गृह के द्वार बन्द करा दिये। तब वह अभय के साथ उद्यान में आकर बैठी।

'रेणु, तुझे याद है, पाली के इस महल को एक हज़ार युवकों ने घेर लिया था!'

'और आपने उन्हें समझाकर लौटा देने के लिए दो प्रहर तक कठिन

प्रयत्न किया यह भी मैं जानती हूँ !'

'अब इसका मूल्य जब मिले तब सही! पर आज यहाँ रहने का अधिकार मेरा है !'

'अभयराज, सुनो !'

'कह, क्या तू भी मुझे उपदेश देना चाहती है ? महानाम भी ऐसा ही करते थे ! पर मैं सदा इन उपदेशकों से घृणा करता आया हूँ; मैंने निश्चय किया है कि सब से पहले पाली को मैं पाऊँगा और पाकर रहूँगा !'

'सब से पहिले ?' रेणुका ने कटाक्ष किया ।

'हाँ !' पूरे विश्वास के साथ वृद्ध अभय ने उत्तर दिया ।

रेणुका हँस पड़ी, बोली—'अभयराज ! आपने सदा ही अजित होने का दम्भ किया है; जिस समय मुझे देशनर्तकी बनाई, तब तुममें जितनी नीचता, उच्छृङ्खलता और पशुता थी वह आज सहस्र गुनी बढ़ गई है ! ईश्वर जाने, प्रकृति ने उन्हें बढने भी कैसे दिया ?...पर अब बुढापे मे न सुना जाता हो तो ऊँचे स्वर से कहती हूँ, सुन लो—पाली ने तुम्हारे मुँह पर सबल थप्पड़ लगाई है ! तुम्हें उसने हराया है, विजित किया है—पाली कुमारी नहीं है !'

'रेणु, मुझे मूर्ख बनाने की बात न कर !'

'नही, महाशय ! आप जो मूर्ख बन चुके हैं उसकी बात कह रही हूँ !'

'शयन-गृह के द्वार बन्द कर दिये हैं, इसीलिए कहती है ?'

'नही, वे तो आप अधिकार से खुलवा सकते हैं, पर अब आपको पाली नही मिल सकती !'

'देखता हूँ ।'

'देखने की नही, सुनने की बात है— सुन लो !...पाली शयन-गृह में अकेली नहीं है, उसके शरीर में एक दूसरा प्राणी भी है, जो ठीक पाँच महीनों के बाद सबों को दर्शन देगा...और तब ही वृद्ध और अजित अभयराज जान पाएँगे कि सब से पहिले पाली को पाने वाला पुरुषसिंह कोई दूसरा ही है ! इसीलिए मैंने द्वार बन्द किए हैं; पाँच महीने बाद खुलेंगे, नमस्ते ! ...'

रेणुका ने वाक्य पूरा भी न किया था कि द्वार खुल ही गये और पाली

बाहर निकली; वह प्रासाद के प्रवेश-द्वार की ओर दौड़ी जा रही थी। रेवा और अन्य दास-दासियाँ भी उसके पीछे दौड़ने लगे; अभय और रेणुका का भी विस्मित होकर, दौड़ते हुए प्रवेश द्वार तक आ पहुँचे। तब कहीं उनकी आँखें खुलीं—रक्तरञ्जित तलवार हाथ में लेकर सुधीर द्वार के बीचोंबीच खड़ा था; बलात् रोकने का प्रयत्न करने में दो युवक कट चुके थे और यदि पाली वहाँ दौड़ती हुई न जा पहुँचती तो संभव था और दो-चार को वह सदा के लिए सुला देता। किन्तु पाली को आई देखकर उसका क्रोध से काँपना अचानक रुक गया और वह स्थिर दृष्टि से एकटक पाली को देखने लगा। वह मुस्कराकर उसकी ओर बढ़ी; सुधीर ने तलवार फेंक दी और मुँह फिराकर दूसरी ओर जाने लगा। पाली जान गई थी कि सुधीर उसका पागल प्रेमी है। द्वार के आस-पास की कानाफूसी और रोने की चिल्लाहट से उसे ज्ञात हुआ कि सुधीर अपने गाँव से यहाँ भाग आया था और पाली के प्रासाद में प्रवेश करते समय रोकने-वाले के हाथ से तलवार छीनकर दो अन्य रोकनेवालों के प्राण ले लिए थे। कुछ देर तक पाली सुधीर को देखते रहने के बाद बोली—

'रेवा, आज से हमारे महल में इस पागल के रहने की व्यवस्था कर दे!'

इतना कहकर धीरे-धीरे वह शयन-गृह की ओर चली गई; न उसने अभय को देखा, न रेणुका को।

रात हो गई थी। पाली व्याकुल होकर शय्या में करवटें बदल रही थी; उसका मस्तिष्क इसी दुविधा में था कि क्या नियति ने उसके भाग्य में अपने प्रेमी को दुःखी देखना ही लिखा है? वह पागल सुधीर और बिम्बसार की तुलना करने लगी; एक उसके पीछे पागल हुआ था, और दूसरे के पीछे वह स्वयं उतनी ही पागल हुई थी। सहसा उसकी दृष्टि शय्या के पास रखी हुई कठपुतली पर पड़ी, उसने उसे हृदय से लगाकर आँखें मूँद लीं। बिम्बसार के प्रथम मिलन से वियोग तक की सभी मीठी घटनाएँ एक के बाद एक स्मरण करने में वह विभोर हो गई। शनैः शनैः उसका छिन्न हृदय अनुभूति-पूर्ण होने लगा; आँखों से आँसू झरने लगे। उसने कठपुतली को हृदय से चिपका

लिया; और बलपूर्वक, और आविष्ट होकर !...पाली उसी स्थिति में बहुत समय तक लेटी रही।

उस समय तो अभय चला गया, किन्तु वह ऐसा व्यक्ति न था जो एक बात को हाथ में लेकर उसे अधूरी ही छोड़ देता। महानाम की मृत्यु के समय और उसके पश्चात् अब तक वह बिलकुल मौन रहा था, किन्तु उस मौन के पीछे उसकी पशुता उतनी ही उमंग के साथ जी रही थी। उसे पाली को पाने की धुन सवार हुई थी और वृद्धावस्था की निर्बलता ने उसे कठोर बना दिया था।

अभय, रात और दिन गिनता हुआ पूरे छः महीने तक प्रतीक्षा करता रहा। पाली चार महीने से नन्दीग्राम में थी। रात दिन निरन्तर बिम्बसार का स्मरण करते हुए पूरे महीनों के बाद पाली ने एक पुत्र प्रसूत किया। इस बात के बहुत गुप्त रखे जाने पर भी अभय जान गया था किन्तु उसकी कुछ गुप्त बातें रेणुका को ज्ञात होने के कारण वह इस घटना का दुरुपयोग न कर सका। जीवन के अन्तिम दिनों में प्रतिष्ठा खो जाने के भय से वह चुप रहा।

पाली, पुत्र-जन्म के बाद, नृत्य की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बहाने रेणुका के साथ कुछ दिन इधर-उधर घूम आई। उसका मन पुत्र को देखते ही प्रफुल्ल हो उठता था, उसे पुत्र को देखने से बिम्बसार के सान्निध्य की अनुभूति होती थी। उसकी बहुत इच्छा थी कि कुछ दिन और वैशाली न जाए किंतु चारों ओर प्रख्यात हो जाने, और गाँव-गाँव में उसके नृत्य की चर्चा होते रहने के कारण कुछ ही समय बाद वह पुत्र को लेकर वैशाली चली आई। आने के बाद उसने जाना कि इतने समय में उसके प्रशंसकों की संख्या कई गुनी हो गई थी पाली का नवजीवन अब प्रारम्भ हो रहा था।

प्रासाद में पैर रखते ही, उसका सर्वप्रथम स्वागत करने वाला, संथागार का वृद्ध सभापति अभयराज था। सभापति का, वैशाली की देशनर्तकी से मिलना अनुचित नहीं माना जाता, और उन पर किसी प्रकार की शंका अथवा आलोचना करना भी व्यर्थ ही था क्योंकि वैशाली के सभापति के द्वारा देशनर्तकी का स्वागत होना बिलकुल ठीक था। रेणुका ने रात होने के पहले पाली का ध्यान नर्तकी के साधारण कर्त्तव्यों की ओर खींचा और उससे अभय की बात कही।

रात होते ही अभय पाली के शयन-गृह में आ पहुँचा। अभय को देखकर पाली कुछ भी न बोल सकी, वैसी ही बैठी रही। अभय ने अधिक बातें करना उचित न समझा; दीपक के प्रकाश में पाली, उसके वृद्धत्त्व के आगे अधिक यौवन-सम्पन्न दिखाई दे रही थी। तब वैशाली के उस भीषण नरपशु ने धीरे से शय्या के पास का दीपक बुझा दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सारी वैशाली में हाहाकार मच गया। पाली के प्रासाद से कुछ ही दूर पर लहकते हुए तालाब के किनारे लोकप्रतिष्ठित अभय-राज का मस्तक और धड़ धरती पर लोट रहे थे, और उसके पास ही, हाथ में रक्त-रंजित तलवार और हृदय में अभयराज की कटार के साथ सुधीर सदा के लिए सो रहा था। अभी भी उसके मुख पर भीषण घृणा की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं!

(२)

राजगृह के विशाल विल्ववन के कलन्दक—निवाप में इस समय गोतम बुद्ध विहार करते थे; आज चार महीने समाप्त हो जाने के कारण भिक्षुक को रखने की वस्त्र आदि पाँच * आवश्यक वस्तुओं का वितरण हो रहा था। आज वे सब भिक्षुक चारों दिशाओं में से अपनी निश्चित दिशा की ओर अलग-अलग प्रस्थान कर रहे थे। इस समय शाक्य-मुनि गोतम एक पीपल के वृक्ष के पास टहल रहे थे, तब ही बिम्बसार अपने रथ को कुछ दूर खड़ा कर के उनके पास आया; शाक्य-मुनि ने कुछ चौंककर अपनी विश्वविजयी मुस्कान के साथ उसपर एक दृष्टि डाली। दोनों ने एक दूसरे की कुशल-क्षेम पूछी; तब बिम्बसार उन्हें प्रणाम कर के एक ओर बैठ गया।

बिम्बसार ने, नौसिखिए तैराक के पानी में हाथ-पैर पछाड़ने की तरह बोलना प्रारंभ किया—'भगवान, आज आप अपना प्रस्थान करना रोक दें। मै जानता हूँ, कि चार महीने के वर्षावास के बाद आप एक दिन भी नहीं ठहरते, किंतु इस

* पिंडपात, चीवर, भेसज्ज, सूची और वीज।

बार आपको रहना ही होगा...स्वीकार कीजिए मुनि !'

बुद्ध, राजा की व्याकुलता जान गये; उन्हें उसके व्यग्र हृदय को शान्त करना आवश्यक प्रतीत हुआ, प्रेमपूर्ण नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए अन्त में उन्होंने कहा—'तथास्तु !'

बुद्ध का यह शब्द सुनते ही बिम्बसार को शांति मिली; तत्क्षण वह वहाँ से उठ खड़ा हुआ और प्रणाम कर के चला गया। आनन्द, जो अब शाक्य-मुनि का अंगरक्षक जैसा था, विस्मित हो कर दूर से सम्राट का यह विचित्र व्यवहार देखता रहा।

बिम्बसार के जाते ही शाक्य-मुनि ने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया, उनके आ जाने पर उन्हें धरती पर बैठ जाने की आज्ञा दी और कहा—'भिक्षुओ, संघ का यह नियम है कि केवल वर्षावास में ही संघ को चार मास तक एक स्थान पर रहना चाहिए, फिर भी यदि कोई राजा-महाराजा आग्रहपूर्वक संघ को और अधिक ठहराना चाहे तो ठहरने में कोई पाप नहीं है, क्योंकि संघ को राजा की इच्छा का सम्मान करना चाहिए। आज हम लोग प्रस्थान नहीं करेंगे, कुछ दिन और यहीं ठहरेंगे...'[1] कहकर शाक्य-मुनि ने उस पियज्जहो[2] की ओर देखा, जो भिक्षुक होने से पहिले एक भीषण लिच्छवी था, और स्वजन और स्नेहियों को मार डालने में भी संकुचित नहीं होता था; उसे सम्बोधित करके शाक्य-मुनि बोले—'पियज्जहो ! सुन, मैंने एक गृहस्थ से जो कुछ कहा था, उसे तू पुनः सुन ले, भिक्षुओं तुम भी सुनो, सुनकर उसका मनन करो—भिक्षुओं, भ्रमण करने से सगति होती है, संगति से स्नेह उत्पन्न होता है, और स्नेह से ही सदा के 'दुःख'[3] की उत्पत्ति होती है ! इसलिए स्नेह को ही 'दुःख' का मूल समझ, जैसे कि वराह की नाक पर सीग होता है, संसार में तुम्हें अकेले ही विचरण[4] करना चाहिए !'

उपर्युक्त वक्तव्य का संदर्भ-सहित विवरण—

१—विनयपिटक।

२—थेरगाथा।

३—'जन्म लेना दुःख है, जन्म लेकर मरना दुःख है। अनन्त जन्मों की गणना भी दुःख है ! जन्म-मरण की शृंखला का अंत प्रदर्शित करनेवाला आर्य

अष्टांग मार्ग, अर्थात् निर्वाण है यह बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों में प्रथम सत्य है।

४—सुख निपात।

यही उपदेश शाक्य-मुनि ने संध्या समय बिम्बसार को भी दिया।

ठीक छः महीने बाद बिम्बसार उसी पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा था; वहाँ इस समय शाक्य-मुनि गोतम बुद्ध अथवा उनका संघ, कोई न था। कृष्णपक्ष की आधी रात थी; दूर जलती हुई मशाल का प्रकाश उस अंधकार में गम्भीरता उत्पन्न कर रहा था। बिम्बसार मदिरा के मद में चकचूर हो कर बड़बड़ा रहा था—'शाक्य-मुनि! स्नेह संसर्ग से उत्पन्न नहीं होता, मूर्खता से उत्पन्न होता है! स्नेह स्त्री रूपी हलाहल में से उत्पन्न होता है, जिसका फल कितना विषैला होता है, यह पूछने तुम मेरे पास आना! रेवा कहती है, मैं एक पुत्र का पिता बन गया हूँ; ऊँह, मुनि! अपना उपदेश बदल देना; संगति से स्नेह पैदा नहीं होता...स्नेह विष से उत्पन्न होता है और उस स्नेह का अंतिम परिणाम...'

'महाराज!' किसी का धीमा कण्ठस्वर से सुनाई दिया।

'कौन, संजय...?' बिम्बसार नशे में सिर एक ओर घुमाकर बोला—'परछाईं की तरह मेरे साथ ही चला आया....कृष्णपक्ष में भी?...तुझे नींद नहीं आती...तुझे अपने बाल-बच्चों और पत्नी से मीठी बातें करके समय बिताना नहीं आता?...दुष्ट, आठों पहर मेरे साथ ही रहा तो तू भी अपनी मनुष्यता खो बैठेगा!'

'राजन्, मैं मनुष्यता का इतना तिरस्कार नहीं देख सकता!'

'संजय!'

'देव, एक स्त्री के लिए इस अतुल शक्ति का नष्ट होना मुझसे नहीं देखा जाता! आप मागधियों के प्राण हैं, आप हमारे हैं। हमारे हो कर भी जब आप एक स्त्री के पीछे अपना सर्वस्व भूल कर, निरुत्साह और निष्क्रिय हो जाते हैं तब हमसे देखा नहीं जाता। आपकी इस निष्क्रियता से शत्रु प्रसन्न हो रहे हैं! मगधराज की दुर्बलता उनकी विजय-लालसा को उत्तेजित कर रही है; वे मगध को लील जाने के लिए अनुकूल समय की प्रतिक्षा कर रहे हैं!....'

इन शब्दों ने बिम्बसार को चाबुक मार कर नशे से सचेत कर दिया; आर्द्र संजय की ओर वह एकटक देखने लगा। छुपी हुई अग्नि जैसे वायु की एक लहर पा कर भड़क उठी हो, उस तरह बिम्बसार की आँखें चमक उठीं; बोला—'संजय, बात यहाँ तक पहुँच चुकी है ?'

'हाँ, महाराज !'

'तो उन शत्रुओं को गुप्तचरों या राजदूत भेज कर कहला देना कि चन्द्र और सूर्य को हथियाने की चेष्टा करने वालों को हम उन्मत्त कहते हैं और उनका उपचार करने के लिए शस्त्रास्त्रों के अतिरिक्त राजवैद्य कुमार भृत्य भी सदा प्रस्तुत रहते हैं !...संजय, तू मुझे सचेत करने के लिए तो यह सब नहीं कह रहा है ?....यही बात है; तो सुन, मैंने अपनी सुध खोई ही कब है ? मैं लिच्छवियों को नहीं छोड़ूँगा, उन्हें झुकाऊँगा, रुलाऊँगा ! उनके सिर तेरे पैरों से रौंदूँगा तब ही मुझे शांति मिलेगी। संजय, लिच्छवी नीच हैं, क्रूर और हत्यारे हैं....विषप्रवर्तक हैं !...'

'महाराज, महल को प्रस्थान करेंगे ?'

संजय के बात बदलने से बिम्बसार बिलकुल शांत हो गया। संजय के कंधो के सहारे वह रथ की ओर जाने लगा। क्रोध, घृणा और अपमान के मानसिक परिताप के कारण वह शिथिल हो गया था।

उस समय पाली की स्थिति उससे बिलकुल विपरीत थी। बिम्बसार आहत हृदय से पाली का स्मरण कर के घृणा से भर उठता था, और पाली गंभीर प्रणय से उसका विचार किया करती थी। पुत्र होने के कारण वैशाली में और कुछ गड़बड़ी न फैल जाए इस डर से पाली अधिकतर नंदीग्राम में ही रहने लगी। एक दिन गुप्त रूप से रेवा उससे मिलने आई; पाली का पुत्र देख कर उसका मन खिल उठा, और जब वह राजगृह गई तब क्षण भर का भी विलम्ब किए बिना उसने यह बात संजय से कह दी। किन्तु संयोगवश बिम्बसार ने उन दोनों की बातें सुन ली, और पाली के प्रति भूली हुई घृणा दुगुने वेग से प्रज्वलित हो उठी, पाली की मृदु-स्मृतियाँ कटु बन गई। उसके बाद बिम्बसार पागल जैसा रहने लगा, मदिरा की मात्रा अतिशय बढ़ गई। रेवा को इस घटना से बहुत

पश्चात्ताप हुआ, पर वह बेचारी क्या करती ? संजय ने बिम्बसार के अस्थिर चित्त को स्थिर करने का प्रयोग पुनः प्रारंभ किया;...इसी तरह दिन बीतने लगे।

अब पाली के प्रशंसकों की संख्या असंख्य से बढ़कर अकल्प हो गई। उत्तर-कुरु, पांचाल, दक्षिणापथ, भृगुकच्छ और पट्टन तथा ताम्रलिपि. पश्चिमी प्रदेश गांधार, कोशल, चंपा, विध्य और हिम-प्रदेश इत्यादि कई देशों के अनेक राजा, श्रेष्ठी और मंत्रीगण आम्रपाली के प्रासाद में उसे बुला ले जाने के लिए आ चुके थे; साथ-ही-साथ वशाली का प्रत्येक लिच्छवी युवक सब से पहिले पाली का कृपा-कटाक्ष पाने के लिए तड़प रहा था।

किन्तु अभयराज की मृत्यु ने पाली मे अद्भुत परिवर्तन ला दिया। उसने पुरुष की प्रभुता का भीषण स्वरूप देखा था। उस पर प्राण देने वाले मूर्खों का झुण्ड उसके सामने अब हाथ बाँधे बैठा रहता; उन सबों को उसने सचमुच मूर्ख बनाया, निराश किया। पुत्र का निर्दोष मुख उसे कई बातों से रोकता था। रिक्त समय में वह पुत्र को हृदय से लगाकर बिम्बसार की स्मृति में खोई हुई बैठी रहती थी—उसे वे अभिराम दादा और आनंद याद आते, वेदांती और उस समय का नंदीग्राम याद आता, किन्तु पुत्र को देखकर वह कुछ देर तक सब कुछ भूल जाती। मातृत्व उसका दृढ़तम आधार था। पुत्र का निर्दोष मुख उसकी निराशा और दुःख को दूर करने लगा; वियोग और दुःख में भी उसे आशा और तृप्ति-मय भावनाओं की अनुभूति होने लगी।

एक दिन सबेरे एक दासी दौड़ती हुई आई और कहने लगी कि 'भद्रा कही चली गई है!' इस तरह पाली का वह बचा हुआ स्नेह-बंधन भी टूट गया।

समय और समुद्र की लहरों की थाह किसी ने पाई है ?

दिन बीतने लगे। रेणुका ने सच ही कहा था कि जो मार्ग उसने ग्रहण किया था उसे निबाहना ही कर्त्तव्य है। शनैः शनैः पाली विविध युवकों के सम्पर्क में आने लगी। उन युवकों का मुग्धावस्था और कल्पना, उनके उन्माद और बुद्धि, उनकी दृढ़ता और मूर्खता भरे प्रदर्शन में ही पाली का समय हास्य विनोद अथवा कटाक्ष करने मे बीतने लगा। रेणुका ने उसे, सबों को मूर्ख बना देने की कला अच्छी तरह सिखा दी थी। पाली सबो को मूर्ख बनाने लगी;

उसके सामने आने वाला कोई भी पुरुष उसकी बुद्धि से प्रभावित हो जाता था।

पुन: एक बार आश्विन पूर्णिमा आई। वज्जियों को छोड़कर लिच्छवियों के आसपास बसने वाले अनेक गणतंत्रों मे पाली की प्रशंसा ने उसका नृत्य देखने के लिए वहाँ के रसिक युवकों को आतुर बना दिया। वहाँ के मल्ल, शाक्य और केलिगणों ने, जो वर्षो से लिच्छवियों के शत्रु थे आम्रपाली को देखने के लिए आश्विन पूर्णिमा के लिए लिच्छवियों से संधि कर ली थी। फलस्वरूप पाली संथागार के राज्यकर्मचारियों के आभार की पात्र बन गई क्योंकि उसने सचमुच देशनर्तकी नाम की सार्थकता राजनैतिक ढंग से कर दिखाई थी। इसलिए इस वर्ष यदि लिच्छवीगण पाली का नृत्य देखने के लिए अधिक आतुर बन गये तो इसमें आश्चर्य की कोई बात न थी। इतने छोटे समय मे पाली ने संसार ने अपनी महत्ता स्थापित कर ली, और नृत्यकला ने भी मानों प्रसन्न होकर उसके अंगों में वह आभा भर दी कि कोई भी युवक उसका नृत्य देखने के लिए अपनी बड़ी-से-बड़ी हानि सहन करने को प्रस्तुत था।

जनता की असीम प्रशंसा और आदर-सत्कार को वह एक प्रकार से अपने जीवन की सफलता मानने लगी। नृत्य प्रारंभ करते ही वह अपनी प्रसन्नता में खो जाती थी और वह मानसिक तृप्ति इतनी घनी होती कि जब तक वह अपुने महल में आकर निश्चेष्ट नहीं हो जाती, वह अनुभूति बनी ही रहती थी!

आश्विन पूर्णिमा का महोत्सव प्रारंभ हुआ; पाली ने गत वर्ष की भाँति इस बार भी उत्साहपूर्वक नृत्य किया। जब नृत्य: समाप्त हुआ तो दर्शकगण गत वर्ष की अपेक्षा अधिक उन्मत्त दिखाई दे रहे थे। इस बार पारितोषिक और उपहार की भेट इतनी थी कि जब पाली अपने महल की ओर जाने लगी तो उसके रथ के पीछे उपहारो से भरे हुए चार हाथी और छः रथ थे।

पाली के महल में पैर रखते ही वृद्ध रेणुका उससे लिपट गई और भीतर के विश्रामकक्ष में ले गई। रेणुका पाली के साथ इसलिए नही गई कि वह अपनी एक आँख खो बैठी थी और दूसरी दुख रही थी। वह आँखों में आँसू लाकर बोली—'बेटी, हमने तो प्राय: विशिष्ट पुरुषों का ही मनोरंजन

किया, पर तूने तो आज सारे देश को आनन्द में डुबो दिया है !—तूने देश का उपकार किया है; सचमुच तू देशनर्तकी है !...पाली कुछ न बोली, रेणुका के आँसू पोंछ कर उसने महल के द्वार पर खड़े हुए कितने ही लिच्छवी सपूतों की ओर संकेत करके कहा...'मैं तो इन्हें समझा-समझा कर थक गई हूँ, अब तू इन्हें समझा दे कि मैं भी मानवी हूँ; मुझे भी श्रम, और भूख के बाद विश्राम की आवश्यकता है।'

उनकी ओर देख कर वृद्ध रेणुका आँख का कष्ट भूल गई, बोली—'यदि यहाँ खड़े रहने से ही उनका मन तृप्त होता हो तो, खड़े रहने दे! बेचारे लड़के हैं....' कह कर वह पाली को स्नानागार में ले गई। उसके बाद कई दासियों को साथ लेकर वह बाहर आई और प्रासाद के प्रांगण में खड़े तरुणों को तथा उद्यान में खड़े हुए परदेशियों और अन्य लोगो के उपहार स्वीकार करके उन्हें शीघ्रतापूर्वक समझाने लगी।

स्नान करके पाली शयन-गृह में पहुँची और अपना उत्तरीय दूर करने के पहिले तो ज़ोर से चिल्ला कर बैठ गई।

उसका खोया हुआ भाई आनन्द, सम्मुख खड़ा था; उसकी पोशाक बिलकुल बदली हुई थी। वे वस्त्र न परिव्राजक के थे, न श्रमणेर के, न जटिलक के; अग्निपूजक अथवा ब्रह्मचारी के भी न थे; वे एक दूसरे ही प्रकार के काषायवस्त्र थे। आनन्द की आँखे एक प्रकार के उन्माद से अभिभूत हो रही थीं।

पाली चिल्लाई—'भैया, भैया !'....दौड़ कर वह आनन्द की बाहों से लिपट गई; लिपटी ही नहीं रोने भी लगी। कुछ देर पाली को सहला कर आनन्द ने उसे दूर किया; बोला—'पाली, मेरे सामने देख !'

पाली ने उसे देखा।.......

'पाली, तीन तीन वर्षों से मैं मन को दबाता आ रहा हूँ ! मैंने हृदय को मसल डाला; वन, उपवन और गिरिकंदराओं को रौंद डाला !....शाक्य-मुनि गोतम बुद्ध के आदेशों को हृदय में रख कर वृक्ष-वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाए।.. पर तुझे नहीं भूल सका....नही, तुझे नहीं, तेरे पुत्र को !...मेरे हृदय में वही

एक ध्वनि उठ रही थी...नहीं, उसके बिना मुझे शांति नहीं मिलेगी !.... मैं उसे लेने आया हूँ बहन ! अपना पुत्र मुझे सौंप दे !'

'भैया, मेरा हृदय ही ले जाओ, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं; इस हृदय को मैंने बहुत कुचला है, रौंदा है...फिर भी यह अभी तक जीवित है; इसे उखाड़ कर, खींच कर ले जाओ—बच्चे को नहीं, मैं उसे न दे सकूँगी !'

'नहीं पाली, मना करने से काम कैसे चलेगा ? मैं उसे ले जाऊँगा, ले जाने के लिए ही आया हूँ। अँधेरा फैल रहा है, गहरा होने दे तब मैं उसे ले जाऊँगा।'

आनन्द की आँखों का वह उन्माद मिट कर अब वहाँ एक विचित्र आकर्षण दिखाई दे रहा था। पाली एकाएक कुछ न बोल सकी; बालक के पलने के पास जाकर उसे उठा कर छाती से लगा लिया और ज़ोरों से रो पड़ी। उसके रुदन का स्वर इतना कारुणिक था कि कठोर-हृदय पुरुष भी द्रवित हो जाता। आनन्द धीरे से बहन के पास बैठ गया, बोला—'बहन, तू देशनर्तकी बन गई है....देशनर्तकी के भी कहीं पुत्र होता है ? और इसके भाग्य कैसे हैं ! पिता भी इसका होना नहीं चाहता ; माँ भी प्रकाश्य रूप से इसका पालन-पोषण नहीं कर सकती ! बड़ा होने पर यह पुत्र, कई प्रकार की भली-बुरी बातें सुन कर क्या सोचेगा ? यह राजवंश में उत्पन्न हुआ है, इसलिए आत्महत्या किये बिना न रहेगा। यह साधारण आत्मा नहीं, मेरा मन कहता है कि यह तेरे पास रहने योग्य नहीं है !'—

'ऐसा न कहो भैया ! ऐसा अशुभ न बोलो !'

'मैंने एक दो दिन से नहीं पाली, दिन-मास-वर्षों से यही विचार किया है, यही सोचा है—मुझे दे दे ! मेरा मन कहता है, मेरे भगवान भी कहते हैं कि मुझे दे देने में ही मेरा, इसका और तेरा उद्धार है। व्यर्थ समय न गँवा बहन !...यह तो ऐहिक-पारलौकिक सम्बन्धों का लेनदेन है ! मुझे सौंप दे, मुझे दे, शीघ्रता कर।...' कहकर आनन्द ने हाथ बढ़ाये। उसके शब्दों में कठोरता के साथ स्पष्ट प्रेम भी झलक रहा था; उसकी वाणी मर्म-भेदिनी होकर भी आर्द्र थी।

पाली का मन बालक को दे देने को उद्यत हुआ। उन डेढ़ वर्षो में उसने संसार का अति सुन्दर और घृणात्मक स्वरूप देख लिया था; वह जानती थी कि भाई की बाते उसके हृदय में चुभते हुए भी सत्य थीं; उसे समझाने की आवश्यकता नही थी।

किन्तु वह माँ थी; लहू का घूँट पीकर बोली—'तुम इसे कहाँ ले जाओगे ?'

'जहाँ मै जाऊँगा, जहाँ शाक्य-मुनि बुद्ध का भिक्षुकसंघ विहार कर रहा होगा, जहाँ तथागत का नाम गूँज रहा होगा, वहाँ!'

'तब मै इसे कैसे देख सकूँगी ?'

'पाली, देखने की क्या आवश्यकता है ? तू अब इसे कभी नही देख सकेगी!'

'भैया! तुम इतने कठोर कैसे बन गये ? मेरा भैया कहाँ विलीन हो गया! नही, नही भले ही वह यहाँ रहे! चाहे बड़ा होकर मुझे माँ न कहे, मुझ पर थूके, चाहे मुझे देखना भी न चाहे पर मै इसे अपनी दृष्टि से ओझल नही होने दूँगी!....'

बहुत स्नेहपूर्वक, रोती हुई पाली के दोनो हाथ अपने हाथ में लेकर वह समझाने लगा—'पाली, वृद्ध वेदांती ने कहा है कि तेरा पुत्र एक महान् दैव-विभूति बनेगा! तू इसे पाल-पोसकर बड़ा करेगी तो यौवन तक पहुँचते न पहुँचते यह स्वयं अपने को धिक्कार करेगा, इसे अपने लिए स्वयं पर घृणा उत्पन्न होगी। अन्त मे अपमानों से दुःखी होकर यह आत्महत्या करेगा। अपने भानजे की, एक महान् राजकुमार की, मै यह दशा नही होने दूँगा, इसे वहाँ तक पहुँचने ही न दूँगा!....इसे मुझे दे दे, पूज्य वेदांती कहता है कि यह हमारा उद्धार करेगा इसीलिए मै इसे तुझसे दूर ले जाने के लिए आया हूँ, जिससे यह तुझे न देख सके! यदि एक बार भी तुम दोनों एक साथ मिले तो तेरा वात्सल्य इसके जीवन को शून्य बना देगा!....'

'भैया, मै इसकी माँ हूँ!'

'किसी भी लिच्छवी माता ने अपने पुत्र की अपेक्षा अपने सुख को अधिक

माना है ?'

'भैया यह असम्भव है !'

'पाली !....' पुनः उसकी आँखों का स्थिर तेज चमकने लगा....'अपने भाई के शब्दों में तुझे विश्वास है ? बालक मुझे सौंप दे !' यह आज्ञा थी। पाली निष्प्रभ हो गई। उसने बालक को बलपूर्वक वक्ष मे चिपकाकर, चूमकर, भाई के हाथों में सौंप दिया।

'पाली, बौद्ध साधु, यजमान द्वारा खुले मन से हँसते-हँसते दी हुई भिक्षा ही ग्रहण करता है ! पाली मेरी ओर देख !....'

पाली ने बहुत प्रयत्न करके मन को सम्हाला; मुस्कराई। 'भगवान बुद्ध रक्षक हो !' इस आशीर्वाद के साथ आनन्द ने बालक को लिया और पाली हँसती हुई भाई के पैरों में गिर पड़ी।

(३)

सात वर्ष बीत गये। इन सात वर्षों में पाली में अचिन्त्य परिवर्तन हो गया था। दूर देशों तक वह प्रख्यात हो गई थी। संथागार की सभा न होने पर, यदि पाली को वहाँ जाना न होता तो किसी बड़े राजा के आमन्त्रण को स्वीकार करके वह वैशाली के बाहर भी पैर रखने लगी। वर्ष में अनेक बार पाली का रथ जय जय ध्वनि के साथ वैशाली को छोड़ता था। पाली की ख्याति ने अनेक गूढ-कथाओं का रूप ले लिया था। जिस नगरी में पाली पहुँचती, उसके आगमन के प्रथम दिन और प्रस्थान के दूसरे दिन वहाँ का सारा काम-काज निष्क्रिय-सा रहता, और नगरी का रसिक-समाज पाली के रूप और गुण की झूठी और सच्ची बातों में अपना समय व्यतीत किया करता था। किन्तु पाली बाहर तब ही जाती थी जब कि वैशाली का भी कुछ न कुछ लाभ हो। शनैः शनैः अपनी नृत्यकला और देहसुषमा के द्वारा पाली ने बात-बात पर लड़ बैठनेवाले लिच्छवी और वज्जि राजा और उपराजाओं में एकता उत्पन्न कर दी जिसमे वे सम्मिलित और शांत हो गये। उस समय के प्रायः सभी लिच्छवी और वज्जि नेतागण पाली की मोहनी में फँसे हुए थे; भीषण योद्धाओं और

अनेक संयमी पुरुषों के मुँह से भी 'नहीं' से 'हाँ' कहलाने में वह समर्थ थी। उसने सबों को मुग्ध किया था, उसकी रूपमोहनी में खोया हुआ पुरुष उसकी इच्छा करने पर निषेध करने का साहस न कर सकता था।

किंतु महानाम की मृत्यु के बाद, लिच्छवियों में एक प्रकारकी निम्नकोटि की स्वच्छन्दता फैलने लगी; यह एक प्रकार की अराजकता थी जिसने इन सात वर्षों में भीषण रूप धारण कर लिया था। अनेक धर्म-प्रवर्तक लोग स्वातंत्र्य-प्रेमी लिच्छवियों को भड़काने के लिए मैदान में उतर आये थे, जिनमें जटिलक और निर्ग्रंथो का वैशाली में प्रचार मुख्य था। दूसरी ओर कई साम्राज्यवादी कूटनितिज्ञ लोग परिषद के कितने ही नेताओं को बहकानेकी अपनी जालसाजी मे सफल हो रहे थे। नियमानुसार सदा ही लिच्छवी परिषद की सभाएँ संथागार में होतीं थीं, प्रवेणी-पुस्तक का निर्णय भी अंतिम माना जाता था तथा अब भी लिच्छवी गणतंत्र अभेद्य और प्रभावशाली हीं था। पर यह सब होते हुए भी, पहिले जिस तरह एक भावना और विश्वास के साथ प्रत्येक कार्य सम्पादित होता था वैसा अब न था। पुराने नेताओं में अंतिम अवशिष्ट, नगर-श्रेष्ठी का भी देहावसान हो गया था।

ऐसे दिनों शाक्य-मुनि गौतम बुद्ध के धर्म ने लिच्छवियों को झकझोरकर सचेत किया; धीरे-धीरे अन्य देशों की अपेक्षा लिच्छवीगण बौद्ध धर्म को अधिक दृढ़ता से अपनाने लगे। जो बुद्धानुयायी नहीं थे वे ही उस सामयिक अराजकता के कारण शंकाशील, क्रूर और निर्लज्ज बन गये। इस परिस्थिति में समस्त लिच्छवीगण जिस एक ही व्यक्ति का एक दृष्टि से सम्मान करते थे वह आम्रपाली थी। मानसिक दृष्टि से वैशाली पर मानों आम्रपाली का ही शासन चलता था। पाली के दिनोदिन वृद्धिगत शरीर-सौष्ठव ने सबों को पराजित कर दिया। पाली ने इन सात वर्षों में अपने पंचभूत को नया रंग देने का भरसक प्रयत्न किया। पुत्र के जाते ही उसका जीवन-लक्ष्य मानों बदल चुका था। सतत अभ्यास से उसकी सुकुमार देह सहनशील बन गई थी। हृदय के रुदन को दबाकर पाली का मुख आठों प्रहर मुस्कराता रहता, अपनी मानसिक वेदना को छुपाने के लिए वह कई बार हँसती और हँसाती थी; इस तरह दुःख को

भुलाने का प्रयत्न करने लगी ।

पाली के प्रासाद में बहुत दिनों से उज्जयिनी से भागा हुआ एक राजकुमार रहता था। आज विविध वार्तालाप करके पाली उसे प्रफुल्लित कर रही थी; अपने पुत्रसमान राजकुमार को अपने पीछे पागल देखकर पाली सहानुभूति से मुस्करा उठती थी। अन्त मे राजकुमार ने पाली की बात मान ली; और घर जाकर पिता द्वारा निश्चित की हुई कन्या से विवाह करना स्वीकार किया। इसके पहिले इसी राजकुमार ने आम्रपाली के बिना जीवित न रहने का निश्चय किया था !

ऐसे अनेक अनुभव पाली के जीवन में हो चुके थे; राजकुमार के वचन से वह संतुष्ट हुई। सहसा दासी सुनेत्रा ने आकर समाचार कहा—

'एक परदेशी दर्शन करने की आज्ञा चाहता है !'

'कह दे कि एक हज़ार कहापरण दे तो भी आज्ञा नहीं मिलेगी !'

'उसने दो हजार दिये है, और मैने ले लिये हैं ।'

'तो लौटा दे ।'

'वह चार हजार भी दे सकता है देवी, उसने मुझे पहले से कह दिया है ।'

'और चार हज़ार कहापरण भी लौटा दे तो ?'

'तो आठ हज़ार देगा । जब तक आप दर्शन न दे, वह लौटेगा नही ।'

'जा बुला ला ।'

'वह एकान्त चाहता है, देवी ।'

पाली ने उस बाल राजकुमार की ओर देखकर कहा—'वसंतराज, तुम कुछ देर उद्यान में टहलो, मै अभी आती हूँ ।....सुनेत्रा, जा उसे मुख्य भवन में ले आ ।' इतना कह कर पाली मुख्य भवन में जा पहुँची । सुनेत्रा ने परदेशी को भीतर भेज दिया और बाहर से द्वार बंद कर दिए ।

परदेशी को देखते ही पाली स्तब्ध हो गई । दश वर्ष पहिले एक कठपुतलीवाला आया था, आज उसी महल में, उसी स्थान पर एक कठपुतलीवाला आया है । किन्तु आज का पुरुष दूसरा ही मालूम होता था, कौन कह सकता है यह भी बिम्बसार नहीं है ? वर्षों बीत जाने पर क्या

उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता !...

पाली बोल न सकी; परदेशी का हाथ पकड़कर वह उसे अपने शयन-गृह में ले गई; उसने वहाँ का प्रत्येक द्वार और वातायन बन्द कर दिया। वर्षों का रोका हुआ आवेग एक साथ बाहर आना चाहता हो उस तरह उसके रोके हुए आँसू धारा बन कर बहने लगे। कोई देख न सकेगा यह विश्वास हो जाने के बाद पाली परदेशी के समीप आई। किन्तु कठपुतलीवाले ने दाढ़ी निकाल डाली थी जिसे देखकर पाली का उबाल सहसा शान्त हो गया।

मूर्खा यह समझ बैठी थी कि वह आगन्तुक बिम्बसार ही है; किन्तु यह संजय था। अपना वेश बदल कर जब उसने पाली की चरणरज ली तब ही पाली को उसे रोकने की सुध आई।...संजय को देख कर उसे बहुत सान्त्वना मिली।

संजय व्यर्थ विलम्ब न करके मुख्य विषय पर आया; बोला—'देवी, मुझसे कोई भी बात छिपाने का प्रयत्न न करें, रेवा ने मुझे सब कुछ कह दिया है। मैं सात वर्षों से आपको मिलने के लिए तरस रहा था, पर संयोग मिलने पर भी समय बहुत थोड़ा है। यहाँ के गुप्तचरों को ज्ञात हो गया है कि मैं वैशाली में हूँ। इसलिए मैं जो कुछ कहूँ आप शीघ्र सुन लें। देवी, मैं आपसे भीख माँगने आया हूँ।'

'एक नर्तकी से?'

'नहीं, अपनी महारानी से।'

'यह न कहो, महासचिव!'

'आपने जो देशसेवा और आत्मत्याग किया है उतना कोई साम्राज्ञी भी नहीं कर सकती। आम्रपाली केवल नर्तकी ही नहीं है, वह तो देशोद्धारिणी, कुलोद्धारिणी प्रेम देवी है। देवी, सात वर्षों का पुराना आघात महाराज भूले नहीं हैं, और यह भी मैं जानता हूँ कि सात वर्षों से मेरी महारानी, महाराज को आतुरता से भुला बैठी हैं। मैं कोई बात गुप्त नहीं रख सकता, यह बात आप अच्छी तरह जानती हैं।'

पाली ने आँखों के आँसू छिपाने के लिए मुँह फिरा कर पूछा—'महामन्त्री,

किस कार्य के लिए आए हो ?'

संजय ने नीचे बैठ कर उत्तर दिया—'आपके शुभ हाथों से आपके महाराज को सुखी बनाने के लिए।'

पाली ने चौंक कर संजय की ओर देखा; उसकी आँखें भीग उठी थीं। संजय बोला—'देवी आपने जानबूझ कर, अपने लिए महाराज के हृदय में घृणा की ज्वाला सुलगाई थी उसने अब भड़क कर अग्नि का रूप धारण कर लिया है। लिच्छवियों की शत्रुता अब मगध में व्यापक हो रही है; द्वेष बढ़ गया है, कटुता फैल गई है। किन्तु इस समय भी एक प्रसंग ऐसा हाथ लगा है जिससे लिच्छवियों और मागधियों का कलह सदा के लिए शान्त हो जाय।'

तीव्र वेदना ने भी पाली को विचलित नहीं किया; बोली—'तुम लिच्छवियों और मागधियों की एकता क्यों चाहते हो ?'

'सब से पहली बात यह है कि दो शक्तिशाली राष्ट्र एक होंगे, पर उससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि मेरी महारानी एक समय उसकी....'

'बस महामन्त्री !—मैं नर्तकी हूँ !'

'कहने और मानने भर से कुछ होता हो तो, अभी मैं भी इन्द्र बन जाता; इन्द्र बनने के बाद मुझे यहाँ न आना पड़ता। और मैं अपनी दिव्य शक्तियों के द्वारा यह सब भेद-भाव, अनैक्य और कुमति दूर कर देता और प्रत्येक मनुष्य को लिच्छवी बना देता।....'

'लिच्छवियों के लिए इतना अनुराग कब से उत्पन्न हुआ, महामन्त्री ?'

'सच्चा लिच्छवी ही मनुष्य कहलाने योग्य है। क्षमा कीजिएगा, मैं आज के लिच्छवी की बात नहीं करता।'

'तो मेरे पास भेद-भाव, अनैक्य और कुमति दूर करने के लिए आए हो ?'

'हाँ देवी! महाराजा बिम्बसार की दृष्टि राजकुमारी चेलना पर पड़ी है; गत वर्ष आप चेलना के यहाँ नृत्य करने गई थीं; मैंने सुना है कुछ दिन पहिले ही आप वहाँ गई थीं। यदि चेलना का मन महाराज की ओर झुकाया जाय और दोनों का विवाह हो जाय तो बहुत सम्भावना है कि मागधियों और लिच्छवियों की मित्रता का नाता लम्बे समय के लिए जुड़

जाय। जिस महान उद्देश्य को ले कर आप दोनो प्रेमी विवाह ग्रंथि में वँधे थे, और जो उद्देश्य अधूरा ही रह गया था, अब उसके सम्पूर्ण होने का अवसर आया है, और वह आपके हाथो ही पूरा हो सकता है।'

पाली ध्यान देकर यह बात सुन रही थी; सहसा खड़ी हो कर वह बोली—'संजय, सोच कर कहूँगी!'

'देवी, यह सोचने का नही, करने का प्रश्न है। आपके आत्मबलिदान ने महाराज को अतिशय दुःख पहुँचाया है; लिच्छवियों के प्रति उनके मन में रोष का यही मुख्य कारण है। चेटकराज की पुत्री चेलना को पा जाने से यह रोष अवश्य कम होगा। हमारे और आपके राष्ट्रों को सुखी करने का यह सुन्दर अवसर है; और यह कार्य आप करेंगी ही। एक और प्रश्न पूछूँ?—'

'पूछो!'

'छोटे महाराजा कहाँ...?'

'महामन्त्री!'—पाली चिल्ला उठी; फिर एकाएक सम्हल गई। वह अपने अचानक चिल्लाने के कारण लज्जित हुई; उसका सारा शरीर काँप रहा था। नारी के हृदय में और अधिक सहने की क्षमता नहीं थी। पाली शय्या पर गिर गई; आँखों से आँसू बहने लगे।....

...सात वर्ष बाद पति के समाचार मिलने पर वह घृणा से अभिभूत हो गई; अब पति का एक परम मित्र हाथ से निकले हुए पुत्र की याद दिला रहा है!

पहले तो संजय विस्मित हुआ; किन्तु धीरे-धीरे सारा सत्य उसे स्पष्ट दिखाई देने लगा। सचमुच मौन रह कर सहन करने पर भी पाली का कष्ट असह्य था। उसने पाली को नमस्कार करके कहा—'देवी! आपको उपदेश देने या समझाने की क्षमता मुझमें नही है!...आपका आत्मत्याग अद्भुत है; आपकी सहनशीलता आश्चर्यजनक है! महान कार्यों का निमित्त बना कर प्रकृति ने आपको पृथ्वी पर भेजा है; उन कार्यों के सम्मुख अपनी बातें करना आप जैसी महान आत्मा के लिए बहुत ही साधारण बात है! मुझे जाने की आज्ञा है?...'

पाली ने सिर उठाया। संजय ने अपना गुप्त वेश धारण किया और नमस्कार

करके बाहर जाने लगा। पाली ने आँसू पोंछ डाले, वह अपने प्रियतम के अति निकट के मित्र को जाते हुए देखती रही।

जब दूसरे दिन आम्रपाली लिच्छवी राजा चेटक की पुत्री चेलना से मिली तो उसे देख कर चेलना बहुत विस्मित हुई, क्योंकि सात दिन पहले ही जब उसने पाली को सादर आमन्त्रण भेजा तब उसने आने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी।

पाली को देखते ही चेलना को प्रसन्नता हुई; वह पाली की प्रतिभा से प्रभावित थी। पाली वहाँ पाँच दिन रही और इन पाँच दिनोंमे उसने [illegible] योग्य बना दिया कि उसका मन अनुपम सुंदरी आम्रपाली का तिरस्कार करने वाले बिम्बसार को पानी बना देने के लिए तरस उठा। दूसरी ओर सजय भी बिम्बसार का मन चेलना की ओर आकर्षित कर रहा था।...

...और एक दिन बहुत गुप्त रीति से बिम्बसार और चेलना मिले। बिम्बसार के हृदय-पट पर चेलना की अमिट छवि अंकित हो गई; चेलना का हृदय भी बिम्बसार की छवि-दर्शन में विभोर हो गया। उसमें सौन्दर्य की अपेक्षा बुद्धि अधिक थी इसलिए बिम्बसार को मुग्ध करने में उसे अधिक समय न लगा। धीरे-धीरे उनके गुप्त मिलन की संख्या शीघ्रता से बढ़ती गई और हृदय में प्रेम का पुट गहरा होता गया।

माता ने मनाया, पिता ने समझाया पर चेलना किसी भी राजकुमार के साथ विवाह करने को प्रस्तुत न हुई। माता-पिता यह कैसे जानते कि उसका मन तो बिम्बसार में बस गया था। अंत में चेटकराज ने अपनी दो अन्य पुत्रियों के साथ ही चेलना का विवाह करना भी निश्चित किया। चेलना की व्याकुता बढ़ गई।

...इधर बहुत दिनों से वह बिम्बसार से मिली भी न थी, धीरे-धीरे विवाह का दिन समीप आ पहुँचा।

एक रात को जब सब निद्रामग्न थे, बिम्बसार उनके शयन-गृहमें आ पहुँचा। देखते ही चेलना का रक्त मानो सूख गया। वैशाली के मुख्य लिच्छवी नेताओं से चेटकराज की अनबन थी; लिच्छवियों की शताब्दियों पुरानी सीढ़ी को तोड़ कर [illegible] विवाह वज्जियों की भूमि से बाहर के महाराजाओं के साथ

किये थे। ऐसा करते हुए भी वह एक लिच्छवी था; और मगध की शत्रुता उसके मन में भी पूरी दृढ़ता के साथ थी। चेलना यह जानती थी कि यदि चेटकराज बिम्बसार को अपने राज्य की सीमा पर भी देखे तो उसे छोड़ नही सकता; वह विस्मित होकर देख रही थी कि बिम्बसार वहाँ आ कैसे गया ?....

बिम्बसार ने उसके मन की बात समझ ली, और हँसते-हँसते उसका हाथ पकड़कर भवन के एक कोने में ले गया; धरती में खुदे हुए एक गड्ढे के पास दोनों पहुँचे; बिम्बसार उस ओर संकेत करके बोला—'यह सुरंग मगध की सीमा से यहाँ तक मेरे गुप्तचरों ने तैयार की है। मै चेटकराज को अच्छी तरह जानता हूँ; उन्होंने मेरे आधीन और विरोधी कई राजाओं के पास प्रसन्नता से अपनी कन्याएँ भेजी हैं, और भेजते है! पर अपनी ही एक कन्या की इच्छाओंको वे रौद रहे है! वे यह नहीं जानते कि मैं अपनी हृदयेश्वरी को लिए बिना छोड़ नही सकता। इसलिए मैंने यह मार्ग निकाला है।'

'पर यह तैयारी आप कब से कर रहे है?'

'जब हमारा प्रथम-मिलन हुआ तब ही से।'

'अंत में चोरी से ही लेने का प्रयास किया ना ?'

'हाँ, मेरी प्रेयसी के पिता मेरे लिए भी पिता तुल्य ही है, और किसी मागधी राजा की माता अपने पुत्र को पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना नहीं सिखाती....तब मेरे लिए दूसरा मार्ग ही क्या था ?...मै तुम्हारे पिता के सामने शस्त्र नहीं उठा सकता !....'

'तब ?'

'मेरा महामंत्री ब्राह्मण है, उसने कहा है कि विवाह के दिन ही शुभ-मुहूर्त निकलता है! उस दिन सवेरे मै अपनी रानी को इस मार्ग से ले जाऊँगा !...'

'याने आज से पाँचवें दिन ?'

'हाँ, पाँचवे दिन !' यों कहकर बिम्बसार ने चेलना को अपनी ओर खींच लिया जो आँखों के कोने से उसे देख रही थी।...

ठीक उसी समय, कुछ उसी तरह नगर से दूर एक विजन महल में पाली

अपने पीछे हृदय गँवा बैठने वाले चेटक राजा को समझा रही थी—

'सच माने महाराज, यदि आपने बिम्बसार की बात न मानी तो उसकी सेना चढ़ाई करके चेलनाकुमारी को ले जाएगी। चेलना आपकी पुत्री होते हुए भी हृदय से विवाहित कुमारी को रोका नहीं जा सकता; अपयश से मिली हुई पराजय की अपेक्षा आप एक साथ यश और सम्मान को स्वीकार क्यों नहीं करते...?' इतना कहकर पाली ने मदिरा का एक भरा हुआ पात्र चेटक-राज के मुँह मे उँड़ेल दिया। पीते पीते चेटकराज बोला—'तूने यह कैसे समझ लिया कि वह चेलना को ले जा सकेगा?' पाली की इच्छा हुई कि इस नारी-भक्त राजा को थप्पड़ लगाकर कह दूँ कि सुरंग उसके महल तक खोदी जा चुकी है, जिसे खोदने का निश्चय बिम्बसार के मंत्री ने किया था, और मंत्री को सुरंग का मार्ग दिखाने वाली वह स्वयं है! किंतु पाली चाहती थी कि सुरंग के विषय में बिम्बसार स्वयं जितना अनभिज्ञ है उतना ही अनभिज्ञ चेटक-राज भी रहे! ...वह आशंकित न हो इसलिए पाली ने बात बदली—

'महाराज, मैं नर्तकी हूँ—लिच्छवी नर्तकी हूँ!'

'नहीं, मेरी नर्तकी है!'

'हाँ महाराज! आपकी कृपा से देश-विदेश से कई राजदूत मेरे यहाँ नृत्य और संगीत से मनोरंजन करने के लिए आते हैं; कल मैंने जो भीषण समाचार सुना वह शीघ्र से शीघ्र आपसे कहने के लिए मैं यहाँ आई हूँ! दो ही दिनों में आप सब वज्जियों, लिच्छवियों और आपके मित्रों को सहायता के लिए नहीं बुला सकते; प्रायः आधे लिच्छवी आपका साथ भी नहीं देंगे; उधर बिम्बसार एक स्त्री के लिए अपनी सारी सेना लेकर मिथिला पर चढ़ाई कर देगा!'

नशे में कुछ सचेत होकर चेटकराज ने आँखें चमकाईं—'एक स्त्री के लिए?'

'क्यों नहीं महाराज? आप मेरे लिए इतनी रात को राजमहल छोड़-कर एक योजन दूर मिलने नहीं आये? यदि एक राजा नर्तकी के लिए एक योजन दूर आ सकता है तो क्या दूसरा राजा अपनी पत्नी के लिए पचास योजन भी नहीं जा सकता?'

चेटकराज मद्यपात्र हाथ में लेकर पाली को देखने लगा।

वैसे चेटकराज उदारचित्त और समझदार था; यदि उसमे स्त्री के लिए इतनी निर्बलता न होती, तो लिच्छवी ही क्या, समस्त वज्जियों का स्वामी होने की क्षमता उसमें थी। वह अकेला ही लिच्छवियो का खुला विद्रोह कर सकता था। पाली चेटकराज के मन की बात जान गई; वह उसके बिलकुल समीप आकर बैठ गई और इस चतुराई से उसे समझाने लगी कि चेटकराज उसके नृत्य की अपेक्षा चतुराई पर अधिक मुग्ध हो गया।

पाली की वे सब बातें उसने मान ली, फिर भी प्रकाश्य रूप से वह बिम्बसार से हारने या दामाद बनाने के लिए प्रस्तुत न था। पाली बहुत सूक्ष्मदृष्टि से चेटकराज को देख रही थी; वह चेटकराज की उस इच्छा को समझ गई जो बाहर न निकल कर मन ही मन अकुला रही थी।

पाँचवे दिन प्रातःकाल विविध वाद्य राजमहल में बज रहे थे। महाराजा चेटकराज अन्य राजा महाराजाओं के सत्कार में लगे थे; तब ही सहसा रानी चीखती हुई उनके पास आई, बहुत घबराई हुई होने के कारण वह स्पष्ट न बोल सकी किन्तु उसके कहने का भावार्थ यही था कि चेलना वहाँ से अदृश्य हो गई थी!

चेटकराज सब कुछ छोड़ कर चेलना के शयन-गृह में पहुँचा। एक दासी ने अकस्मात् सुरंग का मुँह देख लिया था, डरते-डरते उसने महाराज को वह बता दिया। चेटकराज, पत्नी और विशिष्ट योद्धाओं को साथ में लेकर सुरंग में उतर गये।

सुरंग के दूसरे छोर से बाहर निकलने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वे दूसरे के राज्य में आ पहुँचे थे। दोनों ने चेलना को देखा, किन्तु चेलना अकेली नही थी, उसके साथ बिम्बसार भी था और उनकी विवाह-विधि अभी हो समाप्त हुई थी।

चेटकराज ने सिर झुका लिया; चेलना और बिम्बसार ने उनके सम्मुख बैठकर आशीर्वाद माँगा; मौन रह कर चेटकराज और रानी ने आशीर्वाद दिया और तब मागधी भूमि पर अधिक न ठहर सकने के कारण वे दोनों पुन.

सुरंग में अदृश्य हो गये। चेलना आँसूभरी आँखों से माता-पिता को जाते हुए देखती रही।

चेटकराज किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा सुरंग में चला जा रहा था, वह यही सोच रहा था कि इतनी घटनाएं एक साथ कैसे हो गई! पाली के वचन उसे अक्षरशः सत्य मालूम हुए; उसे अपने आप पर क्रोध हुआ। चलते-चलते वह यही सोच रहा था कि अपना यह लज्जित मुँह दिखाने की अपेक्षा कहीं चले जाना अच्छा है!

आवेश में रानी शीघ्रता से चली जा रही थी, चेटकराज भी उसी गति से उसके पीछे-पीछे चला जा रहा था; एक-एक करके उसने अपनी तलवार, कटार आदि सब शस्त्रास्त्र निकाल फेंके। उसके कान बधिर हो रहे थे, आवेश के कारण उसके वक्ष का रक्त उछल रहा था। अन्त में वह चेलना के भवन में आ पहुँचा।

सुरंग के छोर से चेटकराज पहिले निकला; ऊपर आते ही सहसा उसकी मुख-मुद्रा बदल गई, उसे इतनी प्रसन्नता हो रही थी कि जैसे मृत होकर वह जीवित हो रहा हो, जैसे अंधा होने के बाद उसे आँखें मिल रही हों!.... महारानी सुरंगसे बाहर निकली, वह महाराज के इस परिवर्तनको विस्मित होकर देख रही थी!...

राजा और रानी के सम्मुख, गंभीर मुँह बनाकर वैशाली की नर्तकी आम्रपाली खड़ी थी; उसने दोनों को नमस्कार किया। राजा उसके पास आकर आवेश में बोल उठा—

'पाली, तू मानेगी? मैंने सुरंग से बाहर निकलते ही एक निश्चय कर डाला था!'

पाली ने पूर्ववत् गंभीर मुँह से उत्तर दिया—'मैं जानती हूँ!'

'तू जानती है? क्या?'

'मगधराज को मार डालने का निश्चय!'

'ऐं, पाली!....' चेटकराज विस्फारित नेत्रों से उसे देखने लगा। वह दूसरे के मन के तर्क-वितर्क भी जानती थी!

'मैं लिच्छवी हूँ राजन् !' पाली ने मुस्करा कर एक बड़ी बात कह दी...'और आप भी लिच्छवी है; क्या मै आपको नहीं पहचान सकती !'

'तुझे देख कर मुझे एक प्रकार की शांति मिलती है, पाली !'

'इसीलिए तो मै यहाँ आई हूँ !'

रानी पीछे ही खड़ी थी, पाली की चतुर आँखों ने उसके मन की बात जान ली। हँसते-हँसते वह बोली—'महाराज, एकांत में चलें; मुझे आपसे और महारानी से कुछ प्रार्थना करनी है ! आप उससे संतुष्ट हो कर उसके अनुसार करें तो मेरे अहोभाग्य !' कह कर पाली, चेटकराज और महारानी को दूसरे भवन में ले गई; उसने दूसरे सबों को वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी। तब वह एकांत में उन दोनों को अपना सोचा हुआ एक नया मार्ग समझाने लगी।

(४)

नगरश्रेष्ठी का साहस बैठा जा रहा था। आज वैशाली के संथागार में भीषण कोलाहल हो रहा था। युवक लिच्छवियों की हुंकारों, शस्त्रों की खनखनाहट और अश्वों की हिनहिनाहट ने वहाँ के वातावरण को रणक्षेत्र की तरह उग्र बना दिया। पूर्ववत अनुशासन का भाव होने पर भी, अभय की मृत्यु के बाद अनेक राजाओं के मन में स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की आकांक्षा जाग उठी थी। अभी भी आज्ञापालन शिथिल नही हुआ था, स्वातंत्र्य-प्रेमी लिच्छवियो का उत्साह और शौर्य पहले से ज़रा भी कम न होने पर भी संथागार में अब एक वैसे प्रतापी लिच्छवी सभापति की कमी मालूम होती थी जो सब ही सभासदो को संथागार में एक साथ, एक क्षेत्र के नीचे खड़ा कर सकता ! तीन चार शक्तिशाली राजा संथागार में अपनी सत्ता जमाने को प्रस्तुत हो रहे थे। इस अवस्था में यह बिलकुल स्वाभाविक था कि प्रामाणिकता से पूर्वजों की रूढ़ि निबाहनेवाले एक वृद्ध नगरश्रेष्ठी को सभापति का पद मिल जाय। किन्तु अब इन लोगों को एक साथ किसी एक ही मार्ग पर ले जाना, नगरश्रेष्ठी की शक्ति के बाहर की बात थी।

संथागारके ही एक लिच्छवी अधिकारी चेटकराज ने लिच्छवी संथागार के

अवहेलना की थी; उसने एक नही, तीन बाह्य राजाओ से अपनी पुत्रियों के विवाह किए थे, इतना ही नहीं इस बार उसने वैशाली के लिच्छवियों के कट्टर शत्रु बिम्बसार से एक कन्या का विवाह करके उनका क्रोध उग्र बना दिया था। आज परिषद होने का यही कारण था, और इसलिए प्रत्येक लिच्छवी का रक्त उबल उठा था। अपने आसन की महत्ता का ध्यान करके नगरश्रेष्ठी अपनी घबराहट और पैरों का कंपन कठिनाई से छिपाता हुआ सबों को शांत करने का प्रयत्न करने लगा।

सत्ता के आकांक्षी शिवि राजा ने बात उठाई, श्रोताजनों को भड़काने के लिए वह ज़ोर से बोला—'सभापति, चेटकराज को लिच्छवी गणतंत्र से पदच्युत किया जाय! उसे कठोर दंड दिया जाना चाहिए!' तब ही दूसरा सभासद बोल उठा—'शिविराज सच कहते हैं, चेटकराज को ऐसा दंड मिलना चाहिए जिससे एकाधिकार से सत्ता चलानेवाले और लिच्छवी परम्परा को तोड़नेवाले लिच्छवियोको सही शिक्षा मिले!' शिविराजा और उसके समान दूसरे सत्ताकांक्षी राजाओ की दृष्टि उस ओर गई—यह था चिरंजीव; वह युवक, जो वंश-परम्परागत लिच्छवी पुरुषत्व का सच्चा और आदर्श उत्तराधिकारी था। वह आगे बोला—'पूर्वजो द्वारा संस्कारित संथागार से दूर जानेवालों, लिच्छवी गणतंत्र से अलग होनेवालों, उसकी अवहेलना करनेवालों या उसमें बैठ कर अपनी एकक्षत्र सत्ता के महत्त्वाकाँक्षियों के हाथ, पैर या शरीर छेदने से या उनके प्राण ले लेने से ही हमें संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए! उसे ऐसा दंड मिलना चाहिए जिसके गंभीर परिणाम का अनुभव उसका रोम-रोम करे! लिच्छवी-गण एक है और एक रहेंगे! जो लिच्छवी, लिच्छवी परिषद से अलग हो वह जीवित रहने योग्य नहीं है!...' तुरन्त दो-तीन युवक सभासद बोल उठे—'चिरंजीव सच कहता है!....चेटकराज और उसके उपराजाओ को नष्ट करो!'

'आज ही!'

'अभी ही!'

'लिच्छवी सदैव तैयार रहते है!...'

'वीरता-प्रेरक आम्रपाली को बुलाओ!'

'हम यहीं से युद्ध के लिए प्रयाण करेंगे !'

'आम्रपाली, लिच्छवियोंको रण-भूमिकी ओर प्रयाण करानेके लिए प्रस्तुत है, किन्तु एक लिच्छवी से लड़ने के लिए नही !' कोई बोला।

सब सभासद चौंक उठे; पाली संथागार के सिंहद्वार पर खड़ी थी।

उपर्युक्त वाक्य पाली ने बहुत दृढ़तापूर्वक कहा था; सब अवाक् हो कर उसे देखने लगे।

पाली नर्तकी थी या स्वामिनी ?.... उसके छुम-छुम पायलोंवाले चरण, सभा को मुग्ध करते हुए आगे बढ़े, उनमें दृढ़ता थी। पाली, सभा के बीचों-बीच प्रवेणी-पुस्तक के सम्मुख आकर खड़ी हुई; पुस्तक को वंदन करके उसने सभापति को प्रणाम किया। देशनर्तकी को परिषद में आनेकी आज्ञा थी; इसलिए पाली के आ जाने से नगरश्रेष्ठी प्रसन्न हुआ। परिषद, हृदयस्वामिनी पाली से प्रभावित हो कर कुछ देर तक शांत रही; नायक, राजा और उपराजागण बिलकुल मौन बन कर बैठे रहे।

पाली बोली—'लिच्छवी परिषद की जय हो ! सभापति की जय हो !'

'सभापति, सेविकाको लिच्छवी गणतंत्रसे एक निवेदन करनेकी आज्ञा हो !'

'आज्ञा !'

'पूज्य परिषद !' आम्रपाली ने निवेदन करना प्रारम्भ किया—'देशनर्तकी उत्तर चाहती है, लिच्छवीगण किस दिशा की ओर बढ रहे है ? वीरत्व की ओर या पशुत्व की ओर...?'

शिवि राजा बोल उठा—'परिषद अपमानित होती है !'

पाली खीझकर बोली—'तो क्या परिषद अपना परंपरागत पुण्य खो बैठी है ?...सभापति ! प्रवेणी-पुस्तक का प्रथम खंड आज्ञा देता है कि शाश्वत वंदनीय प्रवेणी-पुस्तक के आस-पास, लिच्छवी संथागार में एकत्रित होकर, लिच्छवी गणतंत्र की परिषद सदा पवित्र रहती है ! कोई भी लिच्छवी उसका अपमान नहीं कर सकता ! उसी तरह जिस तरह अग्निशिखर पर जलबिंदु गिरता है !...तब क्या परिषद सचमुच अपमानित हुई ?'

'नहीं !' चिरंजीव बोल उठा।

'प्रवेणी-पुस्तक का अठारहवाँ खड आज्ञा देता है...' पाली दृढ़तापूर्वक बोलने लगी—'कि प्रत्येक लिच्छवी को प्राण-प्रण से प्रयत्न करना चाहिए कि लिच्छवियों की एकता नष्ट न हो, उनमें मतभेद उत्पन्न न हो ! अलग-अलग होने से लिच्छवियो का सम्मिलित अहभाव नष्ट हो जाएगा... सभापति महोदय उत्तर देंगे?...एक भुजा काट डालने से दूसरी भुजा बलवान अवश्य होगी,पर क्या एक भुजा दोनों भुजाओ का कार्य कर सकेगी ?...क्या चेटकराज को नष्ट करने से लिच्छविगण शक्तिशाली होंगे ?'

शिवि राजा आँखें लाल करके बोला—'चाहे जो हो, गणतंत्रद्रोही लिच्छवी चेटक का नाश होना ही चाहिए ?'

पाली ने गम्भीर स्वर से कहा—'कुमार्ग पर गये हुए लिच्छवियों को सन्मार्ग पर लाना लिच्छवियो का कर्त्तव्य है ।'

शिविराज अपमानित हो कर यह बात मानने के लिए तैयार नही था; बोला—'प्रवेणी-पुस्तक यह आदेश नहीं देती ।'

आम्रपाली के पास इसका उत्तर प्रस्तुत था; वह बोली—'आपके अज्ञान के लिए दक्षिणापथ की किसी स्त्री को भी लज्जित होना होगा।..प्रवेणी-पुस्तक के बीसवें खंड का अंतिम अनुष्टप किसी से पढाकर सुन लीजिएगा ।'

एक उपराजा, जो शिविराज का मित्र था बोला....'सभापति, एक स्त्री इस परिषद के सभासद का अपमान कर रही है ।'

इस बार नगरश्रेष्ठी साहस करके बोला—'लिच्छवी परिषद में स्त्री और पुरुष का भेद नही है; यहाँ सब लिच्छवी हैं ।'

चिरंजीवने धीरेसे शिविको खिझानेके लिए कहा—'इसके लिए प्रवेणी-पुस्तक के प्रथम खड का तीसरा श्लोक पढ लीजिए...' फिर खड़ा होकर बोला—'सभापति, यदि परिषद प्रवेणी-पुस्तक को भुला देने वाले के लिए दंड देने का निर्णय करे तो प्रवेणी-पुस्तक का अंतिम खंड एक नये नियम के साथ समाप्त होगा ।'

शिवि जल उठा; फिर भी कुछ बोल न सका ।

तब नगरश्रेष्ठी ने गम्भीरतापूर्वक पूछा—'किस इच्छा से आगमन

हुआ पाली ?'

पाली इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी; उसने एक बार परिषद की ओर देखा और तब नगरश्रेष्ठी की ओर घूमकर बोलने लगी—'सभापति, आज जिस लिए परिषद एकत्रित हुई है उसी कारण को लेकर मैं यहाँ आई हूँ। आज चारों ओर के राजा लोग शक्तिशाली लिच्छवी प्रजा को नष्ट करने के लिए उद्यत हो रहे हैं; वे यही चाहते है कि हम उनसे युद्ध करें, कटें, कम हो जाएँ ताकि अन्त में हम सब नष्ट हो सकें।....चेटकराज शक्तिशाली लिच्छवी है; दूसरे राजाओं ने उन्हें हमसे दूर किया है; चेटकराज के अलग हो जाने से लिच्छवीगण का शक्तिमय हाथ टूट जायगा। आज आप उसका बहिष्कार कर रहे हैं, कल किन्हीं दूसरों का बहिष्कार करेंगे; इस तरह समस्त जंबूद्वीप में विख्यात लिच्छवीगण का ऐक्य और समूहशक्ति नष्ट हो जाएगी। प्रवेणी-पुस्तक शक्तिशाली राष्ट्रों से सम्बन्ध स्थापित करने का निषेध नहीं करती, किन्तु कुछ बाद में मिलाए हुए नये नियमों ने ही लिच्छवियों को अकेले रहने की आज्ञा दी है। सच पूछें तो प्रवेणी-पुस्तक अपने स्वाभिमान रखते हुए अन्य महान राजाओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की स्पष्ट आज्ञा देती है।....यदि चेटकराज की चार कन्याओं के बाहर जाने से शत्रुओं के मन से शत्रुता नष्ट होती है तो इसमें लिच्छवियों की क्या हानि है ? लिच्छवीगण शक्तिशाली हैं, किन्तु उस शक्ति को सुरक्षित रखने से ही हम प्रगति कर सकते हैं; शक्ति को व्यर्थ व्यय करने से हमारा विनाश स्पष्ट है। शत्रु हमें उभारेंगे और लिच्छवीगण स्वदेश प्रेम के नाम पर नष्ट होते जाएँगे; प्रजा कम होगी। इसी बात पर हमें ध्यान देने की आवश्यकता है। लगातार युद्ध के कारण लिच्छवी प्रजा के नष्ट होने की अधिक संभावना है। इसलिए मैं कहती हूँ राष्ट्रों का आपसी सम्बन्ध एक दूसरे को अधिक शक्तिशाली बनाएगा; स्वतन्त्र लिच्छवीगण अधिक शक्तिशाली होंगे।...पूज्य परिषद से मेरी यही प्रार्थना है कि वह चेटकराज का सम्मान करे, अपमान नहीं; लिच्छवीगण-तन्त्रों से उसका अन्तर्भाव नष्ट न हो।'

'पर बिम्बसार हमारा शत्रु है।' शिवि के मित्र ने कहा।

पाली ने तुरन्त मुँह फिराकर उत्तर दिया—'वैशाली के लिच्छवियों का शत्रु है, समस्त वज्जियों का नहीं।'

'शत्रु की संगति...'

'परिषद से द्रोह कराती है !'

'वैशाली के लिच्छवीगण वज्जि हैं, इसलिए बिम्बसार वज्जियों का भी शत्रु है।'

पाली ने चारों ओर देखा; परिषद के कुछ सदस्य विरोध कर रहे थे। उसका स्वर बदल गया, वह नम्रतापूर्वक सभापति से बोली—'शत्रु से युद्ध को छोड़कर उसे मित्र बनाने की आज्ञा भी परिषद दे सकती है, यदि वह हमारे आगे झुके।'

झट शिवि ने कटाक्ष किया—'प्रवेणी-पुस्तक ऐसी आज्ञा भी देती है ?'

पाली ने सिंहनी की तरह मुँह फिराकर शिवि को देखा और व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोली—'जब प्रवेणी-पुस्तक के अन्य खंड सुनें, तब उनचासवाँ खंड सुनना भी न भूलें।...'

पुनः पाली ने सभापति की ओर देखा और लिच्छवीगण की स्वामिनी हो इस तरह आज्ञापूर्ण स्वर में विश्वास के साथ बोली—'सभापति, वीर लिच्छवियों को शोभा दे वैसी ही सूचना मैं परिषद को देने आई हूँ; परिषद सम्मति दे कि लिच्छवियों को प्रतिभासम्पन्न, अभेद्य और सम्मानित रखने के लिए वह चेटकराज के कार्य को मान्य करे क्योंकि इस समय परिषद के सम्मुख यही एक सही मार्ग है। लिच्छवी परिषद की जय हो ! जय स्वदेश !!'

कुछ क्षणों पश्चात उस लिच्छवी संथागार में विद्युत्प्रकाश की तरह सारी परिषद के मुख से यही उद्गार निकलने लगे; और संथागार के बाहर खड़े हुए श्रोताओं ने उन्हें सम्मानित किया। महानाम की पुत्री ने, महानाम का विस्मृत तेज जय-जयकार और जयनाद के बीच पुनः झलका दिया !

(५)

आज चेटकराज के पैर धरती पर न पड़ते थे। दूर दूर के प्रान्तों से लिच्छवी नायक और राजा लोग आये हुए थे। आज समस्त लिच्छवी

नेतागण एक ही भूमि पर एकत्र हुए। आज वे सब लिच्छवी महारथी जो सदा से एक दूसरे से दूर रहते थे, हाथ में हाथ डाल कर बैठे थे। चेटकराज की राजधानी में, पुनः वर्षों पहले की एकता के दिन आ जाने से, मदिर प्रसन्नता चारों ओर फैल रही थी।

लिच्छवियों की लोकप्रिय पाली ने परिषद को विजित किया था; तर्कों से और प्रेम से भी। केवल पाली की सामर्थ्य से ही वैशाली के अन्य लिच्छवीगण एकत्रित हुए थे। जो श्रेष्ठतम कार्य परिषद नहीं कर सकी, वह कार्य देश के लिए पाली ने कर दिखाया था। आज उसने एक लिच्छवी, एक स्थान और एक स्वर निश्चित किया, इसलिए सब से अधिक प्रसन्नता देशनर्तकी के ही हिस्से में थी।

कल चेलना विदा होगी और उसके साथ ही साथ अन्य लिच्छवी राजा भी; इसलिए आज की सभा का महत्त्व अधिक था। चेटकराज एक के बाद एक लिच्छवी नेताओं का बिम्बसार से परिचय कराता जा रहा था; बिम्बसार के उस समय के शिष्टाचार और नम्रता ने मानों लिच्छवियों के गर्व को संतुष्ट कर दिया।

वीर लिच्छवियों और मागधी सरदारों से पूरा राजदरबार भर जाने के बाद वहाँ बिम्बसार और चेटकराज ने प्रवेश किया और मुस्कराते हुए सबों को नमस्कार करते हुए आगे बढ़ते गए।

प्रसन्नता होते हुए भी सबों का मन पाली की कमी का अनुभव कर रहा था। इन लोगों की प्रतीक्षा के बाद अंत में विवाह-मण्डप में न आ कर नर्तकी पाली ने सभामण्डप में प्रवेश किया। बिम्बसार ने वर्षों बाद पाली को देखा था; आँखें चार होते ही बिम्बसार ने मुँह फिरा लिया। पहले तो वह पाली को देखते ही स्तब्ध हो गया, तत्क्षण उसके हृदय में एक आवेग उठा कि उसी क्षण दौड़ कर पाली से लिपट जाए; किन्तु कुछ ही क्षणों के अन्तर ने उसके शरीर में क्रोध, ईर्ष्या और लज्जा की भावनामय आग प्रज्वलित कर दी! उसके लिए मुँह फिराने के सिवा दूसरा मार्ग ही न था!

किंतु पाली अपने प्रियतम की मूर्ति को, कई क्षणों तक इस तरह देखती रही मानों उसे हृदय पर चित्रित कर रही हो। तब वह उसे देख कर मुस्कराती

हुई सभा की ओर देखने लगी। वाद्य और साज तैयार हुए, प्रेक्षकों ने देखने के लिए सिर उठाए और नर्तकी पाली के हाथ पैर संगीत की ताल के साथ नृत्य करने लगे। देखते-देखते सारी सभा झूमने लगी, राजा से लेकर द्वारपाल तक सब पाली के नृत्य से आकर्षित हो गए, सबों की आँखें पाली पर जा लगीं।

केवल बिम्बसार ही नर्तकी पाली के नृत्य को जी भर कर नहीं देख सका। प्रारंभ में पाली को देखते ही उसका मन प्रीति से आल्हादित हुआ था, किंतु अब घृणा और धिक्कार से तप कर उसकी आँखे अंगारों-सी लाल हो उठी थीं। जब पाली ने नृत्य करते हुए सब दर्शकों का मन अपने पर स्थिर कर लिया, तब बिम्बसार का मन कभी पाली को नष्ट करने के लिए उद्यत हुआ, कभी उसे देखते ही संन्यास ले लेने के लिए उदासीन हुआ और कभी पति-द्रोही स्त्री के रूप में भरी सभा में हाथ पकड़ कर लाने और वहाँ तिरस्कृत करके जला देने की उत्तेजना से फड़क उठा!

किंतु जब तक नृत्य होता रहा, वह अपनी विभिन्न भावनाओं से दग्ध होता रहा क्योंकि सारी सभा आम्रपाली पर मुग्ध हो कर उसके नृत्य को निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी। पाली के अंग-प्रत्यंग, उसकी मदमयी गति-शीलता उसका प्रत्येक क्षणवर्ती अभिनय, उसकी मनोहर मुद्राएँ और अंग-विन्यास, उसके अधरों की मुस्कान और मुख पर की भावभगिमा ने प्रत्येक को विमूढ़ बना दिया। अपने नृत्य के पीछे प्रत्येक को पागल बना कर पाली 'न भूतो न भविष्यति' हो गई थी। आज की सभा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण थी। जब नृत्य समाप्त होने आया तब, पाली ने नाचते-नाचते बिम्बसार के निकट आ कर उसके चरणों में फूलों की एक रसमयी सुन्दर भेंट रख दी और नृत्य समाप्त किया। बिम्बसार की सहनशीलता का सीमोल्लंघन हो गया, उसने भरी सभा मे आम्रपाली की ओर देखा भर नहीं बलिक उसके जाते ही लोगों की दृष्टि बचा कर उस फूलों की सुकुमार भेट को मसल डाला! संजय निकट ही खड़ा था, पुष्पों के रौंदे हुए उपहार को देख कर उसका हृदय आहत हो गया; उसने उन फूलों के भीतर सोलह शृंगारों से सजी हुई उस छोटी-सी कठपुतली को देखा!

इतना ठीक था कि सभा अभी तक पाली के नृत्य में विभोर होने के कारण

सुध में न आई थी इसलिए बिम्बसार का वह तीव्र क्रोध देख न सकी नहीं तो कुछ ही क्षणों में वहाँ का वातावरण जाने क्या स्वरूप धारण कर लेता ! किन्तु बिम्बसार की वह विक्षुब्ध क्रिया चेटकराज से छुपी न रही; उसे भी क्षोभ हुआ, पर मौन रहा। पाली के उस मदमय प्रेमरस ने उसके मन में जामाता के प्रति रोष भी उत्पन्न किया; उसने एक बार मृदु दृष्टि से पाली की ओर देखा भी, किन्तु उससे दृष्टि मिलाते ही आँखें झुक गई।

सभा समाप्त होते ही बिम्बसार शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चला गया। संजय को दुःख के साथ ही साथ क्रोध भी हुआ; वह निराश हो गया। दोनों के हृदय की बात ठीक तरह से वही जानता था, और यही उसके निराशामय दुःख का कारण था।

रात हुई। विवाह की प्रथम-रात्रि के विषय में जो कुछ कवियों और राज-गायकों ने गाया है आज वैसा कुछ ज्ञात न होता था; जो भी चेटकराज का वृद्ध बीनकार वीणा के तार छेड़ रहा था। मन में अननुभूत भावनाओं को सहला कर चेलना प्रथम-रात्रि का संगीत सुनती हुई बिम्बसार की प्रतीक्षा कर रही थी; वृद्ध बीनकार की तानें उसकी उत्कण्ठाओं को जागृत कर रही थीं, किन्तु अभी तक बिम्बसार ने शयन-गृह में पैर न रखा। चेलना का हृदय विभिन्न भावनाओं और विचारों से कंपित हो रहा था; उसे पौ फटते ही यहाँ से बिदा होना था। राजमाता दस बार कानों में कह गई थी कि उसे बहुत सबेरे उठ जाना चाहिए क्योंकि चैत्य-पूजा भी करनी थी; चेलना यह बात बहुत अच्छी तरह जानती थी कि बिदा के पहिले बहुत भक्ति-पूर्वक चैत्य-पूजा करनी चाहिए नहीं तो अनिष्ट होता है !

रात गहरी हो चली, चन्द्र आकाश में दौड़ा जा रहा था। चेलना का बहुत सावधानी से किया हुआ श्रृंगार अस्तव्यस्त होने लगा। पुरुष को बाहर से आसक्त कर देने के स्त्री-सुलभ स्वभाव को लेकर ज्यों-ज्यों रात बीतने लगी त्यों-त्यों उसके मन का भय बढ़ने लगा—यदि ठीक समय पर उसे बनना चाहिए वैसी न बन सकी तो ?....समय के बीतने के साथ उसकी आशंका भी बढ़ने लगी कि संभवत: बिम्बसार न भी आये; कौन जाने, संभव है प्रथम-रात्रि में

बिम्बसार, मनुष्यता के बहुत निम्न-स्तर पर होने वाली ईर्ष्या से जल उठा। वह किसी भी रूप में पाली का नाम सुनना नहीं चाहता था। इस बार उसने अपने भावों को बहुत प्रयत्न करके दबा रखा।

बिम्बसार को अचानक चुप देखकर चेलना उसके और समीप आ गई बोली—'मुझसे आपने पूछा नहीं, कैसे?...अच्छा, रहने दो, मैं ही कहती हूँ....आप जानते हैं कि सब से अधिक आपकी प्रशंसा करने वाला कौन है?.... यही प्रसिद्ध नर्तकी। रात दिन मेरे सम्मुख आपके ही गुणगान करने वाली भी यही सुन्दर नर्तकी है! अब मुझे मालूम हुआ कि वह बहुत बढ़ा चढ़ाकर आपकी प्रशंसा करती थी—मुझे फुसलाने के लिए!....' चेलना ने आँखों में मृदु रोष भरकर कहा।

बिम्बसार अचानक हँस पड़ा, बोला—'तुम्हें फुसलाने में नर्तकी को क्या लाभ था?'

बिम्बसार के इस प्रश्न मे, कटुता छिपी हुई थी; यह बात चतुर चेलना समझ गई। वह रंग में भंग करना नहीं चाहती थी; मृदु मुस्कान के साथ बोली—'नर्तकियाँ आपको पसन्द नहीं हैं?...यह तो बड़े आश्चर्य की बात है! मुझे तो बहुत पसन्द हैं!'

'मैंने कब कहा कि नर्तकियाँ मुझे पसन्द नहीं हैं?'

'तब यह नर्तकी ही पसन्द क्यों नहीं है?....महाराज, आम्रपाली केवल नर्तकी ही नहीं, मेरी सखी भी है, गुरु भी है! देव, पाली अद्भुत है!.... क्या आप उसे नहीं पहचानते?'....

बिम्बसार के पैरों में जैसे काँटा चुभ गया!...घबराहट के कारण वह कक्ष में टहल रहा था; यह बात सुन कर न वह आगे बढ़ सका न पीछे। खड़े-खड़े वह केवल चेलना को देखता रहा...पाली को, अपनी पाली को क्या वह स्वयं नहीं पहिचानता? उसकी इच्छा चेलना से यह पूछने की हुई कि वह पाली को कितनी पहिचानती है? उसके हृदय में आम्रपाली के लिए जो कटुता थी, वह चेलना की बात सुन कर और बढ़ गई; किन्तु उसने बलात् भावों को उभर आने से रोक लिया। विवाह की पहली रात को इसके सिवा कोई दूसरा मार्ग न

था; बोला—'तुम सच कहती हो, मैं उसे नहीं पहचानता !'

'तो ऐसा कहिए; आप जानते हैं यदि वह देशनर्तकी न बनती तो क्या करती ?'

बिम्बसार ने सोचा था कि चेलना देशनर्तकी की बात को छोड़ देगी, किंतु उसकी बात बढ़ती जाने के कारण ऊबकर मुख पर खेद का भाव दबाकर वह बोला—'आत्म-हत्या करती !'

'महाराज !' चेलना ने प्रेम-भरा रोष दिखाते हुए कहा—'ऐसा अशुभ मुँह से न निकालिए....आम्रपाली किसी महाराजा की रानी बनती !'

बिम्बसार एकाएक बोल उठा—'अशक्य, असम्भव ! एक तुच्छ नर्तकी !...'

'हाँ, महाराज....' बिम्बसार को चिढ़ाने के लिए चेलना बोली—'एक दिन ऐसा भी था, जब हम सब बहनों ने यहाँ सुना था कि महानाम की पुत्री आम्रपाली, मन से बिम्बसार को वरण कर चुकी है; हम सुनती थीं....'

'क्या सुनती थीं ?....' बिम्बसार एकदम चौंककर घबराहट में पूछ बैठा। रानी चेलना ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—'सुनती थी कि मगधराज छद्म-वेश में पाली को देखने गये थे; और बड़ी से बड़ी हानि सहकर उससे विवाह करने का प्रयत्न किया था...यह बात सच है ?....'

'झूठ....बिलकुल झूठी बात है !'

'आम्रपाली मुझे यह कहना कैसे भूल गई कि मेरे महाराज असत्य बोलना बहुत अच्छी तरह जानते हैं ?...'

बिम्बसार चेलना से हार गया; किन्तु अपनापन बचाने के लिए वह बोला—'देवी, मैं देखने अवश्य गया था, पर पाली को नहीं...'

'पर पाली को देखा तो था न ?'

'हाँ, पर जाने का कारण दूसरा ही था !'

'...विवाह करने का ?'

बिम्बसार ने चेलना के हाथ पकड़ लिये; और उसके बहुत समीप जाकर बोला—'देवी, यह बात हम यहीं समाप्त नहीं कर सकते ?' चेलना बिम्बसार को वैसे ही छोड़ देनेवाली न थी, उसका मन चंचलता से मस्त हो रहा था; बोली—'ना प्रभु, आज मैं अपनी सखी को नहीं भूल सकती !....'

बिम्बसार ने चेलना के हाथ छोड़ दिये, और कुछ दूर हट गया। क्षण-भर चेलना उसे देखती रही, तब कुछ आर्द्र स्वर में बोली—'देव, उस प्रेम-मयी के कारण ही मुझे यह महत् सुख देखने को मिला है, इसे मैं भूल नहीं सकती; उसीने मेरे मन के द्वार खोले हैं! मैंने विवाह न करने का निश्चय किया था, फिर भी जाने कैसे मैं उसके शब्दजाल में फँस गई।....मुझे उसने झकझोर कर कैसे जगाया, मेरे विषादमय जीवन में कैसे उसने प्रेमांकुर उत्पन्न किया; मैं संसार को किसी और ही तरह से क्यों देखने लगी, मैं आपकी कैसे बन गई—यह सब मैं कुछ भी न समझ सकी!....और जब समझी तब केवल आम्रपाली ही याद रही!....महाराज, यह दिव्य नर्तकी अद्भुत है, आज उसके पुण्य-प्रताप से सर्वत्र मंगल दिखाई दे रहा है!....आज उसी मंगलमयी के कारण यह नगरी इन्द्रपुरी बन गई है!....महाराज, आपके जीवन में प्रविष्ट होने के लिए पहला पैर रखते हुए मैं आपसे एक ही वस्तु माँगती हूँ—मेरी सखी को आप घृणा से नहीं, प्रेम से देखेंगे!....और कुछ भी नहीं तो केवल इसी लिए कि वह मेरी सखी है!....'

चेलना के कंठ की अतीव आर्द्रता में छिपी हुई सच्ची भावना को बिम्बसार जड़ हो कर देखता रहा। चेलना खड़ी हो गई और बिम्बसार के दोनों हाथ पकड़ कर पुनः बोली—'वरदान दीजिए महाराज, वचन दीजिए!....'

उत्तर में बिम्बसार ने चेलना को पकड़ लिया और चन्द्रिका से अभिषिक्त अट्टालिका में ले जाकर बोला—'प्रयत्न करूँगा चेलना, अवश्य प्रयत्न करूँगा!....' कह कर उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी।

इस समय वृद्ध बीनकार का संगीत अपनी सम्पूर्ण गति से खिल उठा था।

रात बढ़ने लगी...जब चेलना गहरी निद्रा में मग्न थी, तब धीरे-धीरे बिम्बसार शय्या से उठ कर खड़ा हो गया, वह उसका मुख निहारने लगा—चेलना के निर्दोष मुख पर मानों अभी भी वे ही शब्द खेल रहे थे—'वरदान दीजिए महाराज, वचन दीजिए....मेरी सखी को आप घृणा से नहीं, प्रेम से देखेंगे...!' बिम्बसार धीरे-धीरे वहाँ से बाहर आ गया, उसका मन भ्रमित हो रहा था; कुछ भी सूझ नहीं रहा था, हृदय की घबराहट तीव्र हो गई थी। महल से बाहर आकर वह धीरे-धीरे उद्यान में आकर बैठ गया।

सहसा उसे ध्यान आया कि वह उद्यान-विहार के लिए बनाये गये एक आसन के पास बैठा था, उससे कुछ ही दूर, प्राय: बहुत ही कम अन्तर पर एक मन्दार वृक्ष था, उसके पास ही जुही, और उससे लगी हुई मालती थी....उसे नन्दीग्राम याद आया। उस महल का उद्यान याद आया, और उद्यान की बैठक; ओह! सुगन्ध भी वैसी ही थी; उसने ऊपर देखा—चन्द्रमा भी वैसा ही था; इधर-उधर देखा—रात भी वैसी ही थी; यदि कमी थी तो पत्तों की खड़खड़ाहट करके किसी के आगमन की!...उसे भ्रम हुआ, पुन: पत्तों की खड़खड़ाहट हुई; उसने पीछे देखा और चौंक कर खड़ा हो गया; जीभ के छोर पर आया हुआ आम्रपाली का नाम वहीं रुक गया!....पत्तों की खड़खड़ाहट उसका भ्रम नहीं, सत्य था। बिम्बसार ने देखा कि एक छोटे-से पौधे को हटाकर संजय उसके सम्मुख खड़ा हुआ है। भ्रम टूट गया; दोनों एक दूसरे को देखते रहे। बिम्बसार ने विस्मित होकर पूछा—'संजय, तू अभी तक मेरे पीछे-पीछे ही घूम रहा है?....'

'नहीं देव!'

'नींद नहीं आती?'

'नहीं, महाराज!....'

'तब और कोई कारण नहीं है!'

'है, देव!'

'तो अब तक तूने मुझसे नहीं कहा!'

'अब तक समझ नहीं सका था कि कैसे कहूँ! अब कुछ-कुछ समझा हूँ।'

बिम्बसार स्थिर दृष्टि से उसे देखने लगा; संजय भी उसे देख रहा था। वह वैसी दृढ़ता और शांतिपूर्वक बोला, जैसे उसके हार्दिक आवेग को रोकने की सामर्थ्य किसी में न हो—

'महाराज, अन्याय और निष्ठुरता को देखने के लिए आँखें खुली रखनी ही पड़ती हैं, इसीलिए जागता और भटकता हूँ....।'

तत्क्षण बिम्बसार का स्वर बदल गया, कुछ कठोरता से उसने कहा—'संजय!'

किन्तु संजय ने बिम्बसार को और कुछ कहने न दिया; दौड़कर वह उसके पैरों में लिपट गया और बोला—'एक बार मुझे अपना वही भोला और सरल मित्र समझ कर आज्ञा दें !...'

बिम्बार ने आवेश को रोक लिया बोला—'संजय, तू मागधियों का महामंत्री है, और मैंने तो तुझे सदा अपना मित्र ही समझा है !'

'तो महाराज, मुझे जो कुछ जी भर कर कहना चाहूँ, कह लेने दीजिए...!'

बिम्बसार ने संजय को उठाकर पास बैठाया और स्नेहपूर्वक बोला—'कह सखा !...मैं तेरी कोई बात नहीं टाल सकता, मैं तेरी किसी भी राय से विमुख नहीं हो सकता....जो कुछ कहना हो कह दे !'

संजय का गला भर आया था; कुछ देर वह सिर झुकाये बैठा रहा, तब बिम्बसार को देखकर गद्‌गद् कंठ से बोला—'महाराज आपका यह अकिंचन बालसखा यही चाहता है कि आप आम्रपाली को घृणा से न देखें...!'

बिम्बसार अवाक् होकर संजय को देखने लगा। संजय भी शब्दशः वही बोला जो चेलना ने कहा था; उसकी वह याचना और भावना ठीक चेलना जैसी ही थी। मानों दोनों ने एक ही ढंग से यह एक ही बात कहने का पहिले से निश्चय कर लिया हो !

कुछ देर तक बिम्बसार संजय को उसी तरह देखता रहा; कभी चेलना और कभी संजय उसकी आँखों के आगे झिलमिलाने लगे। हृदय को जैसे एक जोर की ठेस लगी, क्षण भर में अंधकार दूर हो गया !...घृणा सहसा विलीन हो गई।

वह संजय से सिमिटकर बैठ गया, और आवेश मे बोला—'बोल सखा कह, मैं आम्रपाली को घृणा से क्यों न देखूँ ?'

संजय उसे विस्मित होकर देख रहा था, आँखें भर कर उसने कहा—'सुनोगे महाराज ?....देखो....' कहकर उसने वह मसली हुई कठपुतली उसके हाथ में रख दी; पुतली के रौंदे हुए हृदय में दो अँगूठियाँ दबी हुई दिखाई दे रही थीं। विवाह के बाद यह बिम्सार की दी हुई एक भेंट थी !

(६)

'तो अब तक मुझसे यह बात क्यों नहीं कही संजय ?' पुतली को हाथ में खिलाते हुए बिम्बसार ने पूछा; उसका सिर झुका हुआ था।

'महाराज, पाली की यही आज्ञा थी ! मैं उसके आत्म-त्याग की बात आपसे कहता उसके पहिले वह आपकी पत्नी हो चुकी थी; उस आत्म-त्याग की बात सुनकर आप लिच्छवियों से शत्रुता का बदला लेने का निश्चय करते, और राजनीति भूलकर व्यर्थ ही असंख्य मागधियों के रक्त की नदियाँ बहा देते; इतना ही नहीं, पाली स्वयं अपने देशवासियों को आपके विरुद्ध लड़ने को प्रोत्साहित करके अकारण ही उनकी मृत्यु का कारण बनती!...महाराज, पाली अपने पति को स्त्री के पीछे पागल होनेवाला दुर्बल मनुष्य नहीं, बल्कि सच्चा सम्राट बनाना चाहती थी ! महाराज, आपने भीषण अन्याय किया है, आपको, इस संसार में पाली से अधिक चाहनेवाला कोई नहीं !...उसकी मुस्कान के पीछे आपकी रिक्तता में विक्षुब्ध हृदय है, उसके नृत्य के पीछे अपने देश और जाति को बचाने की उच्च भावना है !....उसका शरीर नृत्य से सुगठित और नर्तकी के रसों से अभिषिक्त अवश्य है, पर महाराज, उसका हृदय और मन हम सबों से ऊँचा है, बहुत ऊँचा है !....'

बिम्बसार शांतिपूर्वक सुनता रहा, उसके ओंठ धीरे-धीरे हिले—'उसने मुझे सुखी करने के लिए इतनी वेदना सही, देश को सुखी करने के लिए उसने देह का बलिदान किया !'

'हाँ, देव ! इस प्रेममूर्ति पर इसी तरह अनेक आघात हुए; वह पति से दूर, पुत्र से अलग रहकर, जीवन के सुख को सदा के लिए छोड़ कर अपना सच्चा कर्तव्य निबाहती रही, उसे ही आप...'

'संजय, तू निर्दय है, तूने मुझे यह सब करने क्यों दिया ?'

'मुझे निर्दय होना पड़ा महाराज ! पर, पति ही पत्नी को अधिक निकट से पहिचानता है ! यदि जौहरी ही हीरों को न पहिचान सके तो इसमें किस का दोष है ?...आप केवल पाली से प्रेम करना जानते थे, पहिचानना आपने नहीं सीखा !'

संजय इतना कह कर चुप हो गया; उसका कंठ भर आया था; उसने मर्यादा को लाँघ कर बहुत कुछ कह दिया, फिर भी बिम्बसार ने चुपचाप सब कुछ सुना। उसे अब ज्ञात हुआ कि पाली को हर एक व्यक्ति क्यों चाहता है, उसकी छाया मे बैठ कर हर कोई उसका पुजारी क्यों बन जाता है ? कुछ देर ठहर कर संजय ने मंद स्वर में कहा—'क्षमा करें, महाराज ! मुझसे सहन नहीं हो सका इसलिए....'

'मित्र, तेरी बाते मुझे क्रोध नही दिलातीं, मेरी आँखें खुली हैं; मुझे अब समझ में आता है कि मैंने चेलना को पसन्द क्यों किया; हार्दिक अनिच्छा होते हुए भी मैंने उससे बलात् प्रेम करने की चेष्टा कैसे की !...संजय, पाली मेरे मन में ही बैठी थी, और बैठी है, मैंने उसे वहाँ से हटाने की व्यर्थ कुचेष्टाएँ की, मैं यह बात समझ न सका था !....मैंने एक पर क्रोध करके अनेकों को कष्ट देना चाहा, और दुःखी किया !'

'नहीं, महाराज, ऐसी अशुभ बात न कहें !....महाराज के लिए अनेक महारानियाँ होनी चाहिए, यह राजा का धर्म भी है !...किन्तु हृदय की सम्राज्ञी तो जो होती है वही होती है ! फिर चाहे वह पट्टरानी बने या...'

बिम्बसार यह उपदेश चुपचाप सुन रहा था; वह संजय का संकेत समझ गया, किन्तु कुछ बोला नहीं। संजय को और अधिक कहना उचित प्रतीत न हुआ, जो कुछ कहना चाहिए वह उसने कह दिया था। वह वहाँ से उठ खड़ा हुआ और वंदन करके चला गया।

बिम्बसार विश्राम-बैठक पर बैठा रहा; उसके एकाकी हो जाने पर विचारों और भावनाओं को कुछ बाधा न रही; उसका हृदय और मन एक साथ पुकार उठे—'पली मुझसे महान निकली...'

उसी समय दूसरी ओर—

पाली अकेली ही जानती थी कि बिम्बसार का स्मरण होते ही वह अपने आपको कितनी निःसहाय अनुभव करती थी। जिस समय बिम्बसार उद्यान में अकेला बैठा था उस समय पाली शय्या में मीन की तरह तड़प रही थी।....प्रियतम मिले, न मिले सरीखे !....उसने बिम्बसार को देखने भर के

लिए क्या कुछ नहीं किया !....कितने संकट झेले, कितनी विपदाएँ सहीं !! और जब मिले, तो लगा कि न मिले होते तो अच्छा होता !....सहस्रों बार उसने अपने मन में बिम्बसार और चेलना के विवाह का दृष्य खींचा और मिटा दिया; अपने प्रियतम को अपने हाथों दूसरे को सौंप दिया !....

गत पाँच वर्षों में कितने ही रसिक पुरुषों से उसका सम्पर्क हुआ था, उनके व्यवहार मन को आकर्षित करने जैसे थे। यदि उसने उस निम्न सुख की इच्छा की होती तो आज उसके जैसा सुखी और कोई न होता; किन्तु उसने सैकड़ों को मूर्ख बनाया था; मूर्ख बनाने की कला में वह इतनी निपुण थी कि जो मूर्ख बनता उसे यह ज्ञात ही न होता था कि वह मूर्ख बना है। उसके द्वार पर रूप, शक्ति और संपत्तिशाली कई राजा, श्रेष्ठि और गृहस्थ लोग रूप की भीख मांगने आते थे। उनके लोचन मन को खीचते थे, उनकी बोली से मन डोल उठता था !...ऐसों के साथ रात दिन मनो-विनोद में समय बिताते हुए भी पाली अपने को कैसे सम्हाल सकी थी यह वही जानती थी...पुत्र से वियुक्त होने के बाद इस नर्तकी के जीवनक्रम में विचित्र परिवर्तन हो गया। पाली ने नर्तकी बन कर नर्तकी का कर्तव्य पूर्णता से निबाहना सीख लिया था; उसे धीरे-धीरे दुःखों को जला कर हँसने का अभ्यास हो गया। वर्षों के बीतने के साथ उसके दुःखों में वृद्धि हुई थी। फिर भी वह उन्हें भूलना सीख गई...इतने पर भी उसके हृदय ने बिम्बसार की स्मृति को छोड़ा नहीं। वर्षों बाद आज पति को देखा; कदाचित और वर्षों तक देखने को न मिले यह सोच कर, और आज के मिलन की बात सोच कर पाली निराशा मे डूब गई और शय्या पर व्याकुल हो कर लोटने लगी; वैसे भी शांति न मिली और थक कर शय्या पर बैठ गई।

सवेरे जब सुनेत्रा ने शयन-गृह में पैर रखा तो देखा कि पाली वैसी ही बैठी थी। उसने सारी रात सोचने के बाद यही निष्कर्ष निकाला कि सब दोष उसीका था, बिम्बसार उसे क्यों देखे ? उसने अपने में देखने जैसा रखा ही क्या था?....इसके बाद भी पाली का नारी-हृदय चाहता था कि बिम्बसार ने एक बार भूल कर भी यदि उसकी ओर प्रेम से देख लिया होता तो उसकी इतने एकाकी वर्षों की वेदना धन्य हो जाती ! यही एक बात पाली

के मन को उत्थित और पतित कर रही थी; सहसा सुनेत्रा ने उसे सचेत किया—'देवी, देवी, शीघ्र शृंगार कीजिए !'....

'क्यों, क्या है ?....कोई आया हो तो उससे कह दे कि मैं.

'देवी, मगधराज इस ओर आ रहे हैं !'

'एँ !...' चौंककर पाली ने आँखें विस्फारित करके उसे देखा।

'हाँ, देवी ! अब तक वे आ भी गये होंगे, मैं आपको करने आई हूँ, विलम्ब न कीजिए !'

पाली सहसा खड़ी होकर, ऊँचे स्वर बोली—'जा, मूर्खा ! जा यहाँ से, उनके स्वागत की तैयारी कर ! सुप्रभा और तू जाकर दासियों से कह कि उनका सत्कार करने के लिए वे प्रवेश-द्वार पर खड़ी रहें ! जा मेरे सामने खड़ी न रह !' कह कर पाली उल्लासपूर्वक अपना शृंगार करने की शीघ्रता में इधर-उधर दौड़ने लगी। वह इन्ही संकल्प विकल्पों में खो गई कि ऐसा क्या पहिन कर वह अपने घर आये हुए प्रियतम का मनोरंजन करे ? याद आया—एक दिन नंदीग्राम में बिम्बसार ने उसे नीले रंग की कँचुकी पहनने का हठ किया था; वह उसे ढूँढ़ने की शीघ्रता करने लगी। फिर याद आया—उनके प्रथम-मिलन में बिम्बसार ने उसके हाथों में बँधे हुए बाजूबन्द को ध्यान से देखा था; उन्हें शुभ समझ कर उसने एक के बाद एक आभूषण एकत्रित करके शृंगार करना प्रारंभ किया। उस समय वह इतनी अस्त-व्यस्त हो रही कि हाथ के आभूषण पैरों में, ओर पैर के आभूषण गले में पहनने लगी। उसका सारा शरीर काँप रहा था। 'मगधराज आ रहे हैं' इन शब्दो ने उसकी कल दिन-भर की थकावट ओर रात-भर के जागरण को जाने कहाँ विलीन कर दिया। प्रेम और प्रिय के पीछे बावरी होकर पाली, प्रियतम को रिझाने के लिए अपना सब कुछ भूल गई।

इतनी शीघ्रता करने पर भी बहुत समय बीत गया; अन्त में जब सुनेत्रा ने पंचधातुओंवाला दर्पण उसे दिखाया तब ही वह रुक गई; कुछ देर तक वह अपने को दर्पण में देखती रही।....तब उसने एक-एक करके सब आभूषण निकाल कर फेंक दिये; सुनेत्रा यह देखकर अवाक् रह गई; मुँह

खोले वह पाली को देखती रही। अलकें ठीक करते हुए पाली की दृष्टि अपने पिता की दी हुई अँगूठी पर पड़ी; और वह अँगूठी पहिन कर उसने निश्चित कर लिया कि वह अपना कर्तव्य निबाहने के लिए हृदय में से बिम्बसार को सदा के लिए दूर कर देगी!

आभूषण फेंक देने का यही कारण था।

उसने बैठते हुए सुनेत्रा से पूछा—'सुनेत्रा, तूने मगधराज से क्या कहा?'

'देवी, मैंने कहा कि देवी शृंगार करके अभी ही आपकी सेवा में आती है।'

'मूर्खा!....' पाली सहसा खड़ी होकर चिल्ला उठी—'अन्धी! हट जा मेरे सामने से, चली जा यहाँ से! सावधान, जो अब मुझे दिखाई भी दी तो।...'

'पर, माँ....'

'मुँह न खोल। तुझे यह चतुराई करने को किसने कहा था कलंकिनी! बोल न गूँगी, बोलती क्यों नहीं?'

'आ....आपने ही तो कहा था कि जाकर उनका सत्कार करो।'

'अन्धी, मूर्खा! मैंने तुझे सत्कार करने का कहा था या यह भी कहा था कि मैं भी आऊँगी ऐसा कह दे? भाग यहाँ से। कहाँ जाती है? खड़ी रह!'

सुनेत्रा अर्धमृत-सी उसके पास आकर खड़ी रही; पाली ने पूर्ववत् रोषपूर्वक कहा—'कह दे, मैं यहाँ नहीं हूँ; सुभद्रा तैयार होकर सेवा में उपस्थित होती है।'

'पर माँ सुभद्रा तो कल ही यहाँ से चली गई।'

'फिर चतुराई? जो मैं कहती हूँ वह कह दे। बुद्धि भी है कि सब राख हो गई? जा, चाहे जो कह दे; चाहे जैसे हो, उन्हें यहाँ से बिदा कर।'

किसी ने कभी भी पाली को इतनी क्रोधित नहीं देखा था। उसका यह अकारण क्रोध देखकर सुनेत्रा तो भय से इतनी सूख गई कि यदि किसी ने उसे काट डाला होता तो भी रक्त न निकलता। उसे अभी तक यह विश्वास नहीं हो रहा था कि यह बोलनेवाली उसकी सदा की स्वामिनी आम्रपाली थी या कोई दूसरी?...किसी तरह प्राण बचा कर वह वहाँ से चली गई।

पाली से मिलने की उमंग में बिम्बसार के पैर धरती पर टिक नहीं रहे थे।

सुनेत्रा को पुनः अकेली लौटती देख कर वह हँस पड़ा और धीरे से बोला—

'देवी आ रही है ?'

'अभी ही आ रही थी; पर मैं यह कहती थी...पर....'

'पर क्या ?'

'पर, मैंने आपसे क्या कहा था ? हाँ याद आया, देवी आम्रपाली यहाँ नहीं है, सुभद्रा अभी ही आपकी सेवा में उपस्थित हो रही है...' और बात वहीं समाप्त कर दी हो इस तरह आस-पास देख कर पुकारने लगी—'काली, सुन्दरी, कहाँ गई ?....' कह कर वह भाग जाने को उद्यत हुई। किन्तु बिम्बसार ने हाथ पकड़ कर उसे रोक लिया, उसे देख कर मुस्कराया, और गाल पर एक हल्की-सी चपत लगा दी; सुनेत्रा घबरा कर एक डग पीछे हट गई। उसकी जीभ तालु से चिपक गई थी। तब बिम्बसार ने, सुनेत्रा के 'ना' 'ना' करते हुए भी अपने गले से तीन मालाएँ निकाल कर उसके हाथ में रख दीं और धीरे से उसके कान में कहा—'भीतर जाकर देवी से प्रार्थना कर वे यहाँ नहीं आ सकतीं तो मैं वहाँ आ रहा हूँ।'

'अरे बाप रे !...नहीं, नहीं, महाराज ! मैं देवी से कहती हूँ—याने सुभद्रा से कहती हूँ....याने...याने मैंने क्या कहा ? मैने कुछ नहीं कहा न ?' कह कर सुनेत्रा प्राण लेकर वहाँ से भागी।

बिम्बसार यहाँ छुप कर आया था; उसके पास अधिक समय न था। सुनेत्रा के जाते ही वह प्रासाद के अन्तःप्रदेश में जा पहुँचा; सुनेत्रा उसके सम्मुख ही थर-थर काँपती हुई खड़ी थी। बिम्बसार उसके निकट आया; वह अब और अधिक झूठ नहीं बोल सकती थी; बिम्बसार को समीप आता देख कर वह ज़ोरों से रो पड़ी; उन तीनों मालाओं को बलपूर्वक मुट्ठी में पकड़ कर वह वहाँ से भाग गई।

सुनेत्रा का वह परिवर्तित रूप बिम्बसार देख न सका; वह सीधा शयन-गृह के बन्द द्वारों के पास आकर खड़ा हो गया और कड़ी खटखटाकर धीरे से बोला—'पाली।'

पाली भीतर खड़ी थी; उन द्वारों के बिलकुल पीछे। वह द्वार से सट कर खड़ी हो गई; बाहर से बिम्बसार का मृदु स्वर सुनाई दिया—'पाली ! जड़

वस्तुएं मनुष्यों को एक दूसरे से दूर रख सकती हैं, किन्तु उनके हृदयों को दूर नहीं रख सकतीं, द्वार खोलो।'

उत्तर न मिला।

'पाली।'

फिर भी उत्तर न मिला।

'पाली....।'

पाली निरुत्तर थी

'प्रिये, क्या क्षमा माँगनेवाले को क्षमा करना लिच्छवियों का धर्म नहीं है? संजय ने मुझसे सब कुछ कह दिया है; द्वार खोलो।'

पाली निरुत्तर थी; निरुत्तर ही रही।

'पाली, मैंने तुझे भूलने का बहुत बहाना किया, मन ही मन तेरा तिरस्कार भी किया किन्तु आज वही तिरस्कार दूना होकर मुझे विक्षुब्ध कर रहा है। द्वार खोल दे।'

पाली अब भी मौन थी। बिम्बसार का स्वर धीमा हुआ—'यदि पतित पति को देखते हुए लज्जा आती हो तो द्वार न खोलना, प्रिये !....पर एक देशनर्तकी के रूप में मुझे देखने से संकोच होता हो तो मुझ जैसा अभागा कोई नहीं है। पाली, तू मेरी है; चाहे तू मुझसे दूर रह कर नर्तकी बन जाय, संन्यासिनी हो जाय पर तू मेरी है। द्वार खोल, पाली ! तुझ जैसी देश-नायिका को देख कर मैं गर्व और आनन्द से पुलकित हो जाऊँगा; तेरा दर्शन, मेरा अहोभाग्य होगा।'

पाली के गले में हिचकियाँ बँध गईं; उसे छिपाने के लिए वह अपनी चुंदरी का छोर मुँह में लेकर खड़ी रही। पुन: बिम्बसार का स्वर सुनाई दिया—'पाली, मुझे पति के रूप में भले ही न आने दे पर तेरे पुत्र का पिता समझ कर तो मुझे एक बार भीतर आ जाने दे; मुझे इतना अभागा न बना, पाली !'

सिसकी सुनाई न दे इस डर से पाली ने मुँह को दबा दिया। बिम्बसार का प्रार्थनामय स्वर फिर सुनाई दिया—'क्या मैं सम्पूर्ण रूप से तेरे हृदय से निकल गया हूँ ?'

यह प्रश्न सुन कर पाली पागल की तरह द्वार पकड़ कर खड़ी रही, उसके ओंठ काँप उठे—'नहीं, नहीं, मेरे प्राण ! तुम मेरे रोम-रोम में हो ! मेरी प्रत्येक साँस में हो !' किन्तु केवल ओंठ ही काँपकर रह गये; उसने स्वर को बाहर न निकलने दिया। स्वर का कार्य अश्रुओं ने किया।

बिम्बसार का कण्ठ-स्वर सुनाई दे रहा था; उस स्वर में दुःख, प्रेम और हार्दिक अनुताप था। वह बोला—'मुझे अपना मुँह दिखाने का अधिकार नहीं है; और मैंने सुना है कि तुम्हारी प्रवेणी-पुस्तक में अनधिकारी को देखना पाप कहा गया है !...पर पाली, आज नहीं तो कल, तू मुझे क्षमा अवश्य कर देना, क्योंकि मैं क्षमा का पात्र हूँ। मैं जाता हूँ...पाली ! जीवन में कुछ दिन ऐसे भी बीते थे जब मुझे लगता था कि स्वर्ग यहाँ पृथ्वी पर ही है, और उसका साक्षात्कार मुझे तूने ही कराया था ! ...आज मैं जाता हूँ, विना क्षमा के, विना दर्शन किये। आज मुझे अनुभव हो गया कि मैं यहाँ से हृदय को प्रेम से भर कर, और प्रेम से ही पराजित होकर जा रहा हूँ ! तुझे और तेरे पुत्र को इच्छित सुख मिले ! किन्तु यदि किसी दिन इस भूले हुए 'अपने' को क्षमा करने की इच्छा हो तो मैं मृत्युशय्या से उठकर भी उस खोये हुए प्रेम का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहूँगा, क्योंकि मैं अपना हृदय यहीं रखकर जा रहा हूँ !'...

बस; बिम्बसार चला गया और पाली उसकी पदध्वनि विलीन होते ही द्वार के पास पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

उसी दिन संध्या को बिम्बसार ने चेलना के साथ अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया। किन्तु आम्रपाली उसके पहले ही चेटकराज की नगरी से चली गई थी।

(७)

'आम्रपाली, मेरे चार जहाज़ अभी ताम्रलिपि से आये हैं समुद्रपार के विविध उपहारों से भरी हुई चार गाड़ियाँ आज ही तेरी वैशाली तक आ पहुँची हैं; तू जो चाहे, जितना चाहे ले ले; पर मेरे पुत्र को लौटा दे !' एक

प्रौढ पुरुष घुटनों के बल बैठा हुआ, सुख-शय्या पर लेटी हुई मदिर पाली से प्रार्थना कर रहा था।

आसव की एक घूँट मृदु-स्वर के साथ गले में उतारकर पाली वैसी निश्चिंतता से यह सब सुन रही थी, जैसे कोई बिल्ली पंजे में पकडे हुए चूहे को निर्भय और निर्दय होकर खिलाती है। छत्तीस वर्ष की उम्र में पाली पूरी युवती मालूम होती थी। उसके यौवन का तेज प्रातःकाल के मनोहर सूर्य के स्थान पर मध्याह्न काल के सूर्य की प्रचण्ड ज्वाला से अभितप्त हो रहा था, जिसे देखनेवाला या तो अन्धा हो जाता या जल जाता था; उसके लिए तीसरा मार्ग ही न था। उसके नूपुर की झंकार सुनने के लिए कोई राजा, अपने देश और राज्य छोड़कर, वहाँ, उसके पाद प्रहारों के बीच पड़ा रहता था। तक्षशिला की शारदा-पीठ में शिक्षित युवकों से लेकर जीवन के विश्वविद्यालय की शिक्षाओं में निपुण प्रौढ़ों और जीवन का सम्पूर्ण उपयोग कर चुकनेवाले वृद्धों तक कोई भी उसके सम्मुख खड़ा नहीं रह सकता था। उसका यौवन महाप्रवाह की तरह गतिमान था जिसके वेग में अशक्त और शक्तिमान, नये और पुराने सब ही बह जाते थे!

पाली जीवन को सुख समझती थी, सुख को विलास, और विलास किसे कहते हैं यह भी उसके लिए निश्चित था। वह बुद्धिमान को मूर्ख बनाने के लिए सदा प्रस्तुत रहती थी, यदि वह मूर्ख बन जाता तो दूसरे ही दिन उसे दासियों के आधीन कर देती थी; और यदि मूर्ख न बनता तो उसे बनाने के लिए अपने सब साधन लगाकर अंत में वह उसे हराकर छोड़ती थी; जीवन में नृत्य के समय को छोड़कर यही उसका मुख्य कार्य था।

एक महीने से, कोशांबी के एक श्रेष्ठी का एकलौता युवक पुत्र, पाली के प्रासाद में रह रहा था; उसमें यौवन के सिवा और अधिक कुछ न था। केवल बुद्धिमान और कला-निपुण पुरुषों के सम्पर्क में रहनेवाली पाली ने इस धनवान मूर्ख को अपने पास रखा है, यह बात उसकी अंगरक्षिका सुनेत्रा भी नहीं जानती थी। तब कौशांबी के श्रेष्ठी माघ को तो यह बात कितनी कठिनाई से ज्ञात होती!

पाली माघ श्रेष्ठी को धरती से उठ कर एक ओर बैठने का संकेत करके व्यंग-मयी मुस्कान के साथ बोली—'श्रेष्ठी, आज से चौदह वर्ष पहले तुम मेरे पैर पकड़ कर, मेरे खिलौने होकर मेरे प्रासाद में पड़े रहना चाहते थे। उस समय मैंने तुम्हारा तिरस्कार कर दिया था; जो तुम उस समय नहीं कर सके वह तुम्हारा पुत्र आज कर रहा है; चौदह वर्ष पहले मैंने तुम्हें मना किया था उसके प्रायश्चित्त के लिए उसकी सहायता करना, मेरा कर्तव्य है!'

पुनः माघ घुटनों के बल बैठ कर पाली से बोला—'पाली इतनी निष्ठुर न बन!'

पाली पूर्ववत् व्यंग्य में बोली—'नर्तकी, दया की देवी बनकर जी नहीं सकती श्रेष्ठी!'...किंतु माघ ऐसे ही छोड़ देनेवाला न था, उसने बहुत नम्र स्वर में कहा—'पाली, तू मेरा सर्वनाश कर रही है, मेरे पुत्र को छोड़ दे पाली!'

हाथ का आसव-पत्र एकदम फेंककर पाली झनझना उठी—'एक नर्तकी तुम्हारा सर्वनाश करेगी? कल तो तुम रण-भेरी बजाकर संसार को सुना रहे थे कि मैं अधम हूँ, सर्वभक्षिका हूँ, देशनर्तकी के रूप में पिशाचिनी हूँ, यदि मैं वैशाली में न होती तो तुम मुझे मसल डालते....ऐसा वीरतापूर्ण शब्दों का प्रयोग करने के बाद, तुम एक शक्तिमान धनपति होकर एक अधम नर्तकी से प्रार्थना क्यों कर रहे हो? श्रेष्ठी, मैं तुम्हारा सर्वनाश कर ही कैसे सकती हूँ?'

'पाली!' माघ ने अत्यन्त द्रवित होकर कहा—'धन मिल सकता है, विद्या मिल सकती है, गँवाया हुआ यश, नष्ट यौवन पुनः मिल सकता है पर खोये हुए पुत्र का आघात बहुत गहरा होता है; पर तू यह नहीं समझेगी पाली! कि माँ-बाप के लिए एकलौता पुत्र क्या होता है!'

मानों किसी ने पाली के वक्ष में कटार भोंक दी! वह तत्क्षण खड़ी हो गई; उसकी मुखाकृति कठोर हो गई। किंतु धीरे-धीरे नम्र हुई; इतनी नम्र कि अन्त में वह हँस ही पड़ी, और बोली—'हाँ श्रेष्ठी! सच कहते हो! मैं क्या जानूँ कि एकलौता पुत्र माँ बाप के लिए क्या होता है!'....

माघ का साहस बढ़ा; वह और नम्र होकर बोला—'आम्रपाली, देशनर्तकी माँ हुए बिना माँ या बाप के दुःख नहीं समझ सकती।'

'सच बात है, मै कैसे समझ सकती हूँ ?' पाली शान्तिपूर्वक बोली। माघ को और प्रोत्साहन मिला; बोला—'अर्थात्...अर्थात्...देवी मैं अपने कठोर वचनों को, अपनी भूलों और अभिमान के लिए तुम्हारे पास क्षमा माँगने आया हूँ; मुझे क्षमा कर दो। मेरे लिए नहीं तो उसकी माँ के लिए मेरा पुत्र !'...

श्रेष्ठी की बैठक के पीछे की ओर जो द्वार था उस ओर अंगुली-संकेत करके पाली शांतिपूर्वक बोली—'श्रेष्ठी, मेरे द्वार में आनेवाले को मैंने अनेक बार रोक दिया होगा किन्तु इस महल के इसी द्वार से चले जाने वाले को मैंने कभी नहीं रोका। मै इस नियम का सोलह वर्षों से पालन करती आई हूँ ! तब मैं आपके पुत्र को रोकनेवाली कौन होती हूँ ? मै तो केवल मनोरंजन के लिए नाचनेवाली हूँ,. पिशाचनी हूँ ! यदि वह जाना चाहता हो तो अपने उस पुत्र को आप प्रसन्नता से ले जा सकते हैं !'

माघ की आशा टूटती दिखाई दी। वह नम्र तो था ही, और अधिक नम्र होकर बोला—'पाली, वह तेरी आज्ञा के विना यहाँ से तिल भर भी न हटेगा; तू ही उसे यहाँ से निकाल सकेगी। पाली, वह सुकुमार है, अजान है, मूढ़ है, और तुझसे....'

'मुझसे बहुत छोटा है, यह मैं जानती हूँ; पर प्रेम को वय और वर्ण का बन्धन भी होता है यह आपसे किस ने कहा ?—एक समय मै सुकुमार थी और आप मुझसे कई वर्ष बड़े थे, फिर भी वय और वर्ण को ताक में रखकर आप मुझे छोड़ना नहीं चाहते थे। आज चौदह वर्षों के बाद, एक सुकुमार को यदि मैं छोड़ना नहीं चाहती तो आपको बुरा क्यों लग रहा है ? नहीं श्रेष्ठी, तुम्हारा पुत्र नही दिया जा सकता, अपनी इच्छा से जाना चाहे तो जा सकता है। वह आपका पुत्र है, मेरा...'

'मेरा पुत्र' कहते-कहते पाली विस्फारित नेत्रों से अट्टालिका में से नीचे के मार्ग को देखने लगी। माघ से बातें करते-करते वह बाहर आ गई थी। मार्ग में बौद्ध भिक्षुकों की एक छोटी-सी मंडली चली जा रही थी; सब से आगे एक नवयुवक भिक्षुक चल रहा था, पाली उसे ही देख रही थी।

इन दिनों वैशाली में जटिलों, परिव्राजकों और निर्ग्रंथों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था; इनमें से प्रत्येक धर्मानुयायी लिच्छवियों को अपने धर्मध्वज के के नीचे लाने का प्रयत्न कर रहा था।

स्वातन्त्र्यप्रिय लिच्छवियो का मन इन नये धर्मों से प्रभावित हो रहा था; यदि कोई उच्च पदस्थ लिच्छवी किसी नये धर्म-प्रवर्तक को मान लेता तो उसके दूसरे ही दिन से उस धर्मप्रवर्तक के शिष्यगरण अपनी ध्वजा और भेरी के साथ वैशाली की गली-गली में अपने गुरुजनों का गुणगान करते घूमते थे। किन्तु इन सबों में निर्ग्रन्थों और बौद्ध भिक्षुओं का प्राचुर्य था, किन्तु अनुशासन और विनय के प्रदर्शन के कारण बौद्धों ने जनता को अधिक प्रभावित किया। लिच्छवियों की आँखें अब विशेष कर बौद्ध भिक्षुओं की ओर जा लगी थीं, क्योंकि 'थेरगाथा' में वर्णित 'पियज्जहो थेरो' जैसे क्रूर लिच्छवीगरण संसार का त्याग करके तथा-कथित 'अर्हतपद' प्राप्त कर चुके थे, और ये ही लिच्छवी-भिक्षुक गौतम बुद्ध की आज्ञा और प्रभावं का अनुकरण करके बौद्धधर्म का प्रचार कर रहे थे। प्रातः-काल बौद्ध भिक्षुकगरण भिक्षा के लिए 'चिवरपिंडपात' लेकर निकल पड़ते थे; यदि कोई भक्त उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित करता तो वे वहाँ जाते, और आमंत्रण न मिलता तो मध्याह्न के पहिले दिन में एक बार भिक्षा माँग कर पेट भर लेते थे। आज किसी का आमन्त्रण न होने से यह छोटी-सी भिक्षुमण्डली भिक्षा माँगती हुई पाली के महल के आगे से निकल रही थी।

मण्डली का अगुआ वही युवक श्रमण था जो अपने काषाय वस्त्रों में उन सबों की प्रेरणापूर्ति ज्ञात होता था; लगता था कि गौतमबुद्ध ने अपने शरीर और गुणों का एक अंश निकाल कर एक छोटा-सा दूसरा बुद्ध ही बना दिया था—उसका नाम था विमल कोडंगज।

पाली के प्रासाद के सम्मुख माणव लिच्छवी का छोटा-सा घर था; यह लिच्छवी एक जटिल का शिष्य होने के करण बौद्ध भिक्षुओं से घृणा करता था।

युवक श्रमण विमल कोडंगज पाली के प्रासाद की ओर न जा कर माणव के घर की ओर मुड़ा; भिक्षुओं को अपने घर की ओर आते देख कर माणव को बहुत क्रोध आया, विमल ने भिक्षा के लिए उसके सम्मुख पात्र बढ़ाया भी न

था कि उसने कई अपशब्द कह कर घृणापूर्वक उसकी ओर थूँका और द्वार बंद कर दिये। विमल इससे ज़रा भी विक्षुब्ध न हुआ, उसने अपना दाहिना हाथ उठा कर आशीर्वचन कहे और अपनी मंडली के साथ लौट पड़ा। पाली आँखे फाड़ कर यह सब देख रही थी; किन्तु जब उसने युवक श्रमण को अपनी मण्डली सहित अपने प्रासाद की ओर आते देखा तो चिल्लाई—'सुनेत्रा, सुनेत्रा, भिक्षा दे ! तू भिक्षा लेकर जल्दी बाहर आ !....' वह पुत्र की भीख मागने आये हुए कोशाम्बी के नगरश्रेष्ठी को छोड़ कर, उस भिक्षुक को भीख देने के लिए दौड़ गई। घबराहट और दौड़ने के श्रम से वह हाँफ रही थी। प्रासाद के बाहर वह तेजस्वी श्रमण अपनी मण्डली के साथ खड़ा था, एकाएक उसके पास आ कर पाली कुछ बोल न सकी। वह देख रही थी—विमल को, उसके सुन्दर मुख को, उस मुख की दाहिनी ओर दिखाई देनेवाले तिल को, उसकी तीक्ष्ण आँखों को—हाँ, वे आँखे ही थीं। पाली उसमें बिम्बसार की प्रतिमा को देख रही थी, नासिका, ओंठ, मुस्कान सब कुछ वैसी ही थी !

पाली पगली बन कर, लोह-चुम्बक की तरह विमल के पास आ कर खड़ी हो गई, उसका हृदय इतनी तेज़ी से धड़क रहा था मानों वक्ष फाड़ कर बाहर निकल पड़ेगा ! वह विमल श्रमण के इतनी समीप खड़ी थी कि श्रमण के पास खड़े हुए अधिक अवस्था वाले भिक्षुक छू जाने के डर से संकुचित हो कर पीछे हट गए। किंतु विमल स्थितप्रज्ञ की तरह वैसा ही खड़ा रहा; उसी शांति से उसने आशीर्वचन कह कर भिक्षापात्र को आगे बढ़ाया; साथ ही अन्य भिक्षुओं के हाथ भी आगे बढ़े।

एक भिक्षुक ने, पाली के प्रासाद की ओर पैर बढ़ाने के पहले विमल से एक नर्तकी के घर से भिक्षा न लेने का अनुरोध किया था। किंतु विमल श्रमण, जिसने ऊँच-नीच को न मान कर भूतकाल में दासत्व करके इस समय अर्हतत्त्व पाये हुए उपाली थेर, तथा एक समय के मछलीमार यसोज थेर और कुछ ही वर्षों पूर्व शूद्रकर्म करके अब अर्हत् सुनीत थेर जैसे उच्च बौद्ध भिक्षुओं से उपदेश पाया था, उस ओर जाने से ज़रा भी नहीं हिचकिचाया। उस भिक्षु की ओर एक स्मित-दृष्टि डाल कर वह पाली के प्रासाद के सम्मुख आ खड़ा हुआ।

विमल भिक्षापात्र आगे करके भिक्षा की प्रतीक्षा कर रहा था; पाली उसके मुखारविन्द को देखने में अपनी सुध खो बैठी थी, और दूसरे भिक्षु इन दोनों को देख रहे थे।

पाली, श्रमण के और समीप आने लगी; वह तब ही रुकी जब भिक्षापात्र ठीक उसके वक्ष को छू गया। तब उसे कुछ सुध हुई कि ये भिक्षुक इतनी देर से किस लिए खड़े थे। वह तुरन्त कान, हाथ और गले के आभूषण एक के बाद एक उतारकर श्रमण का भिक्षापात्र भरने लगी; देखते ही देखते भिक्षा-पात्र स्वर्ण और रत्नों के बहुमूल्य आभूषणों से भर गया।

सब भिक्षुगण विमल को देख रहे थे और विमल की दृष्टि अपने भिक्षा-पात्र पर थी; उसने धीरे-धीरे पाली के हाथ की ओर देखा और पाली के पास खड़ी हुई सुनेत्रा के स्वर्णपात्र में सारा भिक्षापात्र उँडेल दिया। पाली विस्मित होकर देख रही थी, उसने कुछ चिढ़कर कहा—'भिक्षुक!'

तत्क्षण विमल ने अपनी जीवनमयी मुस्कान के साथ नतमस्तक होकर कहा—'देवी! हमें तो पेट भरने के लिए अन्नप्राशन चाहिए, हम आभूषणों को क्या करेंगे?'

'श्रमण, तू जानता है इन आभूषणों का मूल्य क्या है?' पाली ने उसे प्रलोभन दिया—'दस वर्ष तक तुमसे दुगुने भिक्षुकों को भी भीख नहीं माँगनी पड़ेगी।'

'उसके बाद?'

'मैं और आभूषण दूंगी।'

'उसके बाद?'

'मैं उतना दूंगी, जिससे तुम सारे जीवन सुख से निर्वाह कर सको!'

'उसके बाद?'

'उसके बाद क्या? मैं तुझे अपने महल में अपनी आँखों के सामने रखूँगी। पाली, मनोवांछित वस्तु; इच्छित सुख दे सकती है; तू जो कहेगा वह तुझे मिलेगा।'

'उसके बाद?'

'श्रमण, अभी तू नवयुवक है, अभी तेरे सत्रह वर्ष भी पूरे नहीं हुए होंगे, जीवन का सुख तूने देखा ही क्या ? इन वस्त्रों में, तेरे गुरु ने उसकी कल्पना को भी तेरे पास न आने दिया होगा ! मेरी बात मान ले, मेरे पास रह जा ! तू कहे उस सुन्दर बाला के साथ मैं तेरा विवाह कर दूँगी; सारा वैभव तेरे पैरों पर उँड़ेल दूँगी !'

'उसके बाद ?'

'निर्दोष, अज्ञानी श्रमण ! उसके बाद तू उन पुत्र-पुत्रियों का पिता बनेगा जिसे देखकर देवताओं को भी ईर्ष्या हो !'

'उसके बाद ?'

'युवक, मुझे मूर्ख न बना ! तेरे 'उसके बाद' से जीवन की किसी वस्तु का अन्त नहीं आ सकता ।'

'हम लोग 'अन्त' पूछकर ही जीवन को पहिचानने का प्रयत्न करते हैं और तब हमे ज्ञान होता है कि प्रत्येक वस्तु का अन्त दुःख में ही परिणत होता है । जीवन दुःख है ।'

'जीवन के प्रवाह से अनजान युवक, जीवन दुःख नहीं, सुख है। तेरे ये साधारण काषाय वस्त्र, तेरा यह अकिंचन भिक्षापात्र, माणव लिच्छवी के प्रहारों की तरह गन्दे प्रहार, अपमान और गालियाँ क्या तुझे सचमुच सुहाती हैं ? क्या यही सच्चा सुख है ? तेरे सन्तोष और जीवन की इति क्या जीवन को रौंद डालने में ही है ?'

'तुमने किसी दिन भीख माँगी है ?'

'नहीं ।'

'तो उसमें समाया हुआ सुख और दुःख तुम कैसे समझ सकोगी ? सब आवश्यकताओं से दूर रह कर, भीख माँग कर, एक दिन तो बिताओ, तब इस सरल जीवन का सुख समझ में आयेगा !'

जब ये दोनों बातें कर रहे थे, दूर के झोपड़े में रहनेवाली एक निर्धन स्त्री हाँफती हुई उनके पास आकर खड़ी हो गई। सुनेत्रा, पाली और विमल का वार्तालाप सुनने में इतनी तल्लीन हो गई थी कि दासी के साथ जो फल और

मिठाई भिक्षुओं को देने के लिए लाई थी, वह भूल गई। उस स्त्री ने विमल का भिक्षापात्र रिक्त देख कर काँपते हाथों से गेहूँ और बाजरे की मोटी रोटियाँ, भुँजे हुये धान्य, चटनी और चावल की मिठाई का एक टुकड़ा उसमें डाल कर भिक्षु के पैर छुए। विमल ने चौंक कर देखा, भिक्षापात्र भर गया था पूर्ववत् मुस्कान के साथ उसने ब्राह्मणी के लिए आशीर्वचन कहे और स्तब्ध पाली को नमस्कार करके जाने लगा। इस बीच सुनेत्रा को ध्यान आया, उसने शीघ्रता से दौड़ कर अन्य भिक्षुओं के पात्र फलों और मिठाई से भर दिये; भिक्षुओं ने चुप-चाप इन्हें ले लिया और आशीर्वाद में हाथ उठा कर विमल के पीछे-पीछे जाने लगे।

पाली, उस बौद्ध भिक्षुक को बहुत देर तक देखती रही, जिसने जाते हुए न इधर देखा, न शीघ्रता की, और न कुछ कहा ही। सुनेत्रा ने तब कुछ घबरा कर कहा—'माँ, भीतर चलिए न!'...किन्तु पाली पलक टिमकाए बिना उसी तरह देखती रही!

'माँ, सुनो तो, भीतर चलो! यह देखो सामने कितनी भीड़ लग रही है, भीतर चलो माँ!'

'मैंने किसी दिन भीख नहीं माँगी!' पाली जैसे अपने से बातें कर रही थी।

'हाँ, माँ! भीतर चलो!'

'सुनेत्रा, हमने किसी दिन भीख नहीं माँगी ?'

'नहीं, माँ, अब अंदर चलो!'

'सुनेत्रा, बौद्धभिक्षु महाउद्यान में ठहरे हैं ?'

'हाँ माँ! आपको ज्वर मालूम होता है, भीतर....'

'यह श्रमण कौन है ?'

'मैं अभी मालूम करती हूँ, पहले आप भीतर...'

'सुनेत्रा'...सहसा पाली ने सुनेत्रा के कंधे ज़ोर से पकड़ कर कहा—'वह श्रेष्ठी अभी महल में ही बैठा है ?'

'हाँ, माँ! इसीलिए तो कह रही हूँ कि भीतर...

सुनेत्रा का वाक्य पूरा होने के पहले पाली महल की ओर दौड़ी।

सुनेत्रा ने विस्मित जन-समूह पर एक दृष्टि डाल कर पाली का पीछा किया; उसे विश्वास हो गया कि उसकी स्वामिनी का उन्माद बढ़ता जा रहा है।

महल में जाने के कुछ ही क्षणों बाद पाली एक नवयुवक का हाथ पकड़ कर माघ श्रेष्ठी के पास आ खड़ी हुई।

'श्रेष्ठी, लो अपने इस पुत्र-रत्न को! यह क्षमा माँगता है, अब किसी दिन यह मेरे घर में पैर नहीं रखेगा।'

युवक ने चौंक कर पाली को देखा, तब बहुत दीनतापूर्वक बोला—'देवी, अभी तो आप कह रही थीं कि आप मेरे घर आने को तैयार हैं, और...'

'इन दिनों मैं मूर्खों को ही देख रही हूँ; अब और किसी मूर्ख को देखने की इच्छा होगी तो पहले तेरे घर आऊँगी! अभी तू चला जा।'

'देवी!...'

'मैं देवी नहीं हूँ मूर्ख!'

'हाँ, मै ही मूर्ख हूँ! तुमने मुझसे एक माता जैसा बर्ताव किया है, मुझे मूर्ख बनाया है। तुम्हें एक प्रेम-दग्ध आर्त्त हृदय का क्या मूल्य! मै जाता हूँ; तुम कह रही हो इसलिए अवश्य जाऊँगा किंतु....नही, नहीं, निष्ठुर! तूने मुझे इतने दिनों तक आशा में रखा....मैं...मैं....'

'मुझे क्या दंड देना चाहिए यह अपने पिता से पूछ लेना! यह भी मुझे चौदह वर्षों से दण्ड देने की ही बातें करते हैं; तुम दोनों निश्चित करके यहाँ अवश्य आना!'

कह कर उसने सदा की तरह, युवक को वात्सल्यपूर्ण आँखों से देख कर उसके गाल पर एक हलकी चपत लगाई; भ्रमित और मुग्ध बन कर युवक पाली से कुछ कह न सका जिसने सदा उसके साथ माँ जैसा ही व्यवहार किया था। क्रोध और तीव्र अपमान का अनुभव करके उसकी आँखों में आँसू आ गये। माघ ने पाली के उपकार से गद्-गद् होकर कुछ समझा, और उसे सहानुभूति तथा श्रद्धा से वन्दन करके अपने क्रोधित पुत्र का हाथ पकड़ा और चला गया। पाली फीकी मुस्कान से उन्हें देखती रही।

सुनेत्रा सिर धुन-धुन कर थक गई पर कुछ समझ में न आया; अंत में

कुछ सोच कर दौड़ती हुई पाली के पास आकर बोली—'माँ, इस युवक के गाल पर उस साधु के जैसा एक तिल था न?' पाली ने चौंककर उसे देखा और हँस कर बोली—'उसके ओंठ और आँखें भी साधु के जैसी ही थीं!'

बेचारी सुनेत्रा कुछ कह न सकी। उसे अभी तक यह समझ में न आया था किसी भी 'तिल' वाले युवक की ओर पाली किन भावों से देखती थी!

(८)

पाली का हृदय घनी वेदना से भरा था। पूरे सोलह वर्ष बीत जाने पर भी वह अपने पुत्र को बिलकुल नहीं भूल सकी। जिस माँ ने बच्चे के सुख के लिए अपने हृदय पर पत्थर रखकर उसे सदा के लिए दूर कर दिया था, उसीने इन सोलह वर्षों में लाखों बार कल्पनाएँ की थीं कि अब उसका पुत्र कैसा होगा, कैसा दिखाई देता होगा?...

इतने लम्बे समय में एक बार भी उसने अपने भाई या पुत्र को नहीं देखा, इसीलिए जब कोई तेजस्वी किशोर या युवक पर उसकी दृष्टि जाती, वह उसे उत्सुकता से देखने लग जाती थी। यदि उनमें से किसी का मुख बिम्बसार के मुख से जरा भी मिलता-सा होता तो उसके लिए पूछ-ताछ करती; हो सकता तो अपने पास रखकर पुत्र की भाँति उसका लालन-पालन करती; ग़रीब होता तो उसकी सहायता करती, महत्वाकांक्षी होता तो जहाँ जाना चाहता वहाँ जाने का प्रबन्ध कर देती और मूर्ख होता तो कुछ दिन उसे अपने पास रखती और फिर पराया समझ कर चला जाने देती थी। इस तरह सम्पर्क में आनेवाले कितने ही भ्रमित नवयुवक समझ माकर अपने घर लौट जाते थे। ऐसे किशोरों को रखने के कारण पाली के लिए कई तरह की अफवाहें उड़ी, किन्तु वह उन बातो का जरा भी प्रतिकार किये बिना, ऐसी बातों को बढ़ने देती थी। यही बात सुनेत्रा की समझ में नहीं आती थी!....

'देवी...' अचानक सुनेत्रा दौड़ती हुई आई और कहने लगी—'सबेरे वे बौद्ध भिक्षु आये थे न! ...वे मध्याह्न के बाद याने अभी संथागार में दिगम्बर पाटिकपुत्र के साथ वादविवाद करेंगे...'

'दिगम्बर पाटिकपुत्र कौन?'

'हाँ, देवी....आप नहीं जानतीं, आधी वैशाली पाटिकपुत्र के पीछे पागल हो रही है? उस महान् संन्यासी के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बौद्ध साधु आयेंगे...!'

'सब भिक्षुक आयेंगे ?'

'नहीं, माँ, केवल वह सुन्दर श्रमण ही आयेगा; उसे साधारण न समझना ! उसका स्थान बहुत विद्वान और उच्च कोटि के भिक्षुओं में है; वही पाटिकपुत्र के प्रश्नों का उत्तर देगा।'

शीघ्रतापूर्वक यह कह कर सुनेत्रा चुप हो गई: प्रश्नों की अपेक्षा अधिक उत्तर दे देने के कारण उसे संकोच हो रहा था। किन्तु पाली ने कुछ नही कहा।

जब संध्या समय सारा संथागार धार्मिक और कौतुहलप्रिय लिच्छवियों से ठसाठस भर गया तब अपनी शिष्यमण्डली के साथ दिगंबर पाटिकपुत्र ने संथागार में प्रवेश किया। उसके आते ही उसके अनुयायियो ने हर्षनाद करके इतना होहल्ला मचा दिया कि एक दूसरे के शब्द भी सुनाई न देते थे। अनुशासनप्रिय लिच्छवियों की व्यवस्था भी धार्मिक उन्माद में डगमगाने लगी। राजकारिणी सभाओं में एकतापूर्वक रहते हुए भी वे इन दिनों बढ़ती हुई विभिन्न धर्म-सभाओं में खुला मतभेद करना सीख गये थे। कुछ देर बाद एक गगनभेदी हर्षनाद पुनः सुनाई दिया; इस हर्षनाद के साथ सारी सभा ने प्रवेश-द्वार की ओर देखा। सब लोग समझे थे कि बौद्धभिक्षु आये होंगे, किन्तु आगंतुक के प्रवेश-द्वार तक आने पर बहुत से लोग विस्मित होकर उधर देखने लगे—आगन्तुक पाली थी !

पाली का पैर संथागार में पड़ते ही वातावरण में विचित्र परिवर्तन हो गया; कोने-कोने में कानाफूसी होने लगी; और एक धर्मान्ध वृद्ध खड़ा होकर कहने लगा— 'आम्रपाली, यह राजकारिणी लिच्छवी परिषद नही है और न युवकों की कोई स्वच्छन्द सभा है; यह धर्मसभा है !'....

'तो क्या हुआ ?' पाली ने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

'धर्मसभा में नर्तकी की आवश्यकता नहीं है !' दूसरा वृद्ध बड़बड़ा उठा।

'लिच्छवियों की सभा में स्त्रियों को स्थान नहीं ? ऐसा हास्यास्पद नियम

कब से प्रारंभ हुआ ?'

'यह धर्मसभा है और धर्मसभा में स्त्रियों के लिए स्थान नहीं है !' बौद्ध अनुयायियों से तीव्र घृणा करनेवाला माणव लिच्छवी बोल उठा। वह आज विशेष रूप से बौद्ध भिक्षुओं की पराजय देखने ही आया था।

पाली, माणव लिच्छवी को तीव्र उत्तर सुनाने को प्रस्तुत हुई, उसके पहिले ही संथागार में विमल श्रमण का स्वर सुनाई दिया—

'धर्म केवल पुरुषों के लिए नहीं है !'

अपना उत्तर दूसरे के मुँह सुनकर पाली ने चौंक कर पीछे की ओर देखा। संथागार के प्रवेश-द्वार में वह तेजस्वी श्रमण खड़ा था। सब लोग विस्मित होकर उस युवक बौद्ध भिक्षुक को देखने लगे ! उसे वयोवृद्ध पाटिकपुत्र के साथ वाद-विवाद करने के लिए भेजा गया था; पाली के झगड़े में किसी को ज्ञात ही न हुआ कि युवक भिक्षुक अपनी मंडली के साथ वहाँ आकर खड़ा है।

प्रतापी सिंह लिच्छवी भी सभा में बैठा था, वह तत्क्षण खड़ा होकर पूछने लगा—'तुम्हारे तथागत बुद्ध, स्त्रियों को धर्मसभा में प्रवेश करने देते हैं ?'

अभी तक स्त्रियाँ बौद्ध संघ में भिक्षुणियो के रूप में प्रविष्ट नही हुई थी, किन्तु गौतम बुद्ध अपने उपदेशों मे स्त्रियों को पुरुष जैसा ही स्थान देते थे। सिंह का व्यग्य बौद्ध संघ में साध्वियाँ नही हैं, इसी ओर था। किंतु श्रमण ने शांति-पूर्वक उत्तर दिया—

'स्त्रियों और पुरुषों के लिए गौतम बुद्ध, धर्म, और संघ एक जैसे ही वन्दनीय हैं और वे स्त्री और पुरुष दोनों को एक मानकर शरण देते हैं !'

सिंह लिच्छवी ने पुनः पुकार कर कहा—'पर यह बात पाटिकपुत्र नही मानते !'

श्रमण ने तत्क्षण उत्तर दिया—'अर्थात् यह पंथ अपूर्ण है !'

श्रमण के इस वाक्य ने अभी तक शांत बैठे हुए पाटिकपुत्र को जला दिया; उसने उग्रतापूर्वक पूछा—'तू किसे, किस के सम्मुख अपूर्ण कह रहा है, इसकी कुछ सुध है ?'

पाटिकपुत्र का यह प्रश्न सुनते ही उसके प्रशंसकों ने कानों के पर्दे फट जायं इतना कोलाहल मचा दिया। पाटिकपुत्र ने महत्ता का अभिनय करके सबों को शांत रहने की सूचना दी; तब बाह्य शांति और मुस्कान के साथ युवक को तनिक ईर्ष्या भरी आँखों से देखकर कहने लगा—'बच्चे, धर्म केवल बुद्धिवाद से कहीं चलता; यदि बुद्धिवाद ही सर्वोपरि होता तो यह महान पराक्रमी सिंह लिच्छवी इस सभा में मेरे पक्ष में न होता।'

श्रमण ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया—'यह कौन जानता है कि तुम्हारा धर्म पूर्ण है या अपूर्ण ! और सिंह लिच्छवी बुद्धि से न भी देखते हों। और यह भी कौन कह सकता है कि वे सदा के लिए आपके ही अनुयायी हो गये हैं ?'

'मैं अपने धर्मानुयायियों के बारे में तर्क करने नहीं आया, अपने धर्म की बात करने आया हूँ, और तुम्हारे शाक्य-मुनि के मिथ्या प्रभाव से प्रभावित हो जानेवाले इन निर्दोष और निर्मल हृदय के लिच्छवियों को यह समझाना चाहता हूँ कि तुम कितने झूठे और पाटिकपुत्र का पंथ कितना सच्चा है ! नौसिखिए ब्रह्मचारी, मैं तुझसे नही तेरे तथागत से मिलना चाहता था ! अस्तु, सुन ले—साधारण मनुष्य लौकिक और परलौकिक वस्तुओं से अवगत होता तो तेरे भगवान का बुद्धिवाद अवश्य सर्वव्यापी होता।'

श्रमण ने आँखे मूंद लीं और गम्भीरतापूर्वक बोला—'भगवान सच कहते हैं—बुद्धिमान और चमत्कारी पुरुष ही धर्मप्रवर्तक हो सकता है।'

माणव लिच्छवी पुनः खड़ा हुआ, और आदेशपूर्वक बोला—'तेरे भगवान जो कहते हैं यह बात फिर कहना ! उसके पहले ही हमारे भगवान पाटिकपुत्र जो चमत्कार दिखा सकते हैं वैसे एक दो चमत्कार तो तेरे भगवान दिखा दें ! तब देखेंगे कि तेरे भगवान कितने पूर्ण हैं और महान पाटिकपुत्र कितने अपूर्ण हैं !'

माणव लिच्छवी जैसे दूसरे अंधविश्वासी भक्त हँस पड़े, और सारी सभामे कोलाहल मच गया। पाटिकपुत्र का आवेश इससे और बढ़ा; वह श्रमणको भगाकर आज की सभा जीत लेने के लिए अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और

ऊँचे स्वर से बोला—'लिच्छवियो, मैं आज तुम लोगों के सम्मुख इस लड़के और इसके भगवान को चुनौती देता हूँ कि इसके भगवान जितने चमत्कार यहाँ दिखाएँगे उससे दूने चमत्कार मैं दिखाऊँगा !' इतना कहने के बाद, उसने उतने ही आवेश से युवक विमल की ओर घूम कर कहा—'कह देना तेरे तथागत से कि शब्दों के खेल खेल कर और तर्कों के उलट-फेर में वह भले ही आठों सभाओं को* जीतता फिरे, किन्तु पाटिकपुत्र के सम्मुख आकर चमत्कार दिखाये तब ही उन्हें और इन वीर पुरुषों को विश्वास हो जायगा कि कौन-सा पन्थ कितना अधूरा है !'

तब ही पाटिकपुत्रों ने गगनभेदी जयनाद किया—'जय पाटिकपुत्र की ! जय महासिद्ध पुरुष की !'

सभा का कोलाहल शांत होने पर विमल श्रमण ने पूर्ववत् शांति और प्रसन्नतापूर्वक कहा—'पाटिकपुत्र, मैं अपने भगवान की ओर से आपकी चुनौती स्वीकार करता हूँ, और आपके सम्मुख वचन देता हूँ कि मैं उन्हें, कौन-सा पन्थ कितना अधूरा है इसका निर्णय करने की प्रार्थना करूंगा !' माणव लिच्छवी के निकट बैठा हुआ पाटिकपुत्र का एक अंध-भक्त सुनक्षत्र बोल उठा—'साथ ही साथ तेरे भगवान से यह भी कह देना कि शांतिपूर्वक सबों की घृणा और धिक्कार स्वीकार करने के बाद उनका पन्थ दुर्बलों का धर्म सिद्ध हो चुका है !'

सुनक्षत्र के शब्दों से प्रोत्साहित होकर अवसर का लाभ उठा कर माणव लिच्छवी भी बोल उठा—'शाक्य-मुनि स्वयं यह बात अच्छी तरह जानते हैं, इसीलिये तो बेचारे क्रोध, मोह और मत्सर के प्रहार सह-सह कर एक गाँव से दूसरे गाँव भटकते रहते हैं !'

पाटिकपुत्र के पास बैठा हुआ एक वृद्ध इससे भी आगे बढ़ा, बोला—'अरे भाइयों, हाथों से शस्त्रों और भाग्य से राज्य का त्याग करने वाला क्षत्रिय

---

* आठों सभा

क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति, श्रमता, चतुर्महराजिक, तावन्त्रिस, मार और ब्राह्मपरिषद; ये आठ प्रकार की सभाएं बौद्ध लोग मानते थे ।

पौरुषहीन नहीं होगा ? काषाय पहिनने से ही क्या वह दुर्बलता निकल जाती है ? यदि ऐसों के शिष्य भी वैसे ही निर्वीय हो तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ?'

तुरन्त सुनक्षत्र बोला—'इसके भगवान कहते हैं कि संसार में जीवन दुःख है, तुच्छ है, कटु है; समझे वीर लिच्छवियों, जीवन कड़ुवा है ! अरे यह रही आम्रपाली, पूछो इससे क्या जीवन कटु है ?'

सब की दृष्टि अब तक चुप बैठी हुई आम्रपाली की ओर गई; पाली ने उपेक्षित भाव से उस वृद्ध से पूछा—'आपकी धर्म-सभा में स्त्रियों को बोलने का अधिकार है ?'

'पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देने का अधिकार अवश्य है !' सुनक्षत्र ने व्यंग भरे स्वर से कहा। पाली ने उतना ही घृणित भाव दिखा कर उसकी ओर से आँखें हटा कर पाटिकपुत्र की ओर मुँह करके पूछा—'पाटिकपुत्र, आप संसार को क्या समझते हैं ?'

पाटिकपुत्र ने तत्क्षण उत्तर दिया—'इस लड़के के भगवान जो कुछ समझते हैं, वह नहीं !'...पाली खीझ उठी; अपनी समस्त शक्ति एकत्रित करके वह बोली—'लिच्छवियों ! जिस धर्म-सभा में हास्य, व्यंग्य और अपमान करने की वृत्ति ही मुख्य हो, जहाँ अपनी विजय की अपेक्षा दूसरे को पराजित करने का विशेष घ्यान हो; जो वैशाली जैसी नगरी में, लिच्छवियों के संथागार में धर्म, सम्प्रदाय स्त्री-पुरुष और ऊँच-नीच के भेद-भाव की चर्चा करने बैठें, उन्हें जीवन, पशु-पक्षी की अपेक्षा कीट की आँखों से जैसा दिखाई देता है, वैसा ही दिखाई देगा ! फिर उस जीवन को सुख समझें या दुःख !'

पाली का यह स्पष्ट पक्षपात था। पाली केवल राज-कार्यकारिणी परिषदों में ही विशेष अवसरों पर आती थी। आज जब वह धर्म-सभा में आई तो लोगों को विस्मय के साथ आकर्षण भी हुआ था। उसके शब्दों की अपेक्षा उसकी देह ने कितने ही मनचलों की सुषुप्त वृत्तियों को जागृत किया था। पाटिकपुत्र की चुनौती से बौद्धभिक्षुक हार गये हैं ऐसा समझ कर उसके शिष्य विजयोन्माद में मस्त हो रहे थे, वे आम्रपाली की वाणी सुन कर शांत हो गये। भग-

वान तथागत की मिथ्या वाद-विवाद न करने की आज्ञा के अनुसार बौद्ध भिक्षुक धर्म-सभा को नमस्कार करके जाने लगे; पाली भी उनके पीछे-पीछे जाने लगी।

किन्तु लोगों ने पाली को आज बहुत दिनों के बाद देखा था; उसे रोकने के लिए वे मनचले लिच्छवीगण धर्म-सभा को छोड़ कर उसके पीछे-पीछे गये और उसका मार्ग रोक कर खड़े हो गये।

कुछ ही क्षणों के बाद पाली ने पुनः धर्म-सभा में प्रवेश किया; वह नृत्य करने को प्रस्तुत हुई, यह सिद्ध करने के लिए कि लोग नर्तकी आम्रपाली को अधिक मानते हैं या महान चमत्कारिक पाटिकपुत्र को! धर्म-सभा में जितने व्यक्ति थे, उससे दुगुने लोग यकायक आँधी की तरह संथागार में पाली का नृत्य देखने के लिए उमड़ने लगे। पाली का नृत्य ही सच्चा चमत्कार था! पाटिकपुत्र यह बात ठीक तरह से समझ गया, और अपने अनुयायियों को उनकी प्रिय वस्तु से रोकने में कुछ लाभ न देखकर, उसने भी नृत्य के लिए अनुमति दे दी।

पाली ने धर्म-सभा में नृत्य करना प्रारम्भ किया, पर उसकी आँखें संथागार से दूर जाती हुई उस भिक्षु-मण्डली पर थीं।....

....जीवन सुख है या दुःख, यह तो धर्म-प्रवर्तक ही जानें!....पर यह जीवन था—नृत्य करती हुई पाली; अनुयायियों को प्रसन्न करने वाला पाटिकपुत्र; और संसार में रह कर संसार से दूर रहने वाले वे बौद्ध भिक्षुक!...

(६)

पाली की आँखें खुलीं, तब प्रभात हुए बहुत समय बीत गया था; यदि सुनेत्रा ने आकर पुकारा न होता तो वह अभी भी सोयी ही रहती। कल के संथागार के नृत्य ने उसे बहुत थका दिया था। सुनेत्रा की चिल्लाहट के कारण उसकी लाल आँखें तो खुलीं, पर रोष भी उतना ही बढ़ गया। सुनेत्रा फिर भी कहती ही रही—

'देवी, जागीं!....वे....वे....वह......वो...'

'वह, वह क्या? मूर्खा, ठीक से बोल न!'

'माँ, उस सभा में वे सुन्दर युवक संन्यासी आये थे न! वे आज हमारे हाँ भिक्षा लेने आये हैं।'

'भिक्षा माँगने ? तो मूढ़, यहाँ क्यों खड़ी है ? जा, उन्हें भीतर बुला ला !'

'वे महल में ही हैं, मुख्य भवन में बैठे हैं !'

'तो मेरे सामने खड़ी न रह, भिक्षा देने की तैयारी कर !'

'मैंने कर ली है ।'

'तो....तो....! मुझे जगाया क्यों ? जा, उनके पास खड़ी रह, मैं अभी आई !'

कह कर पाली शीघ्रतापूर्वक उठी । वर्षों पहले, एक दिन जब बिम्बसार आया था, तब भी उसने ऐसी ही शीघ्रता की थी, आज भी वह वैसी ही दौड़-धूप करने लगी । इस युवक भिक्षुक को क्या सुहायेगा और क्या नहीं, इसी दुविधा में इतनी खो गई कि वैसे ही आधा प्रहर बीत गया ।

जब वह मुख्य भवन में आई तब उसने बहुत ही सादे वस्त्र पहिन रखे थे । विमल और उसका एक साथी फ़र्श पर एक सादे आसन पर नीची दृष्टि किये, बैठे थे । पाली ने मुँह पर मुस्कान लाकर नमस्कार किया । उसे आज सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर हो रहा था कि—आज वह एक ही भिक्षुक के साथ आया था, और वे बौद्ध भिक्षु, जो बिना आमन्त्रण किसी के घर नहीं जाते, आज उसके घर में बिना बुलाये आकर बैठे थे । पाली एक आसन पर बैठती हुई मुस्करा कर बोली—'भिक्षु, आज यहाँ आगमन कैसे हुआ; यह तो नर्तकी का घर है !'

'मैं जानता हूँ ।'

'क्या जानते हो ?'

'तुम जो हो, वह नहीं हो !'

'क्या तुम्हारा धर्म लोगों की आंतरिक बातें भी जानने की आज्ञा देता है ?'

'नहीं, पर यदि मनुष्य के उद्धार के लिए ये बातें जानना आवश्यक हो तो उन्हें जानने में कोई पाप नहीं है !'

'तो तुम मेरा उद्धार करने आये हो ?'

'तुम्हारा उद्धार तो तुम्हारे संस्कारों, कर्मों और बुद्ध पर की श्रद्धा पर निर्भर करता है; मैं तो यहाँ निमित्त बनने आया हूँ !'

'अब तक कोई मुझे जीत नहीं सका है, इसलिए कदाचित मुझे जीतने की इच्छा हुई होगी?'

'इच्छा हो तो तुम्हें जीतना कठिन नहीं है!'

विमल के इस शांतिपूर्वक निकले हुए वाक्य से पाली चौंक उठी; किन्तु वह वार्तालाप में कुशल थी, हतोत्साह नहीं हुई, हँस पड़ी।

'मुझे? इतनी बड़ी आम्रपाली को?'

'हाँ; जो दूसरों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है, उसे जीतना कठिन है, ऐसा कौन कहता है?'

पाली कुछ विचलित हुई, युवक का यह प्रश्न वह समझ नहीं सकी। उसने मन्द स्वर से कहा—'मैं दूसरों को प्रसन्न करती हूँ, प्रसन्न करने का प्रयत्न नहीं करती!'

'करती हो, नहीं तो इतनी सम्पत्तिशाली नर्तकी होकर एक भिक्षुक को प्रसन्न करने के लिए सब अलंकार छोड़कर ऐसे सादे वस्त्रों में न आती!'

पाली क्षुब्ध हुई, किन्तु कुछ देर ठहर कर हँसती हुई बोली—'भिक्षु तुम्हें प्रसन्न करने से मेरा क्या हित हो सकता है? तुम मेरे पुत्र के समान हो!'

'मैं भी कल रात से यही सोच रहा था कि मैं आपका पुत्र होता तो कितना अच्छा होता!'

'मेरे पुत्र?' पाली सहसा आवेश में बोल उठी। उसका हृदय आनन्द से झूमने लगा। किन्तु वह क्षणिक आवेग शान्त हो गया।

'मेरा पुत्र, नर्तकी का पुत्र? तुम होते तो अच्छा होता? नहीं, नहीं, भिक्षु! तुम्हारा मस्तक ...नहीं, नहीं....युवक, तू भूल रहा है!'

भिक्षु ने सिर उठा कर पाली की ओर देखते हुए कहा—'सच कहता हूँ, क्योंकि पुत्र को ही माता का उद्धार करने का अधिकार अधिक है।'

पाली की आँखों की कोरें आँसुओं से भर गईं; उन्हें छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न करके पाली ने व्यंग्य में कहा—'श्रमण, वर्षों पहले एक संन्यासी मेरा उद्धार करने के लिए मेरे पास आया था। किन्तु पहले ही दिन उसने काषाय वस्त्र छोड़ दिये, दूसरे दिन मेरे साथ विवाह करने को प्रस्तुत हुआ और तीसरे दिन मर जाने के लिए तैयार हुआ! अन्त में मेरे उद्धार के लिए आये हुए उस

संन्यासी को मुझे अपने रथ में बिठा कर उसके घर, उसकी पत्नी से पास पहुँचाना पड़ा !'

'यदि काषाय वस्त्र पहिनने से ही संन्यासी बना जाता हो तो तुम ये सादे वस्त्र पहिन कर निर्धनों की आदर्श बन जातीं !'

'अर्थात् मैं निर्धनों की आदर्श नहीं हूँ यही न ?'

'तुम किसी की आदर्श नहीं; तुम किसी की भी आराध्यदेवी नहीं बन सकती ?'

'मै...मैं,आम्रपाली...देशनर्तकी ! किसी की आराध्यदेवी नहीं बन् सकती?'

'यह प्रश्न अपनी अन्तरात्मा से पूछ देखो, तुम देशनर्तकी बन कर कितने दुःख की, कितने द्वेष और कितनी निर्दय हत्याओं की कारण बनी हो ? नर्तकी बन कर तुमने कितनों के जीवन से खेल खेला है ? पति को पत्नी से, पुत्र को माँ-बाप से, राजा को राजपाट से और कितने ही वीरों को उनके कर्तव्य से च्युत किया है, तब तुम किसी की आराध्यदेवी बन सकती हो ! ....और इतना परिश्रम और प्रयत्न करने पर भी इस वय में भी तुम्हें शांति मिली है ? जीवन का सुख मिला है ? अपनी अन्तरात्मा से पूछ देखो !'

पाली विस्मय से विमल को देखती रही, बोली—'सुख कह सकें ऐसी कोई वस्तु ही संसार में नही है !'

'तथागत भी ऐसा ही कहते है !'

'तब तुम्हारे तथागत बुद्ध और मै एक ही कोटि के हैं ?'

'अभी नहीं हो, पर तुममें उस कोटि तक पहुँचने की क्षमता है !'

'अर्थात् तुम मुझे संन्यासिनी बनाने आये हो ?...मार्ग भूलते हो भिक्षुक ! मैं तुमसे वादविवाद करना नहीं चाहती। कृपया एक बात तो बताओ कि तुम पूर्वाश्रम में किस देश के, किसके पुत्र थे ?'

'माँ, निर्वाण प्राप्ति के लिए भूतकाल को याद करने की आवश्यकता नहीं है ! भविष्य की चिन्ता करके दुःख, दुःख की उत्पत्ति का कारण, दुःख का अन्त, बुद्ध द्वारा बताए हुए आठ प्रकार के आर्य मार्ग—इन चार सत्यों को समझ कर उसके अनुसार आचरण करने की आवश्यकता है; उसीमें सच्चा

सुख है, मैं यही समझाने आया हूँ !'

पाली विमल की बात ध्यान से सुन रही थी; कोई प्रच्छन्न आनन्द उसके हृदय में उमड़ पड़ा। क्षण-क्षण में उसकी इच्छा होती थी कि उठकर इसे चूम लूं ! उसके हृदय में वात्सल्य की धारा बहने लगी। संन्यासी के वे सत्य और समझ की बातें उसे नहीं सुहा रही थीं, फिर भी संन्यासी ज्यों-ज्यों बोलता जाता था, त्यों-त्यों पाली उससे विवाद और विरोध कम करती गई। पुत्र-प्रेम और तज्जन्य विह्वलता ने उसे अस्त-व्यस्त कर दिया। संन्यासी ने भूतकाल की बाते न कीं, वर्तमान कहा; और भविष्य का भय दिखा कर उसे चार सत्य सुनाने के लिए तैयार हुआ। विमल निःसंदेह पाली का उद्धार करने के लिए आया था !

'पर तुम्हें मेरा उद्धार करना ही कैसे सूझा ?' अन्त में पाली ने पूछ लिया।

'तुम दुःखी हो, अशांत हो !'

'यह तुमने कैसे जाना ?'

'मै यह कहने के लिए प्रस्तुत हूँ। वह मुझे तुम्हारी वाणी में, व्यवहार में, मुस्कान में और क्रोध में दिखाई देता है ! माँ, जीवन का सच्चा सुख कोई नहीं जानता, और जो जानता है कोई उसे समझना नही चाहता। केवल तुम जैसे ही सत्य को समझ सकते हैं। पैदा होना दुःख है, जन्म लेकर जीना दुःख है, जीकर मरना दुःख है....दुःखों की यह परम्परा चलती ही रहती है। मोह और तृष्णा में फँसा हुआ प्राणी एक भव से दूसरे भव में दौड़ा करता है, जिसका अन्त नहीं। अन्त केवल तथागत ने पाया है; और जब तुम्हें उसका साक्षात्कार होगा तब ही तुम्हारे दुःख और अशांति का अन्त आयेगा। माँ, तथागत की शरण लो; उनकी शरण में ही तुम्हें सच्ची शांति और सच्चा सुख मिलेगा, तथास्तु !'

इतना कह कर विस्मित पाली को आशीर्वचन कह कर विमल अपने साथी भिक्षुक को लेकर चला गया; न उसने पीछे देखा और न रुका ही।

पाली द्वार के पास खड़ी हुई श्रमण की पीठ देख रही थी; धीरे-धीरे

उसके ओंठ कांपे—'मैं दुःखी और अशान्त हूँ यह तुम कैसे जान गये, अज्ञानी श्रमण ?....मोह क्या है, माया क्या है, माँ क्या है....? तुम्हारी माँ मिलती तो उससे पूछती कि उसने ऐसे पुत्र को दूर कैसे किया, और ऐसा करके वह जी कैसे सकी है ?...'

पाली की आँखें भर गईं। प्रातःकाल से मध्याह्न हुआ; और मध्याह्न से सन्ध्या हुई....। किन्तु पाली की अन्तरात्मा यही प्रश्न पूछ रही थी—पूछती ही रही !

(१०)

यह वही आम्रवृक्ष था, जहाँ से आम्रपाली ने सर्वप्रथम संसार को देखना आरम्भ किया था; जिसकी छाया के नीचे पाली ने प्रतिवर्ष लिच्छवियों और समस्त वज्जियों को अपने नृत्यप्रयोग दिखाये थे। आज उसी आम्रवृक्ष के नीचे महाकप्पिनो स्थविर विराजित थे, जो अवस्था में गोतम बुद्ध से भी बड़े, और भिक्षुणियों को उपदेश देने में श्रेष्ठ वक्ता माने जाते थे। उनके पास ही पियञ्जहो स्थविर और अन्य वयोवृद्ध भिक्षुक बैठे थे। वहाँ उनसे मिलने के लिए कोशल के मनसाकर और ब्राह्मण गाँव के कई ब्राह्मण आये हुए थे। अग्निपूजकों और भगवे साधुओं ने गोतम बुद्ध के उपदेशों को उल्टी तरह से समझा कर लोगों को विरुद्ध मार्ग बताना प्रारम्भ कर दिया था; वे लोगों को अश्वमेध और पुरुषमेध यज्ञ कराने के लिए कई तरह से प्रेरित करते थे। गोतम बुद्ध ने ऐसे हिंसक यज्ञों के विरुद्ध उग्र प्रचार किया; और इससे बुद्धानुयायी ब्राह्मणों के सम्मुख एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई थी। इतना समय बीत जाने पर भी, दूर से आये हुए सत्संगियों को निराश न करने के लिए महाकप्पिनो अभी तक उपदेश देने के लिए वहाँ बैठे थे। रात्रि का नीरव वातावरण मंद-मंद जलती हुई मशालों से अधिक गंभीर हो रहा था, और उस नीरवता को भेदता हुआ महाकप्पिनो स्थविर का गम्भीर प्रेरणाप्रद स्वर हृदय में एक विचित्र आस्था उत्पन्न कर रहा था।

रथ को खड़ा करके पाली कुछ देर तक स्थविर को उपदेश सुनती रही;

उसके पैर अचानक बढ़ते-बढ़ते रुक गये। कुछ देर रुक कर वह सोचती रही, किन्तु फिर साहस एकत्रित करके शीघ्रतापूर्वक श्रोताओं के पास से निकल कर स्थविर के सम्मुख आकर उन्हें नमस्कार किया; श्रोताओं ने मुंह फिरा कर एक बार पाली को देख लिया।

इस समय यदि कोई दुःख की मारी अकेली स्त्री वहाँ आती तो आश्चर्य करने का कोई कारण न था, किन्तु आज पाली का इस तरह आना अवश्य आश्चर्यजनक था। महाकप्पिनो ने उसे देख कर शान्त और निर्मल मुस्कान के साथ आशीर्वचन कहे। गोतम बुद्ध के शिष्यगण भी बुद्धमय प्रतीत होते थे। पाली की गरिमा टूट गई; गौरव अदृश्य हो गया; वह अपनी निराशा, भय और संकोच भूल बैठी। सहसा वह स्थविर के चरण में आकर बैठ गई और रोकर बोली—

'प्रभु, वह युवक संन्यासी कहाँ है?'

ब्राह्मण श्रोतागण चौक पड़े; कोई श्रद्धालु भक्त प्रकाश में भी अन्धकार देखने लगे; किन्तु सब मौन थे। स्थविर ने स्नेहपूर्ण स्वर में पूछा—

'किस की बात करती हो? युवक भिक्षुक तो यहाँ बहुत से हैं!'

'वह जो मेरा, मेरे हृदय का, मेरे जीवन का उद्धार करने के लिए मेरे घर बिना बुलाये आया था...'

'आचार्य, यह विमल श्रमण के बारे में पूछ रही है!' सहसा वह भिक्षु बीच में बोल उठा जिसने भिक्षा के लिए पाली के घर न जाने के लिए कहा था।

स्थविर ने मंद मुस्कान के साथ कहा—'श्रमण विमल तो राजगृह गया है देवी!...'

'मुझे आप देवी न कहें....' पाली बोल उठी, तब अत्यंत करुणार्द्र स्वर में बोली—'राजगृह किस लिए, मुनि?'

'तथागत को बिम्बसार के पास से यहाँ ले आने के लिए।'

'प्रभु, भले ही तथागत आएँ, पर उनके साथ वह भी आएगा न?'

'आयेगा...कदाचित न भी आए...' स्थविर ने मुस्कान रोक कर उत्तर दिया।

'ऐसा न कहें महाराज, ऐसा न कहिए; वह क्यों नहीं आएगा? आये बिना रह ही नहीं सकता!'

'देवी!'

'मुझे फिर देवी कहा, प्रभु...?'

स्थविर का मुख पुनः मुस्कान से भर उठा, जैसे वे अपनी भूल स्वीकार कर रहे थे, बोले—'तू इतनी आतुर किस लिए है?'

'मैं, पाली?...किस लिए आतुर हूँ...? प्रभु, यदि वह तथागत को लेने गया है, तो उसे ले जाने के लिए मैं आई हूँ!'

'किस लिए?'

'मैं कैसे समझाऊँ...'

'संसार में घसीट कर तू उसे क्या दे देगी?'

'वह दूँगी जो उसने कभी सुना न होगा, जाना न होगा!'

'क्या?'

'माँ का हृदय!'

'तू उसकी माँ है?'

'माँ होना चाहती हूँ...नहीं महाराज, मैं उसे यहाँ नहीं रहने दूँगी; संसार में वृद्ध बहुत से हैं, दुःखों से व्यथित असंख्य मनुष्य आपको इस जगत में मिल जाएँगे उन्हें श्रमण बनाइये, संन्यासी बनाइये! पर आप, और आपके तथागत इन कोमल किशोरों से अपना बुद्धसंघ भरना क्यों चाहते हैं? प्रकृति-प्रदत्त सुख मनुष्यों के हाथों से क्यों छीना जाता है? इन सुन्दर युवकों को अपने माता-पिता की दुलार भरी दृष्टि से बलात् ले जाकर आपका यह कठिन जीवन—पेड़ तले रहना, पंसु कूलचीवर, उग्र तपस्याएं और ये गूढ़ उपदेश किस लिए दिये जाते हैं? उन्हें इतना कठिन जीवन जीना किस लिए सिखाया जाता है? किस लिए...क्यों?'

'यह 'क्यों' तू तब ही समझ सकती है जब उनके जैसी बन जाए!'

'समझना नहीं चाहती भगवन्, मैं वह श्रमण चाहती हूँ, मुझ पर दया करो!....मुझे यह बता दो कि वह श्रमण किस का पुत्र है?'

'जान कर क्या करेगी बेटी?'

'आप संन्यासी हैं, स्त्री नहीं ! मैं आपको समझा नहीं सकूँगी !'

'जल के बीचोंबीच तैरने वाला कमल यह जानना नहीं चाहता कि उसकी जड़ कहाँ है। उसे तो पानी की सतह पर अपनी ओर खिंचते हुए जीव-जन्तुओं में ही सार्थकता विदित होती है। कमल को खींचने से जड़ में कीचड़ ही दिखाई देगा !'

'मुझे कवि बन कर उत्तर न दो प्रभु, दयालु बनकर कहो !'

'अपने घर लौट जा माँ ! यहाँ कोई किसी के भूतकाल को नहीं जानता !' स्थविर ने शांतिपूर्वक कहा।

उत्तर सुन कर पाली सहसा खड़ी हो गई, उसकी घबराहट बढ़ गई थी; वृद्ध स्थविर की ओर एकटक देख कर उसने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कहा—

'मैंने इतनी क्रूरता और पक्षपात बौद्ध-भिक्षुओं में ही देखा है ! पर आप मेरी बात भी सुन लें, आज तक कोई पाली के निश्चय को बदल नहीं सका है ! स्थविर, आप समझ बैठे हैं कि उसे छिपाकर आप उसे अपने पास रख सकेंगे, पर आप भूलते हैं....आप सब बौद्ध-भिक्षुओं से कह देती हूँ, मैं उसे आपके पास से ले जाऊँगी; और उस अकेले को ही नहीं, उसके जैसे प्रत्येक किशोर श्रमण और श्रामणेर को ले जाऊँगी;....लिच्छवियों की सेना लाकर ले जाऊँगी !....तब देखूँगी कि आप और आपके तथागत बुद्ध मुझे कैसे रोकते हैं ?...'

इसी आवेश में पाली जाने लगी, किंतु कुछ दूर जाकर खड़ी हो गई, उसके पैर अपने आप रुक गये; उसने घूमकर स्थविर-मंडली को देखा। आवेश के कारण वह थक गई थी; आँखों से आँसू भी बहने लगे थे। महाकप्पिनो स्थविर शांतिपूर्वक पाली को देख रहे थे; उन्होंने उन क्रोधपूर्ण शब्दों के पीछे, पाली के हृदय को जान लिया था। उन्होंने आशीर्वाद के लिए अपना दाहिना हाथ उठाया; पाली ने धरती पर बैठ कर वहीं से नमस्कार किया। आगंतुक ब्राह्मण लोग इस विचित्र घटना को बहुत कौतूहलपूर्वक देख रहे थे। उनमें से कोई भी उस युवक साधु के पीछे पागल बनी हुई पाली को समझ नहीं सका।

पाली ने खड़ी होकर आँसू छिपाने के लिए मुँह फेर लिया; जब उसने आँखें पोंछने के लिए आँचल का छोर खींचा कि सहसा उसकी आँखें चमक उठीं। मशालों के मंद प्रकाश में भिक्षुओं की छोटी-सी मंडली दूर आती हुई दिखाई दे रही थी; पाली तुरन्त आँसू पोंछती हुई उस ओर दौड़ी। वह कुछ ही क्षणों में भिक्षुओं के पास पहुँच गई। सब से पहले उसकी दृष्टि आगे वाले भिक्षु पर पड़ी, उसे देखते ही हृदय से दुःख भरी चीख़ निकल पड़ी। दौड़ कर पाली उसकी बाहों से लिपट गई और ज़ोर से रोने लगी। यह भिक्षु उसका भाई आनन्द था; उसके साथ ही अभिराम भी।

'भैया ! ...भैया !' पाली चिल्लाई; हृदय का आवेग रोकने से रुक न सका; तीनों ने देखा कि पाली का हृदय अब निर्बल हो चुका था, उसमें पहले की दृढ़ता न थी। आनन्द ने गंभीरतापूर्वक उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा—

'माँ, इन सबों में कौन तेरा भाई नहीं है ? शांत हो ! और मुझसे ज़रा दूर हो....' किंतु पाली ने उसे और ज़ोर से पकड़ लिया और बोली—'वह कहाँ है ? मैंने उसे देख लिया है भैया ! वही, वही है...उसकी आँखें, उसके बाल, ओंठ, दाहिने गाल पर तिल...अब, सब मुझे याद है; बोलो वह कहाँ है ?'

'संभव है, वही हो जो तू सोचती है।' आनंद ने पूर्ववत् शांति से कहा; वैसी ही शांति से जिसे पाली ने महाकप्पिनो स्थाविर और किशोर श्रमण विमल में देखी थी। पाली ने तत्क्षण उत्तर दिया—'नहीं, संभव नहीं....वही है !'

'नाम बताया ?' वृद्ध अभिराम ने पूछा।

'अभी ही ज्ञात हुआ है—विमल।'

'वही है....!' वेदांती ने कह दिया। पाली दोनों को स्थिर दृष्टि से देख रही थी।

'भैया, दादा !....उसे लेकर मेरे साथ चलो, तुम सब चलो ! सारा बुद्धसंघ साथ लेकर चलो...! तुम कहोगे तो मैं तुम्हें संन्यासी ही रहने दूँगी; तुम चाहोगे तो मेरा महल तुम्हें सौंप दूँगी, तुम चाहोगे तो इस उद्यान में या मेरे महल में ही तुम्हारे लिए सुन्दर मठ बना दूँगी; मैं बाहर रहूँगी,

तुम कहोगे तो नगर के भी बाहर रहूँगी !....पर तुम सब चलो...भैया, दादा ! उसे लेकर, उसके साथ....!'

इतना कह कर दुःख, उद्वेग और निराशा से व्यथित पाली आनन्द के हाथों में गिर पड़ी।

आँखें खुलने पर पाली को ज्ञात हुआ कि वह उसी पुराने आम्रवृक्ष के नीचे सोयी थी; उसके समीप महाकप्पिनो और अभिराम बैठे थे; सबों के मुख शांत और मृदु मुस्कान से विकसित थे। पाली धीरे-धीरे उठ बैठी।

भाई पर बहिन के समझाने का कार्य छोड़ कर दूसरे भिक्षुक वहाँ से चले गये; केवल अभिराम आनन्द के साथ रहा।

तब आनन्द ने उसे संसार की असारता और मोहमाया के त्याग को लेकर उपदेश दिया। धीरे-धीरे पाली की समझ में आया कि उसके भाई, दादा और वेदांती वयोवृद्ध उससे बहुत ही दूर रह कर, पराये और अपने प्रेम से रहित हो कर समस्त विश्व-प्रेम के रंग में रंगे हुए थे। वे उस स्तर पर पहुँच चुके थे कि जिन्हें देख कर और जिनकी बातें सुन कर उनके प्रति श्रद्धा ही उत्पन्न हो ! भाई ने पाली को बुद्धिवाद से प्रभावित किया, धर्म की बातें करके विजित किया किन्तु वह 'माँ के हृदय' को नहीं हरा सका, और न अभिराम ही। जीवन में अनेक महत्तम बलिदान देकर भी दृढ़ और अटल रहने वाली पाली हृदय के नव-जागृत पुत्र-प्रेम से इतनी निर्बल हो गई होगी ऐसा किसी ने सोचा तक न था। पाली अपने पुत्र को पुनः लौटा लेना चाहती थी, चाहे वह उसके पास न रह कर उसकी दृष्टि के सामने ही रहे। आनंद और अभिराम दोनों मिल कर पाली को यह न समझा सके कि प्रायः निर्वाण के अंतिम स्तर तक पहुँच कर और संसार से सदैव अलिप्त रह कर विमल अब उसे पुनः पुत्र रूप में प्राप्त नहीं हो सकता। यह बात पाली की समझ में बिलकुल नहीं आई।

पाली, जिसके हृदय ने माँ की ममता और दुलार खो दिया था, अंत में दोनों के चरणों में, सिर झुका कर जाने लगी। दोनों की आँखों में निर्दोष स्नेह था, न दुलार था न ममता।

जाने के पहिले पाली को ज्ञात हो चुका था कि तथागत बुद्ध की आज्ञानुसार

देश-विदेश में विचरण करने वाले भिक्षुगण किसी विशेष समय तक नहीं लौटते हैं; संभवतः विमल भिक्षु भी न लौट सकेगा।

(११)

वैशाली के पण्यग्रह के आगे एक निर्ग्रंथानुयायी ने धूम मचा दी थी; बहुत से लोग उसकी पुकार और चिल्लाहट सुनने के लिए वहाँ एकत्रित हो गये। तब वह जोर से हँसता हुआ वहाँ से आगे बढ़ा। नगर की गली-गली में वह अपने साथ की छोटी-सी भीड़ के साथ घूम-घूम कर चिल्ला रहा था।

पाली वीणा की एक कम्पित रागिनी में खो गई थी; उस चिल्लाहट ने उसका ध्यान भंग किया। निर्ग्रंथानुयायी अपने साथियों के साथ कंठ की समस्त शक्ति लगा कर चिल्ला रहा था; पाली वीणा छोड़ कर झरोखे में आकर खड़ी हो गई। उसने सुना—'सुन लो वैशाली वासियो'! अहिंसा का उपदेश देने वाला तुम लोगों का आधुनिक महात्मा श्रमण शाक्य-मुनि गोतम बुद्ध सिंह लिच्छवियों के यहाँ एक निर्दोष प्राणी को मरवा कर मांस का भक्षण कर रहा है। आओ, हिंसा के उस कट्टर विरोधी को प्रत्यक्ष देख लो, निर्दोष प्राणियों को मरवा कर, मीठे और चटकदार मसालों से भर कर वह अपने शिष्यों के साथ कितने आनंद से उसे भक्षण कर रहा है! आओ लिच्छवियों, सिंह के वहाँ आकर देख लो!....

'सुनेत्रा, सुनेत्रा!'

पाली ने ज़ोर से पुकारा; सुनेत्रा व्यथित-सी उसके पीछे ही खड़ी थी; उसे देख कर पाली ने मंद स्वर में कहा—'सुनेत्रा, भगवान यहाँ पधारे हैं?'

'हाँ माँ। पाटिकपुत्र ने सात दिन पहिले उन्हें जो आह्वान दिया था, उसे मान कर वे यहाँ आये हैं। आज मध्याह्न के बाद वे प्रवचन भी करेंगे!'

'किन्तु....किन्तु सुनेत्रा वह आह्वान तो उस श्रमण ने ही स्वीकार किया था न! वे यहाँ क्यों....'

सुनेत्रा ने बहुत कठिनता से अपना रुदन रोक कर पाली के हाथ आवेश में पकड़ लिए और प्रार्थना की—'माँ, आज भी भोजन करोगी या नहीं; कहो, करोगी या नहीं?...नहीं तो मैं भी...'

'क्या है री ?'

'इन सात दिनों में तुमने भोजन कब किया है ?....माँ...'

पाली हँस दी। सुनेत्रा रो पड़ी।

पाली ने एकनिष्ठ सुनेत्रा के मुख पर अपने गहन दुःख का प्रतिबिम्ब देखा; उसने सुनेत्रा की आँखों में देख कर गम्भीरतापूर्वक कहा—'सुनेत्रा, इसी समय मेरे वस्त्राभूषण तैयार कर, मुझे भी देखना है कि ये मांस-भक्षी, सम्यकसंबुद्ध अर्हत्, विद्यासंपन्न, सुगत, देवमनुष्यों के प्रभु गौतम बुद्ध कैसे हैं !'

'देवी देख कर क्या करोगी ?'

'देखूँ तो सही ! पूछूँगी कि तुम्हारा वह कैसा धर्म है जो माँ को पुत्र से, स्त्री को पति से, पुत्र को पिता से दूर रखना पुण्य समझता है ? संसार को असार बता कर, सुकुमार युवकों को शिशिर, शरद् और ग्रीष्म की भीषण शीत और उष्णता को बलात् सहन करना सिखा कर एक से दूसरे गाँव भटकाने का उपदेश देता है ! सुनेत्रा, मुझे उस संसार-शत्रु से पूछना है कि तुम्हारा कैसा यह धर्म है जो...'

पाली का आवेश आँसुओं में बहने लगा। सुनेत्रा ने शीघ्र वस्त्राभूषण प्रस्तुत करना प्रारंभ किया। पाली सात दिनों से महाकप्पिनो स्थविर, आनन्द और विमल के धार्मिक उपदेशों को समझने का प्रयत्न कर रही थी। किन्तु उसके मातृ-हृदय की अशांति किसी तरह दूर न हो सकी; उसकी विषादमयी निराशा बढ़ती ही गई। सुनेत्रा उसके दुःख का कारण जानती थी; अब उससे पाली के आँसू देखे नहीं जाते थे।

एक प्रहर के बाद जब पाली सिंह के घर पहुँची तो ज्ञात हुआ कि गौतम बुद्ध दिगम्बर पाटिकपुत्र के वहाँ गये हैं। पाली को बहुत आश्चर्य हुआ जब उसने सुना कि पाटिकपुत्र और अन्य सम्प्रदायों का कट्टर अनुयायी सिंह लिच्छवी भी उनका विनम्र सेवक बन कर उनके साथ गया है ! उसने अपना रथ पाटिकपुत्र के निवास की ओर बढ़ाया।

वहाँ से कुछ ही दूर पाली ने अपना रथ रोक दिया; किन्तु पैरों के पृथ्वी पर रखते ही, वह आवेग जो उसे गौतम बुद्ध से मिलने के लिए यहाँ तक खींच लाया

था, बिलकुल शांत हो गया। धीरे-धीरे पाली मठ के द्वार के पास सब के पीछे आकर खड़ी हो गई इस डर से कि कोई जान न जाय। सहसा वहाँ खड़ी होते ही विस्मय से स्तब्ध हो गई।....

अनुकम्पा-पूर्ण मुस्कान से तथागत गोतम बुद्ध का मुख विकसित हो रहा था, उनका शरीर किसी अज्ञात तेज से दैदीप्यमान था। दिगम्बर पाटिकपुत्र अवाक् बन कर वहाँ बैठा था; उसके शिष्यों और अनुयायियों की स्थिर दृष्टि गौतम बुद्ध की ओर ही थी। पाटिकपुत्र को उसी तरह मौन देख कर अंत में गौतम खड़े हुए और आशीर्वचन कह कर वहाँ से जाने लगे। पाटिकपुत्र मानों पृथ्वी से चिपक ही गया था, गौतम के चले जाने पर भी वह उठ न सका। गौतम बुद्ध के शब्दों ने उसके शरीर और मन को इतना प्रभावित किया था कि उसकी बुद्धि भी उसके अनुयायियों और अंतिम आगंतुक पाली की ही तरह कुण्ठित हो गई।

जिस तरह पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर नीचे दृष्टि डालने से खेतों के विभिन्न आवरणों से पृथ्वी ढंकी हुई दिखाई देती है, वैसे ही चिथड़ों से जुड़े हुए वस्त्र से गौतम का शरीर आच्छादित था। उनके हाथ में, सामान्य भिक्षु की भाँति ही एक भिक्षापात्र था, एक कंधे पर छोटी-सी झोली लटक रही थी। उनके पीछे पट्टशिष्य, सारिपुत्र और मोद्गलायन भी थे और कुछ ही दूर आनंद भी अंगरक्षक की तरह साथ ही चला जा रहा था। गौतम की प्रसन्न मुख मुद्रा और किसी अलौकिक प्रभाव के कारण प्रत्येक व्यक्ति मंत्रमुग्ध की तरह प्रभावित हो जाता था। ज्यों-ज्यों वे आगे बढते जाते थे, उनके अनुरोधी के साथ-साथ विरोधी भी सिर झुका देते थे। सह, आनंद और श्रद्धा से पुलकित होता हुआ पाली को घूरकर निकल गया किन्तु पाली का ध्यान दूर जाते हुए उस उद्धार की ओर था।

पाली ने बुद्ध को देख लिया। उसका मन क्रोध से उत्तेजित हो रहा था, उन्हें ललकारने के लिए उसने बहुत से शब्द सोच रखे थे, किंतु जब वे ही बुद्ध सबों को आशीर्वाद देते हुए उसके पास से निकल गये तो उसने कुछ न सोचकर उनके आगे सिर झुका दिया; उसके मन पर किसी अज्ञात अंकुश की नोक रख दी गई थी जो चुभते हुए भी कुछ कहने न देती थी!

पाटिकपुत्र का मौन रहना चमत्कार नहीं था, सिंह लिच्छवी का आँसू बहाना चमत्कार नहीं था, किन्तु पाली का इस तरह विमूढ़ बन कर सिर झुका देना अवश्य एक चमत्कार था !

पाली के घर पहुँचने पर उसकी व्याकुलता और बढ़ गई; वह क्या करने गई थी और क्या कर आई ! गौतम बुद्ध को देखते ही वह अचानक शांत कैसे हो गई ? उन्हें एक बात भी क्यों न कह सकी ! तथागत अवश्य इंद्रजालिक है, जादूगर है; नहीं तो सैकड़ों में से एक पुरुष भी उससे कुछ कह नहीं सकता ? सोचते-सोचते उसका क्रोध पुनः भड़क उठा; अशांति बढ़ गई। वह क्रोध अब बेचारी सुनेत्रा पर उमड़ पड़ा—

'सुनेत्रा !'

सुनेत्रा, हाँफती हुई उसके पास आ कर खड़ी हो गई, वह अभी ही बाहर से आई थी !

'क्यों, कहाँ भटकने गई थी ?'

सुनेत्रा चुप रही।

'बोल, मूढ़ !'

'माँ मै बौद्ध भिक्षुओं के डेरे पर गई थी !'

'क्यों ?'

'यों ही, देखने के लिए; पर कोई मिला नहीं !'

पाली समझ गई कि सुनेत्रा का संकेत विमल को देखने जाने की ओर था। वह आगे कुछ न पूछ सकी। सुनेत्रा, जो पाली के ऐसे क्रोध से अभ्यस्त थी, धीरे-धीरे स्वामिनी के आभूषण निकालने लगी।

'माँ, सब लोग बातें करते थे कि गौतम बुद्ध अद्‌भुत हैं, देवरूप हैं...!'

पाली की इच्छा हुई कि सुनेत्रा को एक थप्पड़ लगा दे, पर वह मौन ही रही। सुनेत्रा कहती गई—

'और माँ, उनके चमत्कारों की तो बात ही क्या कहूँ ? लोग कहते हैं कि पाटिकपुत्र तो उन्हें देखते ही धरती से चिपक गया और उसकी जीभ पेट में उतर गई।....पर उसके शिष्य ऐसे वैसे न थे. वे बुद्ध के पीछे लग गये और

कहने लगे कि श्रमण गौतम, तुम्हारा धर्म मूर्खों और अंधविश्वासियों के योग्य है; यदि तुम सच्चे हो, बुद्ध हो, सम्यक् बुद्धि वाले हो तो हमें कोई चमत्कार दिखाओ....'

पाली सुनती रही ।

'फिर माँ, गौतम ने उन लोगों से कहा कि—'तुम्हारे पाटिकपुत्र को यहाँ ले आओ तो दिखाऊँ !'....पर जब वे जाने लगे तो झट उन्हें रोक लिया और कहा कि एक बात सुनते जाओ—'यदि तुम्हारे पाटिकपुत्र के मस्तिष्क में सदा की तरह कुविचार होंगे तो उसका मस्तक फट जायगा । यह सुन कर सब पाटिकपुत्र आशंकित होकर वहीं खड़े हो गये । कुछ लोगों ने यह बात पाटिकपुत्र से कही; पर वह तो इतना डर गया कि अपने स्थान से खड़ा भी न हो सका....।'

पाली सुन रही थी; वाचाल सुनेत्रा बोलती रही—

'फिर माँ, अत्यन्त अरुचि होते हुए भी, अंधविश्वासियों के मन में विश्वास उत्पन्न करने के लिए, गौतम बुद्ध उन पाटिकपुत्रों के सम्मुख सात ताड़ ऊँचे आकाश में उड़े और उतनी ही लम्बी ज्वाला उत्पन्न करके उसमें अदृश्य हो गये ! माँ, उसी समय सब पाटिकपुत्र भिक्षुसंघ की शरण में गये और उन्होंने बौद्ध-धर्म की दीक्षा ले ली !'

पाली बोली—'अर्थात् मैं भी दीक्षा ले लूँ ? मुझे गौतम तथागत पर विश्वास नहीं है, वह इन्द्रजालिक है, जादूगर है, वशीकरण करने वाला है !'

पाली सहसा रुक गई; वह बहुत क्षुब्ध हो रही थी, उसने सुनेत्रा की ओर देख कर पूछा—'तूने उन्हें देखा ?'

'हाँ माँ ! मैंने उन्हें ज्वाला बनते हुए देखा; तथागत सर्वश्रेष्ठ हैं, दयामय हैं....!'

'दयामय ?'

'हाँ माँ ! दयामय हैं, स्नेहमय हैं, कल्याणमय हैं !....'

'दयामय ?' पाली के ओठों से अस्फुट शब्द निकला ।

साँझ होने पर जब पाली महा-उद्यान में पहुँची तब बौद्ध भिक्षुओं के डेरे पर

अकेला सिंह लिच्छवी आँसू बहाता हुआ खड़ा था। तथागत बुद्ध कुछ ही समय पहले अपनी शिष्य-मंडली के साथ साकेत की ओर प्रस्थान कर चुके थे; और महापराक्रमी सिंह उनके वियोग से व्यथित हो कर, बालक की तरह रो रहा था। उसकी दृष्टि तथागत के प्रस्थान-पथ की ओर थी। पाली उसके बिलकुल समीप आ कर खड़ी हो गई, जैसे श्रद्धा के पास निराशा हो!

'किस बात का विचार कर रहे हो, सिंहराज?'...पाली ने धीरे से पूछा।

'यदि इस बार तथागत अपना वर्षावास लिच्छवियों के बीच में बितायें तो...'

'तो अपना सर्वस्व उनके चरणों में रख दो, यही न?'

'हाँ, यही महत्वाकांक्षा है!'

'तो तथागत को निमन्त्रण देने तुम जाओगे?'

'यही चाहता हूँ....!'

'उनके सब भिक्षुओं को भी...?' पाली ने स्वर में आशा भर कर पूछा।

'यही आकांक्षा है....नहीं तो जितने आ सके उतने भिक्षुओं को! उनकी शिष्य-मण्डली छोटी नहीं है! जिस तरह सूर्य धीरे-धीरे तेज होता है उसी तरह तथागत का तेज भी धीरे-धीरे संसारियों के हृदय को प्रकाशित कर रहा है! आज, सहस्र ही नहीं, लाख-लाख शिष्य उनकी आज्ञा के लिए प्रस्तुत हैं!'

'तो क्या हम दोनों मिल कर उन सब शिष्यों को नहीं बुला सकते?'

'यदि सारी वैशाली मिल कर निमन्त्रित करे तो अवश्य ही सब शिष्य आ सकेंगे!'

'ऐसा ही होना चाहिए!...' पाली ने कहा, वह और अधिक कुछ कह न सकी। उसने ऊपर देखा, आम्रवृक्ष की पतली-सी टहनी पर एक कोयल कूक रही थी। पाली, वृक्ष के नीचे चौतरे पर बैठ गई; और उसे गम्भीरतापूर्वक देखती रही...एक दिन, सब से पहिले उसने यहीं से संसार को देखा था; आज उसने संसार को समझ लिया था।

सात दिन बाद, वैशाली के वार्षिक महोत्सव के दिन, उसी वृक्ष के आस-

पास, वज्जि और वैशाली के लिच्छवीगण पाली की प्रतिक्षा में बैठे थे; तब पाली के स्थान पर सुनेत्रा ने नृत्य प्रारम्भ किया। पाली, देशनर्तकी बनने के पश्चात पहिली ही बार यहाँ नहीं आई थी।

उसी दिन वैशाली में बात फैल गई कि पाली में कोई विचित्र परिवर्तन हुआ है।

दिन बीतने लगे; ज्यों-ज्यों समय बीतता था त्यों-त्यों पाली के दर्शन कम होने लगे।

महीने बीतने लगे; पाली का नगर मे आना जाना बिलकुल कम हो गया।

वर्ष बीतने लगे, पाली के लिए, संथागार में लिच्छवियों की वार्षिक परिषद के अतिरिक्त नृत्य करना असम्भव हो गया। विलासी धनिकों और राजाओं की टोलियाँ पाली को देखने के लिए तरसने लगी।

पाली ने माया ममता छोड़ दी थी। वही पाली जो देश के लिए कोई भी सेवा करने के लिए तत्पर रहती थी अब केवल लिच्छवी परिषद के सिवा किसी विषय मे रस न लेती थी।

प्रत्येक वर्ष वैशाली में पहले की अपेक्षा, आगन्तुक भिक्षुओं की संख्या बढ़ती गई। प्रत्येक वर्ष पाली अपना रोष निकालने के लिए भिक्षुओं के पास जाती और फिर उनके उच्च आचार-विचारों से प्रभावित हो कर, दिनों-दिन वह भिक्षुओं की संगति में अधिक रहने लगी; किन्तु उसे विमल न मिला!

कई वर्ष बीत जाने पर भी पाली की आशा नष्ट नहीं हुई। आधी वैशाली अब गौतम को मानने लगी थी। धीरे-धीरे वैशाली से अन्य धर्मप्रवर्तकों और अनुयायियों का लोप होने लगा। तथापि संथागार पूर्ववत ही था; प्रवेणी-पुस्तक के आदेश और लिच्छवी गणतंत्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। ठीक दस वर्ष बाद पाली बुद्धानुयायी बनी।

आज पौ फटते ही बात फैल गई कि तथागत बुद्ध वैशाली में आये हुए हैं। पाली ने तुरन्त सुन्दर अश्वों वाला रथ तैयार कराया और सब से पहिले कूटाराम में पहुँच गई; तथागत का आशीर्वाद लेने के बाद उसने बहुत विनय-

पूर्वक उन्हें भिक्षुक संघ के साथ भोजन के लिए आमन्त्रण दिया। समदृष्टि के साथ-साथ तथागत मनोवैज्ञानिक भी थे, उन्होंने पाली की आस्था देखकर प्रसन्नतापूर्वक उसका आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

एक ही प्रहर के बाद सारी वैशाली में धूम मच गई। कई बुद्धानुयायी श्रेष्ठी और महाजेट्ठकगण पाली के यहाँ दौड़ गये। तथागत वहाँ एक ही दिन रुकने वाले थे; प्रायः सब ही मुख्य शिष्यगण उनके साथ थे। सिंह लिच्छवी ऐसा सुन्दर अवसर हाथ में से जाने नहीं देना चाहता था; अन्य श्रेष्ठियों की अपेक्षा उसकी आस्था अधिक थी। उसने पाली से बहुत अनुनय-पूर्वक प्रार्थना की कि तथागत के भोजन का आमन्त्रण वह उसे दे दे; वह पाली चाहे उतना धन देने के लिए तैयार था। आज बहुत दिनों के बाद अचानक वैशाली के सब ही गणमान्य नागरिक पाली के प्रासाद में एकत्रित हुए थे। किन्तु पाली टस से मस न हुई; वह सदा अजित रही थी, आज तथागत और उनके शिष्यों को आमंत्रण देने मे सब पुरुषों में उसीकी जीत हुई।

दूसरे दिन नियत समय पर तथागत अपने शिष्यों के साथ आ पहुँचे; पाली का हृदय आशा और आनन्द के झूले में झूल रहा था। उसने स्वादिष्ट खाद्यों से भोजन और भिक्षुओं को देने के लिए वस्त्र प्रस्तुत रखे थे।

पाली ने सोल्लास, अपने हाथों से भिक्षुओं को भोजन परोसा और उन्हें सन्तुष्ट किया।

भोजन से निवृत्त होकर तथागत ने अपने नियमानुसार पाली और आमंत्रित नागरिकों को पहले दान-कथा फिर शील-कथा और अन्य कथाएँ कहीं, और सबों को प्रमुदित, प्रोत्साहित और सचेत करके अपने निवास को चले गये।

पाली जितनी प्रसन्न थी, उतनी ही निराश भी हुई। उसे विमल कहीं भी दिखाई नहीं दिया; यद्यपि उसने विमल से मिलने की आकांक्षा को बहुत गुप्त रखा था।

दूसरे वर्ष, पाली ने अपने प्रासाद का तीन चौथाई भाग अलग करके वहाँ बौद्ध भिक्षुओं के लिए एक मठ बनवाया।

मठ पूरा तैयार हो जाने के बाद, एक दिन पाली ने राजगृह की ओर प्रस्थान किया। बीसों वर्ष पहिले वह इसी मार्ग से सदा के लिए प्रस्थान करने वाली थी; आज इसी मार्ग पर रथ में बैठी पाली यही सोच रही थी। बहुत समय के बाद उसने अश्वों की बागडोर अपने हाथ में ली थी। इस समय उसे किशोरावस्था के उत्साह और आवेग की अनुभूति हो रही थी। राजगृह की सीमा में आ जाने पर पाली ने रथ रोक दिया। दूसरे दिन, सबेरे, जब तथागत भिक्षा के लिए नगर में निकले तो पाली ने उनके चरण पकड़ लिए। अत्यन्त आग्रह से उसने तथागत से अपनी शिष्य-मण्डली के साथ उसके घर आने की प्रार्थना की—'भगवान, मुझे लगता है कि मैं अब संसार में और अधिक न रह सकूँगी। मुझे कोई पुत्र पुत्री नहीं है; मैं अपना प्रासाद आपको समर्पित करने आई हूँ, आप इसे स्वीकार करें!' तथागत ने शांतिपूर्वक उसका आग्रह स्वीकार किया। पाली ने हर्षाश्रु पोंछे, और तथागत के शिष्यों सहित चले जाने के कुछ समय बाद तक वह पराई धरती पर बैठी रही। जीवन में पहली बार आज उसने मागधियों की भूमि पर पैर रखा था। उसकी आँखें मुँद गई; हृदय में रमे हुए पुत्र और उस पुत्र के पिता के स्मरण में वह बैठी रही। यह वही भूमि थी, जिसकी वह स्वामिनी होती; यह वही पृथ्वी थी जिस पर उसके हृदय-धन राज्य करते थे; यह वही भूमि थी जिस पर उसके जीवन को आशा-निराशा के झूले में झुलाकर उसका पुत्र ग्राम-ग्राम भटकता था और यह वही धरती थी जिस पर उसके शांतिप्रदायी तथागत विहार करते थे। भूतकाल की स्मृति सहसा जागृह हो गई। भूतकाल के दृष्य आँखों के आगे झिलमिलाने लगे। वह हँसी, रोयी, फिर हँसी और एक दीर्घ निःश्वास लेकर वैशाली की ओर प्रस्थान किया।

एक सप्ताह के बाद वैशाली के निवासी आश्चर्यचकित हो गये क्योंकि पाली ने समस्त भिक्षुसंघ को निमंत्रित किया था। दूर देशों के भिक्षुगण भी वैशाली में एकत्रित होनेवाले थे। वर्षों के बाद आज पुनः पाली का नाम घर-घर में लिया जाने लगा। निश्चित दिन पर तथागत अपने भिक्षुसंघ के साथ वैशाली में प्रविष्ट हुए। सारी वैशाली उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ी।

उस रात को पाली ने अपने हाथों भोजन तैयार किया। सबेरे तथागत अपने शिष्यसंघ के साथ पाली के घर आये; पाली ने स्वागत किया। आज उसने एक नई बात देखी; तथागत के साथ भिक्षुगण तो थे ही, किन्तु इस बार उनके साथ भिक्षुणियाँ भी थीं। अब तक महाप्रजापति गौतमी के नेतृत्व में भिक्षुणीसंघ की स्थापना हो चुकी थी। पाली ने उनका स्वागत किया और साथ ही साथ उनके भोजन की तैयारी भी की।

पाली अपने हाथ से उत्कृष्ट खाद्य परोसने निकली। वह प्रत्येक भिक्षु और भिक्षुणियों को देख-देख कर रखती जाती थी। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती थी, त्यों-त्यों हृदय में उत्सुकता और आशा-निराशा का एक-साथ स्पन्दन होता था। धीरे-धीरे निराशा बढ़ती गई; आगन्तुकों में विमल दिखाई न दिया। पाली ने प्रयत्न किया, पर आँखों के आँसू रुक न सके।

पाली ने अभी तक एक बात सोची तक न थी कि कहीं कल्याणमूर्ति तथागत उसके हृदय की व्यथा को न जानते हों। अब पाली ने अंतिम पंक्ति को परोसना प्रारम्भ किया। एक, और दो के बाद जब उसकी दृष्टि तीसरे भिक्षु पर पड़ी कि सहसा उसके हाथ से पात्र का एक भाग खिसक गया। यदि सम्मुख बैठे हुए भिक्षुक ने तत्क्षण उसे पकड़ न लिया होता तो पात्र का सब खाद्यान्न बिखर जाता। जिसने पात्र सँभाल लिया, वह भिक्षुक विमल था।

पाली विमूढ़-सी देख रही थी; किसी अपूर्व भाव से उसकी आँखें चमक उठीं। विमल की वह गम्भीरता दूर होकर उसका मुख मृदु मुस्कान से विकसित हो उठा, आँखें मृदुता से विहँस उठीं। इस श्रमण ने अरहत्व को प्राप्त कर लिया था, अब वह स्थविर था। वर्षों अदृश्य रहने के बाद उसे ज्ञानप्राप्ति हुई थी। तथागत दूर से माँ-बेटे को देख रहे थे। विमल ने क्षीरपात्र सम्हालकर पाली के हाथों में रखा, पाली पुनः परोसने लगी। परोसने के बाद वह सीधी अपने भवन में चली गई। सुनेत्रा भी उसके पीछे-पीछे चली गई; पाली शय्या पर लेट गई। सुनेत्रा उसका सिर दबाते हुए बोली—'माँ....' पाली ने चौंककर ऊपर देखा तो सुनेत्रा रो रही थी।

दूसरे दिन पौ फटते-फटते ही विमल पाली के प्रासाद के सम्मुख आ खड़ा

हुआ; वह बिना बुलाये प्रासाद में प्रविष्ट हुआ। पाली घबराई-सी उसके पास दौड़ आई; विमल ने उसे शान्त किया।

'देवी, चलो समय हो चुका।'

'पाली स्तब्ध होकर एक-टक देखने के बाद बोली—'कहाँ ?'

'संसार से दूर।'

'कहाँ ?'

'निर्वाण-पथ की ओर !'

'निर्वाण ?'

'माँ, तुम्हें मेरे साथ आने की इच्छा है न ?'

'माँ ?....स्थविर, इतने वर्षों के बाद जिस शब्द को सुनने के लिए मैंने तड़प-तड़प कर दिन, रात, महीने और कई वर्ष निकाल दिये, आज वही शब्द सुनकर मालूम होता है कि यदि यह नहीं सुनती तो अच्छा होता। मुझे संसार की हरएक वस्तु से अरुचि थी ! अब तुझे देखकर याद आता है कि मैं जीवित हूँ; बेटा ! तू कह वहाँ जाने को तैयार हो जाऊँगी, पर अब मुझे न छोड़ना।...नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूंगी।'

'इसीलिए तो लेने आया हूँ माँ, मेरे साथ चलो !'

'यह तो कहा ही नहीं कि कहाँ ले जाएगा ?'

'निर्वाण के पथ को !'

इतना कहकर विमल स्थविर ने माँ को उपदेश देना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे माया का पटल दूर होने लगा; ममता, मोह और क्रोध विलीन होने लगे। पाली के मन ने काम और कुविचारों को छोड़कर वितर्क, विचार और विवेकजन्य प्रीतियुक्त सुख को स्पर्श किया; जिसे 'प्रथम-ध्यान' कहते हैं। उसे फिर द्वितीय ध्यानावस्था प्राप्त हुई। तृतीय ध्यानावस्था प्राप्त हो जाने के बाद सुख और दुःख से अलिप्त समतापूर्ण अन्तिम चतुर्थ ध्यान प्राप्त हुआ। उसके बाद उसे जन्म-मरण का ज्ञान प्राप्त हुआ। वह जन्म-मरण के कारणों को समझ गई। उसे जन्म-मरण नष्ट करने के उपाय दिखाई दिये। भावी जन्मों का क्षय हुआ; पवित्र वर्तमान से साक्षात्कार हुआ। अब उसे

करने [illegible] कोई कार्य शेष न रहा। उसे सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया था। पाली थेरी ने अर्हत्व पाया। अन्त में 'पाली थेरी' के नाम से अरहत्व पाकर वह बौद्ध-भिक्षुणी बनी।

दूसरे दिन पाली वैशाली छोड़ कर चली गई; सारी नगरी विस्मित होकर यह घटना देखती रही। वह भिक्षुसंघ की शरण में राजगृह की ओर जा रही थी।

जीवन के अंतिम स्तर पर देशनर्तकी महान पाली, पुनः एक बार अपने गुरु, अपने ही पुत्र की कृपा से महान बनी।

एक ही व्यक्ति, जिसे जानना चाहिए था। वह इस घटना को न जान सका; वह था—बिम्बसार।

(१२)

'मैं नहीं मान सकता, संजय !'

बिम्बसार वृद्धत्व की देहलीज़ में पैर रख चुके थे, महामात्य संजय का उन्होंने ज़ोर से सिर हिला कर विरोध किया—'लिच्छवीगण चाहे जैसे हों, वीर अवश्य हैं, वे एकाएक इतने शांत हो सकते हैं, यह बात मैं नहीं मान सकता।'

'मुझे मानना पड़ा है महाराज; इन बीते आठ महीनों में मगध और अपरान्त की किसी सीमा पर ऐसी एक भी घटना नहीं हुई जिससे कहा जा सके कि मागधी और लिच्छवीगण अभी भी लड़ते है !'

'तब यह लिच्छवियों की कोई चाल होगी !'

'नहीं, महाराज !'

'तब लिच्छवी किसी रोग से पीड़ित होंगे !'

'नहीं देव, उन्हें नशा चढ़ रहा है।'

'संजय, मैं तुझे प्रतिदिन कहता हूँ कि अब तू बूढ़ा हो गया है; तू

बोलता बहुत है, मानता बिल्कुल नहीं !'

'देव, मुझ पर भी लिच्छवियों की तरह नशा चढ़ रहा है !'

'ऐं ...?'

'हाँ प्रभु, वैशाली और मगध की सीमा पर एक थेरी बहुत घूमती रहती है। वह जहाँ जाती है, लिच्छवी और मागधी लोग उसकी आज्ञा मानने के लिए सिर झुकाकर तैयार रहते हैं। वह जिस बात का निषेध करती है वह बात प्रत्येक लिच्छवी और मागधी प्रसन्नता से मान लेता है।'

'मागधी और लिच्छवीगण एक हो रहे हैं ? जिस कार्य को मेरा विवाह भी सफल न कर सका वह एक थेरी सफल कर रही है ?...वह थेरी कौन है संजय !...उपचारा, पटाचारा,....किसागोतमी ?'

'नहीं, महाराज !'

'तो कोई नई थेरी होगी !'

'हाँ महाराज, संघ में आये उसे अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ; फिर भी वह अर्हत्व को पाकर संघ में प्रविष्ट हुई है। उस थेरी का मुख्य उपदेश यही है कि जिस तरह तथागत के भिक्षुसंघ में सब कोई समान है उसी तरह उनके अनुयायी लोग एक और अविभाज्य है। उसने एक छत्र के नीचे सब को खड़ा करके, पारस्परिक शत्रुता दूर करके, सबों के हृदय में मानवप्रेम के नये अंकुर बो दिये हैं !'

'संजय, आज उसे राजमहल में पधारने का निमंत्रण दे दो !'

'वह राजमहलों में नहीं जाती महाराज !'

'यह बात ? तो संजय, तू मुझे उनके पास ले चल।'

'नहीं, देव, आपको वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं है....।'

बिम्बसार चौंक उठा; क्योंकि कहने वाला संजय नहीं था; किन्तु ऐश्वर्य और अधिकार के मद से मदमाती महारानी चेलना थी। उसकी वाणी में नम्रता की अपेक्षा अधिकार अधिक था। महाराज के पास आकर उसने संजय से कहा—'जब तक गौतम बुद्ध और उनका संघ जीवित है, तब तक थेरियों की कमी नहीं हैं। यह थेरी राजगृह में किसी के यहाँ आने पर भी देखी जा सकेगी महामंत्रीजी!'

'महारानीजी, ये थेरी राजगृह में आयेंगी....!' संजय ने कहा।

'नगरश्रेष्ठी ने उन्हें निमंत्रण दिया है; पवारणा*के बाद वे स्त्रियों को उपदेश देने के लिए यहाँ भी आयेंगी।'

'कितने दिनों में, संजय ?' बिम्बसार ने अत्यन्त उत्सुक होकर पूछा।

'इसी पूर्णिमा को....महाराज !'

'पूर्णिमा को ?' बिम्बसार ने विस्मित होकर पूछा।...'ओह, पूर्णिमा !.... महारानी, इस पूर्णिमा को युवराज अजातशत्रु रूठ गये थे, वे अभी तक मुझे मिले भी नहीं ! ज़रा देख तो आओ, अभी तक क्रोध शांत हुआ या नहीं ?'

'आपका पुत्र मेरा कहा मानेगा ? उसके हठाग्रह को आप बदल सकेंगे या मैं....?'

'मगध की महारानी, अब मैं बूढ़ा होने आया हूँ; शायद बोलने में कुछ भूल-चूक भी हो गई हो, पर इतनी-सी बात से युवराज का इतना क्रोध ठीक नहीं मालूम होता, जाओ, उसे मना लो !'

बिम्बसार के इन अंतिम शब्दों में अनुनय था।

चेलना अधिक कुछ न कह कर वहाँ से चली गई; उसे यह पसन्द नहीं था कि महाराज रात-दिन संजय के ही साथ रहें; यह बात संजय और बिम्बसार को ज्ञात हो गई थी, इसलिए चेलना के जाते ही संजय ने महाराज के बिल्कुल समीप आकर कहा—'देव, जानते हैं वह कौन है ?'

'कौन है ?'

'पाली-थेरी !'

'हाँ...! वह कौन है संजय ?'

'वह वैशाली की है महाराज !'

'वैशाली की ?' बिम्बसार सोचने लगा।

'अभी भी न समझे महाराज ! वैशाली की एक नर्तकी, लिच्छवी राष्ट्र की

---

* बौद्धभिक्षु वर्ष में आठ महीने घूमते रहते थे और चार महीने एक ही स्थान पर निवास करते थे; जिसे वे वस्सावास (वर्षावास) के नाम से पुकारते थे। वर्षावास के अंत में होने वाली धार्मिक क्रिया का नाम 'पवारणा' था।

एक महान देश-सेविका...

'बस, संजय...आगे न बोल !' मानों बिम्बसार के किसी मर्मस्थान पर आघात हुआ हो; फिर बोला—'वह थेरी हो गई ? न होती तो करती भी क्या ? पर संजय, तूने मुझे इसका आज तक कुछ भी संकेत न किया ?'

'वर्षों की विस्मृत घटना को याद दिलाना उचित न लगा !'

'तब आज ही क्यों याद दिलाई ?'

'महाराज...' संजय का स्वर बदल गया, उसके मुख पर भय का स्पष्ट आतंक छा गया था। सहसा बिम्बसार के निकट जाकर वह उसके गले लिपट गया और धीरे से बोला—'आप थेरी को देखने का बहाना लेकर यहाँ से चले जायें तो अच्छा है; थेरी से पूर्णिमा के पहले सीमान्त पर मिलना ही हितकारी है !'

'अर्थात्...' संजय को अलग करके बिम्बसार ने कहा। संजय ने आस-पास देख कर बहुत मन्द स्वर में कहा—

'महाराज, युवराज रूठे नहीं हैं, बात कुछ दूसरी ही है, वे चाहते हैं...'

बिम्बसार ने तत्क्षण उसका हाथ पकड़ लिया और उसे झकझोर बोला—'क्या चाहता है, संजय ? शीघ्र कह...! रुक नहीं, बात पूरी कह...!'

'महाराज...देव !'

'कह दे संजय, शीघ्र कह, युवराज क्या चाहते हैं ?'

'राजसिंहासन !'

'राजसिंहासन ?'....कह कर बिम्बसार ने अट्टहास किया; सहसा रुक कर धीरे से बोला—'राजसिंहासन तो उन्हीं का है संजय ! अजात ही सिंहासन का सच्चा उत्तराधिकारी है !'

'पर वे तो अभी ही उसे चाहते हैं !'

'इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? अभी ही ले ले...पर वह मेरे पास तो आये !'

आपके पास आयेंगे तो आप उनकी परीक्षा लेंगे !'

'सिंहशावक को यदि शूरवीरता की परीक्षा देनी पड़े तो इसमें दुःख किस बात का ? मेरे पिता ने अनेक परीक्षाएँ लेने के बाद मुझे सिंहासन सौंपा था। मैं भी अजात की परीक्षा लेने के बाद ही सिंहासन सौंपूंगा...किन्तु सिंहासन तो उन्हीं का है न !'

'मेरे प्रभु, वे परिक्षा नहीं देंगे; वे तो पुराने रीति रिवाज और कुल परम्परा को एक ही झटके में तोड़ कर राजसिंहासन लेना चाहते हैं !'

'और मैं न दूं तो !'

'तो....वे ऐसा होने पर पिता को अलग कर देने में भी संकुचित न होंगे !'

'इसीलिए तू मुझे सीमा पर ले जाना चाहता है ? क्या राजनीति यही कहती है कि पुत्र के नादान होने पर पिता भी नादान बन जाए ?'

'राजनीति कभी भी केवल स्नेहवश हो कर सिंहासन छोड़ देने की सम्मति नहीं देती !'

'मित्र, तेरे गुप्तचरों ने भूल की है, ब्रह्मदत्त सदा की तरह बुढ़ापे में भी सुनने में भूल कर सकता है; अजात यह नहीं कर सकता...!'

'देव, यह बात मेरी आँखों देखी, और कानों से सुनी हुई है !'

'जिस पिता के हृदय में स्नेह के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं, अजात वैसा नहीं, जो यह बात जान कर, किसी भी मूल्य पर मुझसे सिंहासन लेने को तैयार हो जाय....!'

'आप पुत्र को कितना अगाध स्नेह करते हैं, यह सभी जानते हैं... यह स्नेह अंधा है !'

'संजय !'

'महाराज, मुझे भय मालूम होता है, आप शीघ्र यहाँ से चल दीजिए... चलिए, हम थेरी के पास चलें !' संजय ने गद्‌गद् हो कर कहा; उसका कण्ठ महाराज के प्रति भक्ति और दुःख से भर गया था। बिम्बसार विस्मित होकर उसे देखने लगा; संजय ने किसी दिन इतनी अनुनय नहीं की थी। तत्क्षण

बिम्बसार ने निश्चय कर लिया और संजय के समीप बैठकर बोला,—
ही देर पहले सोचा था कि पाली से मिल आऊँ, पर अब सोचता हूँ कि पहले पुत्र से मिलूँ ! संजय, नगरश्रेष्ठी को कह दे कि वह शीघ्र ही आम्रपाली को उसके भिक्षुणी संघ के साथ ले आए ! मैं राजगृह में दोनों को ही पहिचान लूंगा; पुत्र को और....'

'पत्नी को ?' संजय ने पूर्ति की।

बिम्बसार ने आर्द्र दृष्टि से संजय को देखा जैसे कह रहा हो कि वह आम्रपाली का पति होने योग्य नहीं है !

संजय ने भींगी पलकें पोंछी, और प्रणाम करके चला गया। बिम्बसार सोचने लगा; सारा संसार उसे विचित्र-सा दिखाई दिया। आज यौवन के मदमय जीवन ने उसे वृद्धत्व के द्वार पर ला कर खड़ा कर दिया था। जो चेलना किसी दिन उस पर न्योछावर हो गई थी, आज उसके लिए महारानी पद के सिवा अन्य सब वस्तुएँ गौण थीं। पुत्र आज सिंहासन छीन लेने के लिए उद्यत हो रहा था; और जिसे वह अब तक हृदय-स्वामिनी समझता था वह आज संसार से विरक्त हो कर थेरी बन गई थी। क्रमशः उसे जीवन और विशेष कर यौवन से वृद्धत्व तक की सब घटनाएँ स्मरण होने लगीं। वह जीवन की विगत स्मृतियों में विलीन हो गया—खो गया।

जब चेलना ने आ कर द्वार की देहरी पर बैठे हुए बिम्बसार को झकझोर कर सचेत किया, तब बहुत समय बीत चुका था। विचार-शृंखला टूटने पर, उसने विस्मित हो कर अनुभव किया कि उसके मन में खेद के स्थान पर स्फूर्ति प्रकट हुई थी। उसका हृदय शांत होने के बदले अधिक चचंल हो उठा। उसने मन ही मन चेलना पर, जो कि महारानी पद को ही अधिक महत्व देती थी, सब बोझ छोड़ कर निर्वृत होना चाहा। वह प्रमाद और विश्रांति छोड़ कर सहसा सचेत हो गया; मानों बुढ़ापे को नया यौवन मिला हो, अंधे को आँखें मिली हों; मानों मूक को वाणी मिली हो !

उसने यह देख लिया—महारानी चेलना से रात-दिन राज्यभोग की

बात ही सुनने को मिलती थी; दूसरी रानियों के द्वारा क्रोध, द्वेष और रुदन मूर्तिमान होते थे, नर्तकियों के पास से वह छिछला सम्मोहन मिलता जिसे संसार की भाषा मे 'सुख' कहा जाता है ! शेष में, उसे पुत्र-प्रेम में कुछ शान्ति की अनुभूति होती थी, किन्तु आज वह भी मृग-जल ही प्रतीत हुई ।

आज उसे लगा कि वह एकाकी है उसका कोई नहीं....! उसके जीवन में कोई नहीं है...यदि कोई था, तो वह पाली थी । उसने पाली को देखने का निश्चय किया । इस निश्चय से उसका मन स्फूर्ति और उल्लास से विलसित हो उठा ।

पांचवे दिन पूर्णिमा आ गई । संध्या होने में अब कुछ ही देर थी । बिम्बसार की प्रतीक्षा में संजय और ब्रह्मदत्त एक गुप्त आवास में इधर से उधर टहल रहे थे । बिम्बसार आ गया, उसे देखते ही ब्रह्मदत्त के मुँहसे एक हल्की चीख निकल पड़ी—आज बिम्बसार ने राजवेष छोड़कर कठपुतली वाले का स्वाँग रचा था: काले बालों के बदले श्वेत केश धारण किये थे । चेहरे पर झुर्रियाँ होते हुए भी; एक विशिष्ट प्रकार का ओज था, जो पच्चीस वर्ष पहिले जैसा ही था, जब जीवन में प्रथम बार बिम्बसार ने कठपुतली वाले का अभिनय किया था ! शीघ्र ही संजय और ब्रह्मदत्त ने भी अपने भेष बदल डाले और वे तीनों गुप्त-द्वार से पाली को देखने के लिए निकल पड़े, जो आज राजगृह के नगरश्रेष्ठी के यहाँ प्रवचन करने वाली थी ।

राजगृह के मुख्य चौराहे पर नगरश्रेष्ठी का महल था; उसके पीछे के उद्यान में आज नगर की असंख्य स्त्रियाँ एकत्रित होकर आम्रपाली का उपदेश सुन रही थी । सभी स्त्रियाँ उच्च कुल की थीं; जहाँ-जहाँ दृष्टि पड़ती, हीरे, नीलम, प्रवाल और स्वर्ण के बहुमूल्य अलंकार जगमगाते हुए दिखाई देते थे; दूसरी ओर, निर्धन और निम्न वर्ग की स्त्रियाँ भी बैठी थीं ।

इन सबों के बीचोंबीच, कुछ ऊँचे आसन पर बैठ कर पाली उपदेश दे रही थी; काषायवस्त्र पहिनने से उसका दिव्य तेज प्रोज्वल हो उठा था ।

यह उपदेश का अन्तिम भाग था; पाली मनुष्य-देह की असारता समझा

रही थी। स्त्रियों के पीछे की ओर नगरश्रेष्ठी के सिवा अन्य कई प्रमुख नागरिक बैठे थे; तीनों कठपुतली वाले धीरे से उनके पास आकर बैठ गये।

सभा शांतिपूर्वक सुन रही थी; पाली निर्विकार, अलिप्त और अपार्थिव-सी बन कर वाणी का दिव्य स्रोत बहा रही थी।

आज कठपुतली वाला बिम्बसार, पूरे पच्चीस वर्षों से पाली को शांति-पूर्वक देख रहा था। पाली के शब्द उसके हृदय पर आघात करते हुए निक-लने लगे—

....'एक दिन मेरे भी सुन्दर केश थे, हीराजडीत चक्र, और बारीक् तारों से सुव्यवस्थित मेरी अलकें कवियों की कविता बनती थी। मेरा शरीर चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से महकता था। नित नये शृङ्गारों से सज्जित होकर मेरी देहसुषमा दूसरों की ईर्ष्या का कारण होती थी; मेरी स्वर्णकांतियुक्त देह-छटा किसी शिल्पकार की कला द्वारा निर्मित प्रतीत होती थी; मेरी आँखे हीरे की तरह चमकदार थी जो सम्मुख होते ही दूसरे की दृष्टि को चौंधिया देती थी। मेरी बाँहे जो कमलनाल-सी प्रतीत होती थीं, वे सब आज नही है। रक्त-मांस से भरे हुए अंग प्रत्यंग आज मुरझा गये हैं। मेरा स्वर्णकान्ति-वाला अनूप शरीर आज झुरियों से भर गया है और अहर्निश स्वर्णनूपुर बांधकर थिरकनेवाले चरण आज दुर्बल हो गये हैं। जिस स्त्री को अपने शरीर-सौंदर्य का गर्व है उसे समझ लेना चाहिए कि उसका अंत ऐसी ही परिस्थितियों में होगा। देह की ममता मिथ्या है; जो आज है वह कल नहीं! शरीर से प्राप्त सुख और अनुभूति अनित्य हैं। दुःख नित्य है, और उसमें से छूटने का प्रयत्न करना ही प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।'

सौंदर्य-देवियाँ सचमुच दुःख और क्लेश भूलकर प्रसन्नता और शांति-पूर्वक आम्रपाली का उपदेश सुनकर मुग्ध हो रही थीं। प्रवचन समाप्त हुआ।

फिर वन्दनविधि प्रारंभ हुई। संजय ने देखा कि बिम्बसार आम्रपाली को देखने में तल्लीन है; वह अब क्या करेगा, यह कौतूहल संजय और ब्रह्मदत्त दोनों के हृदय को उत्सुक बना रहा था।

क्रमशः स्त्रियों ने आकर आम्रपाली के चरणों में मस्तक झुकाया और प्रदक्षिणा देकर जाने लगीं। अंत में पुरुष भी उठे। सस्मित आशीर्वाद देते समय पाली, अमृत बरसाती हुई किसी दिव्य लोक की तपस्विनी प्रतीत होती थी। धीरे-धीरे बिम्बसार भी उसके समीप पहुँचा; प्रेममयी श्रद्धा से संजय और ब्रह्मदत्त की आँखों में नीर भर आया।

किंतु पाली अब उस स्तर पर पहुँच चुकी थी, जहाँ भावों की लीला, दुःख और सुख, प्रेम और घृणा, क्रोध, मोह और तृष्णा के खेल नहीं खेलती; जहाँ स्त्री और पुरुष की भिन्नता प्रतीत नहीं होती। जहाँ लौकिक और पारलौकिक का भेद नहीं होता। जहाँ दुःख और कार्यों से रहित सनातन शांति होती है; पाली ने उस 'निर्वाणपद' को प्राप्त कर लिया था।

धीरे-धीरे बिम्बसार पाली के चरणों के पास आ पहुँचा। दूसरे भक्तों की तरह उसने भी चरण छूने के लिए हाथ बढ़ाये; मस्तक चरणों में झुका दिया। उसका मन विश्वास दिला रहा था कि पाली उसे आशीर्वाद देगी; उसे प्रेम भरी आँखों से देख कर क्षमा कर देगी!

पाली ने आशीर्वाद तो दिया, किंतु उसने चरणों में झुके हुए बिम्बसार को—कठपुतली वाले को देखा नहीं, उसकी दृष्टि दूर से नमस्कार करते हुए नगर-श्रेष्ठी और उसकी पत्नी की ओर थी। जब उसने नीचे दृष्टि की, तब कोई अन्य भक्त उसके चरणों में झुका हुआ था; उस समय बिम्बसार, संजय और ब्रह्मदत्त आशीर्वाद लेकर दूर खड़े थे।

बिम्बसार ने संजय और ब्रह्मदत्त को मन की बातें बिल्कुल गुप्त रखने का आदेश दिया; वह एकटक पाली की ओर देख रहा था। दिव्य मुस्कान के साथ पाली ने एक बार चारों ओर दृष्टि डाली—उसकी आँखों ने तीनों कठपुतली वालों को भी अन्य सामान्य श्रोताओं की तरह देखा। थेरी आम्रपाली ने कठपुतली वालों को किसी विशेष दृष्टि से नहीं देखा, और न पहिचाना ही; क्योंकि देशनर्तकी आम्रपाली तो कई दिनों पहिले मर चुकी थी।

आम्रपाली ने देश के लिए अपने अनेक सुखों का बलिदान किया था; आज वह संसार से दूर रह कर भी दोनों विरोधी राष्ट्रों की सेवा कर रही थी।

बिम्बसार ने मन से पूछा—पाली क्या अभी भी भूतकाल को याद करती होगी ? क्या अभी भी उसके हृदय में अपनी बीती स्मृतियाँ जीवित होंगी ?....वर्षों से दबी हुई पाली की स्मृति जागृत हो गई। बिम्बसार को लगा कि वर्षों पहिले उसने जिस बुद्धि को जान-बूझ कर गँवा दिया था, आज वह पुनः उसे मिल गई; वर्षों पहिले देखा हुआ संसार पाली को देखने से उसे बिलकुल बदला हुआ दिखाई दिया।....

रानियाँ मिलीं, राजपुत्र हुए, राज्य की वृद्धि हुई और साम्राज्य निर्मित हुआ; किन्तु अनेक वर्षों से हृदय का जो स्थान पाली के लिए रिक्त था वह पाली के सिवा कोई भी भर न सका था; इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव उसे आज हुआ। अर्हत्व प्राप्त हो जाने पर भी आम्रपाली, बिम्बसार के हृदय में तो अब तक संसारी बन कर ही बैठी थी। पाली अपनी शिष्याओं के साथ उसके पास से निकल गई तब ही बिम्बसार जान पाया कि 'थेरी पाली ने संसार का त्याग कर दिया है, और संसारी पाली, अब पूर्णरूपेण उसकी हो गई है।

थेरी पाली अपनी शिष्यों के साथ अनेक जयनादों के बीच नगर के राजमार्ग पर जा रही थी; उन्हें वैशाली की ओर जाना था। उनके पीछे-पीछे बिम्बसार भी नगर के बाह्य प्रवेश-द्वार तक गया।

संध्या हो चुकी थी; धीरे-धीरे भिक्षुणियाँ दूर होने लगीं; बिम्बसार निर्निमेष दृष्टि से उन्हें देख रहा था।

सहसा कई सैनिकों ने उन तीनों को घेर लिया। बिम्बसार अभी भी जाती हुई पाली को देख रहा था; संजय ने जब उसका हाथ जोर से खींचा, तब ही उसे सुध आई। एक सैनिक ने अधिक शिष्टाचार न करके कहा—'अविनय के लिए क्षमा करें; किन्तु आपको हमारे साथ चलना होगा !'

बिम्बसार, सिपाहियों को विस्मित दृष्टि से देख रहा था, वे उसका छद्मवेश कैसे जान गये ?....संजय ने आगे बढ़ कर कड़े स्वर में पूछा—'कहाँ ?'

'आप जानते हैं, कारावास में ! यह प्रभु अजातशत्रु का आदेश है !'

'अजात का आदेश, मुझे कारागृह में डालने का ? बिम्बसार ने और अधिक

बिम्बसार ने मन से पूछा—पाली क्या अभी भी भूतकाल को याद करती होगी? क्या अभी भी उसके हृदय में अपनी बीती स्मृतियाँ जीवित होंगी?....वर्षों से दबी हुई पाली की स्मृति जागृत हो गई। बिम्बसार को लगा कि वर्षों पहिले उसने जिस बुद्धि को जान-बूझ कर गँवा दिया था, आज वह पुनः उसे मिल गई; वर्षों पहिले देखा हुआ संसार पाली को देखने से उसे बिलकुल बदला हुआ दिखाई दिया।....

रानियाँ मिलीं, राजपुत्र हुए, राज्य की वृद्धि हुई और साम्राज्य निर्मित हुआ; किन्तु अनेक वर्षों से हृदय का जो स्थान पाली के लिए रिक्त था वह पाली के सिवा कोई भी भर न सका था; इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव उसे आज हुआ। अर्हत्व प्राप्त हो जाने पर भी आम्रपाली, बिम्बसार के हृदय में तो अब तक संसारी बन कर ही बैठी थी। पाली अपनी शिष्याओं के साथ उसके पास से निकल गई तब ही बिम्बसार जान पाया कि 'थेरी पाली ने संसार का त्याग कर दिया है, और संसारी पाली, अब पूर्णरूपेण उसकी हो गई है।

थेरी पाली अपनी शिष्यों के साथ अनेक जयनादों के बीच नगर के राजमार्ग पर जा रही थी; उन्हें वैशाली की ओर जाना था। उनके पीछे-पीछे बिम्बसार भी नगर के बाह्य प्रवेश-द्वार तक गया।

संध्या हो चुकी थी; धीरे-धीरे भिक्षुणियाँ दूर होने लगीं; बिम्बसार निर्निमेष दृष्टि से उन्हें देख रहा था।

सहसा कई सैनिकों ने उन तीनों को घेर लिया। बिम्बसार अभी भी जाती हुई पाली को देख रहा था; संजय ने जब उसका हाथ जोर से खींचा, तब ही उसे सुध आई। एक सैनिक ने अधिक शिष्टाचार न करके कहा,—'अविनय के लिए क्षमा करें; किन्तु आपको हमारे साथ चलना होगा!'

बिम्बसार, सिपाहियों को विस्मित दृष्टि से देख रहा था, वे उसका छद्मवेश कैसे जान गये?....संजय ने आगे बढ़ कर कड़े स्वर में पूछा—'कहाँ?'

'आप जानते हैं, कारावास में! यह प्रभु अजातशत्रु का आदेश है!'

'अजात का आदेश, मुझे कारागृह में डालने का? बिम्बसार ने और अधिक

विस्मित न होकर पूछा।

'जी, आप भागने का व्यर्थ प्रयत्न न करें; सारे नगर में गुप्तचरों की ऐसी कठिन व्यवस्था है कि कोई भी आपके लिए तलवार नहीं उठा सकता! सबों ने महाराज अजातशत्रु के सम्मुख यही स्वीकार किया है कि आप अस्थिरचित्त हैं, और वे भी यही मानते हैं कि आप विक्षिप्त हैं। अब आपके लिए हमारे साथ आने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है!'

'भले ही अजात मुझे कारागार में डाल दे....किन्तु विक्षिप्त बना कर....'

'महाराज!' संजय ने तलवार पर हाथ डाल कर कहा।

'संजय!'....बिंबिसार का स्वर बदल गया था; उसने इधर उधर दृष्टि डाल कर कहा—'मारने और मरने में कोई लाभ नहीं है—पाली कहती थी कि मर कर फिर जन्म लेना होगा!....दूर रहो सैनिकों, मैं तुम्हारे साथ आता हूँ... कहोगे तो पागल बन कर भी! किन्तु मेरी एक बात मान लो, मुझे उस भिक्षुणी-संघ को देख लेने दो!'

सैनिक तत्क्षण अलग हो गये। बिम्बसार शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ा और एक विशाल वृक्ष के पास आ खड़ा हुआ; सन्ध्या के मन्द प्रकाश में पाली और उसकी भिक्षुणियाँ वृक्ष श्रेणियों में अदृश्य हो रही थीं। एक कोयल कूक उठी। बिम्बसार ने ऊपर देखा—वह आम्रवृक्ष था। उसे याद आया कि आम्रवृक्ष ने ही पाली को आसरा दे कर संसार के कारागार में भेजा था। बिम्बसार ने मुस्करा कर वृक्ष पर से आँखें हटा लीं और अंतरिक्ष की ओर अंतर्हित होती हुई पाली को देखने लगा। वायु, दूर से भिक्षुणियों की गीत-ध्वनि खींच कर ला रही थी—

'बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि....'

बिम्बसार उसी स्तब्ध अवस्था में धीरे-धीरे भिक्षुणियों के उन शब्दों को ओंठों में बोला और एक दीर्घ निःश्वास फेंक कर संजय की ओर देखा।

'चल संजय, कारागार में! ..एक पुत्र ने माता को संसार के कारावास से मुक्त किया, दूसरा पुत्र पिता को कारावास में डाल रहा है...!'

'देव....' आँखों में आँसू भर कर संजय मुस्कराया; बोला—'कठपुतली वाला कुशल नट नाटक समाप्त करने के बाद हँसता है....'

'वह यह समझ कर हँसता है कि रंगभूमि पर कठपुतलियाँ ही हैं ! मुझे पिताजी ने यही याद रखने को कहा था, पर मेरी बातें तो तू ही याद रखता है, अच्छा...चल संजय !' इतना कह कर बिम्बसार, संजय का हाथ पकड़ कर सैनिकों के आगे चलने लगा। ब्रह्मदत्त क्षण में वृक्षों में अदृश्य होती हुई पाली की ओर तथा क्षण में बिम्बसार को देखता हुआ, निश्वास छोड़ कर उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

: समाप्त :

नहि वेरेन वेरानि सम्मन्ती कदाचन।
अवेरेन च सम्मन्ती एस धम्मो सनन्तनो॥

बैर से कदापि बैर नष्ट नहीं होता; प्रेम से ही नष्ट होता है। यही सनातन धर्म है।

गौतम बुद्ध
यमकवर्ग, धम्मपद

'आम्रपाली' के लिए

विभिन्न साहित्यिकों और पत्रकारों के उद्गार

उपन्यास के क्षेत्र में भाई रामचन्द्र ठाकुर का यह प्रयास पहला होते हुए भी अत्यन्त आकर्षक है।

आपका चुना हुआ विषय, बौद्धकालीन भारत, अपनी प्रभावशाली शैली के कारण सम्मोहक बन पड़ा है। आपकी व्यक्त करने की कला एक विशेष क्षमता रखती है, जिसको लेकर पूरा उपन्यास रस से पढ़ा जा सके।

गुजराती-साहित्य में आपका प्रथम-सत्कार करते हुए मुझे आनंद होता है।

श्री० कन्हैयालाल मा० मुंशी

बौद्ध-कालीन भारत का चित्रण बहुत ही सफलतापूर्वक किया गया है! इस प्रकार आपने एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास लिखने के साथ ही इतिहास की भी बडी अमूल्य सेवा की है।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता

रा० ब० गौरीशंकर ही० ओझा

गुजराती-भाषा-भाषी पाठक एक बार इसे अवश्य पढ़ कर देखें कारण, आम्रपाली, भारतीय नारीत्व के अधिकतम अपमान और उच्चतम लांछन का ज्वलंत उदाहरण है। विलास-प्रिय पुरुषो के कठोर विधान पर नारीत्व के बलिदान की यह करुण एवं लज्जास्पद कहानी, भारत के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पतन की यथेष्ट परिचायिका है। भारत मे स्वातंत्र्य-पूजा और सम्मान के रूप में पशुबल की वेदी पर मूक नारीत्व का जो बलिदान एक दीर्घ काल से होता आया है, आम्रपाली, उसका एक दुःखद प्रतीक है। भारत के अधःपतन के कारण और नारीत्व की लांछना को समझने में यह उपन्यास काफी सहायक होगा।

विशाल-भारत

'आम्रपाली' के रचयिता की दूसरी कृति

'बीरबल'

(सचित्र)

यों तो जनसाधारण मे, यहाँ तक कि अशिक्षितों में भी अकबर के दरबारी या साथी बीरबल के विषय में सैकड़ों किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। 'बीरबल-विनोद' जैसी अनेक पुस्तकें बीरबल के नाम से लिखी गई है, जिसमें उसे कहीं विदूषक और कहीं हाजिरजवाब बताने का प्रयत्न किया गया है। जो भी हो ऐसी किंवदंतियों को, जो बीरबल के नाम से चाहे जिस रूप में हिन्दुस्तान के जनसाधारण में प्रचलित है, आजकल की शिक्षित जनता बनावटी और सिर्फ मनोविनोद के लिए गढ़ी हुई समझती है; और ऐसी किंवदंतियों पर विचार करने से यह बातें सही भी मालूम होती हैं।

यह उपन्यास, 'बीरबल' के विषय में अधिकतम सच्चाई जानने की प्रबल उत्कण्ठा का परिणाम है। कई भाषाओं के सैकड़ों ग्रंथों की छानबीन और अनुसंधान तथा मनन-पठन के बाद इतिहास के निकटतम रह कर, कल्पना का अनुकूल रंग देते हुए भारत के इस महान राजनीतिज्ञ, विद्वान और मनीषी व्यक्ति का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि मनोरंजक प्रसंगों से परिपूर्ण यह उपन्यास इतिहास प्रेमी शिक्षितों के मन में, उपेक्षा दूर हटा कर, महान् 'बीरबल' के विषय में सच्चाई से अवगत कराने में सहायक होगा। 'आम्रपाली' के ही अनुवादक द्वारा अनुवादित यह पुस्तक कुछ ही महीनों में १२ से अधिक तिरंगे चित्रों सहित रसिक पाठकों की सेवा में प्रस्तुत होगी।

आम्रपाली के रचयिता की तीसरी कृति :

मीराँ प्रेम दीवानी

(उपन्यास)

इस नाम से भारत का कोई भी व्यक्ति अपरिचित नहीं। भक्ति, श्रद्धा, प्रणय और साहित्य में मीरा समान रूप से प्रसिद्ध है।

कृष्ण के प्रेम में दीवानी मीरा बाई की प्रेम और भक्ति रस से पूर्ण, कलात्मक, भावभरी औपन्यासिक कथा।

मीरा, गुजरात की प्रथम कवयित्री मीरा, वैष्णवों की प्रथम स्त्री-संत मीरा, मेवाड़ और मारवाड़ की एक और अद्वितीय मीरा की अमर कहानी।

भारतीय नारीत्व की एक अत्यावश्यक मर्यादा का उल्लंघन करके भी मीरा, भारत में उतनी-ही आदर की पात्र है जितनी कोई सती। मेवाड़ की इस महारानी का गिरधर गोपाल के पीछे दीवानी बन कर राजपाट, वैभव और सुख-भोग सब कुछ छोड देना, भक्त के लिए साधारण किंतु एक नारी के लिए असाधारण बात है। यह उपन्यास, भारतीय नारीत्व की कसौटी पर कसने के बाद, इस भक्तन की भक्ति और प्रणय का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

भक्ति और रूढ़ श्रद्धा की अलौकिकता और चमत्कार से दूर रह कर, शुद्ध-रूप से, एक साधारण मानुषी को अनुभूत होने वाले सुख-दुःख, आशा-निराशा, और मानसिक उत्थान-पतन का मनोवैज्ञानिक और सजीव चित्रण लेखक के अपने नये दृष्टिकोण और शैली को लेकर इस उपन्यास में सन्निद्ध है। मीरा-पदावलियों में दिखाई देने वाली, ऐसी मीरा का उपन्यास के प्रकरणों में बाँधने का प्रयत्न लेखक ने सफलतापूर्वक किया है।

कथावस्तु, लेखक की अन्य कृतियों की तरह पर्याप्त अध्ययन का परिणाम है, यह बात पढ़ने के बाद पाठक अच्छी तरह से जान सकेंगे।